

COLLECTION OF HINDU LAW TEXTS No. 25 (1)

Sri VAIDYANÂTHA DIXITA'S

SMRTIMUKTÄ PHALAM

PART I

VARNÄS' RAMADHARMA KÄNDÄ

25C

EDITED BY

J. R. GHARPURE, B. A., LL. B., Honours-in-Law
Principal, Law College Poona, Advocate, High Court,
Fellow of the University of Bombay.

BOMBAY.

First Edition

(All rights Reserved.)

1937

Printed at the Aryabushan Press, 936/3 Bhamburda Peth,
Poona City, by A. V. Patvardhan and
Published by V. J. Gharpure, at the Office of
the Collection of Hindu Law Texts,
Angrewadi Girguam, Back Road, Bombay 4.

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला [ग्रन्थाङ्कः २५ (१)]

श्री

वैद्यनाथ दीक्षितीय

स्मृतिमुक्ताफलम्

(प्रथमः खंडः)

वर्णाश्रमधर्मकाण्डम्

~~~~~♦००♦~~~~~

जगन्नाथ रघुनाथ बारपुरे

बी. ए., एलएल. बी., ऑर्नर्स इन् लॉ.

पुण्यपत्तनस्थव्यवहारधर्मशालायां मुख्याध्यापकः

मुंबई विश्वविद्यालयसदस्यः

इत्यनेन संपादितः ।

प्रथमावृत्तिः

शकाब्दाः १८५८ क्रिस्ताब्दाः १९३७.

( सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः )

---

पुण्यपत्तने 'आर्यभूषण' मुद्रणालये 'अनंत विनायक पटवर्धन' इत्यनेन मुद्रितः,  
मोहमध्यां 'विश्वनाथ जगन्नाथ धारपुरे,' इत्यनेन प्रकाशितश्च ।

---

श्री

श्री वैद्यनाथ दीक्षितीय स्मृतिसुक्ताफलस्थ  
वर्णाश्रमधर्मकाण्डस्य  
विषयानुक्रमणिका

| विषयाणि                           | पृष्ठम् | विषयाणि                   | पृष्ठम्  |
|-----------------------------------|---------|---------------------------|----------|
| मंगलाचरणम् ...                    | १       | सृष्टिप्रकारः ...         | १६       |
| धर्मप्रमाणानि ...                 | "       | वर्णधर्माः ...            | १७       |
| श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यम्           | २       | यजनम् ...                 | "        |
| धर्मनिरूपणम् ...                  | "       | यज्ञमहिमा ...             | १८       |
| धर्ममूलानि ...                    | "       | श्रौतस्मार्तयज्ञाः ...    | १९       |
| शिष्याः, तेषां लक्षणम्            | ३       | यजनप्रशंसा, अयजननिन्दा    | २०       |
| स्ववर्णाश्रमधर्मानुष्ठानफलम्      | "       | यज्ञे दक्षिणा-भोजनादि     | २०,२१,२२ |
| आचारप्रशंसा ...                   | ४       | आधानकर्तृणाम्             | २३       |
| सदाचारलक्षणम्                     | ५       | पितुवैधुर्ये ...          | "        |
| स्मृतिप्रशंसा ...                 | ६       | अग्रजानुजयोः ...          | "        |
| श्रुतिस्मृत्यादीनां बलाबलनिरूपणम् | ७       | परिवेत्तृणाम् ...         | "        |
| श्रुतिद्वैधे, स्मृतिद्वैधे        | "       | विधुराचारः, विधुराग्निः   | २५       |
| स्मृतिकर्तारः ...                 | ८       | सृतपत्नीकस्य ...          | २६       |
| धर्मदेशाः ...                     | ९       | अग्न्युत्पत्तिप्रकारः     | २७       |
| निधिद्वदेशाः ...                  | "       | याजनम् ...                | "        |
| ,, अपवादाः ...                    | १०      | तत्राधिकृताः ...          | २८       |
| युगधर्माः ...                     | ११      | वेदाध्ययनम् ...           | २९       |
| कलिसामर्थ्यम्                     | १२      | सार्थवेदोऽध्येतव्यः       | "        |
| युगसामर्थ्यवर्णनप्रयोजनम्         | १३      | अध्यापनम् ...             | ३०       |
| कर्मपरिभाषा ...                   | १४      | गुरुशिष्ययोः ...          | "        |
| मुख्यगौणकालयोः                    | "       | विद्यादाने पात्रापात्राणि | ३१       |
| कर्मकर्तृप्रतिरूपकानाम्           | "       | अपात्रे अर्थकरणाद्वा      | "        |
| दिवारात्रौ—कर्तव्यानाम्           | "       | उपाकरणम् ...              | ३२       |
| दिङ्गियमाभावे ...                 | १५      | उपाकर्मकालः ...           | "        |
| स्वशाखोक्त—परशाखोक्तयोः           | "       | उत्सर्जनम्, तत्कालश्च     | ३३       |
| आसनानि ...                        | "       | तेषां ज्यैषे ...          | "        |
| प्रतिनिधिमुख्ययोः                 | १६      | उपवीतधारणम् ...           | ३४       |
| वासोवेष्टने ...                   | "       | अनध्यायाः ...             | ३५       |
|                                   |         | नित्याः, नैमित्तिकाः      | ३४       |

## विषयानुक्रमणिका

| विषयाणि                      | पृष्ठम् | विषयाणि                  | पृष्ठम् |
|------------------------------|---------|--------------------------|---------|
| आकामिकाः ...                 | ३४      | आपद्रवृत्तयः ...         | ६०      |
| तत्र अर्थवादाः ...           | ३५      | अविहितवृत्तयः ...        | ६१      |
| युगाद्यः ...                 | ३७      | पातनीयाः ...             | ६२      |
| अनध्यायापवादाः               | ३८      | आपत्तौ जीवनानि           | ६३      |
| नैत्यकादौ नानध्यायः          | ३९      | प्राणयुपदातदोषापनुत्तये  | ६३      |
| दानम् ...                    | ४०      | क्षत्रियधर्माः ...       | ६४      |
| तत्रैविध्यम् ...             | ४१      | वृपस्य व्रतानि ...       | ६५      |
| गोदानम्, तत्फलम्             | ४२      | वैश्यधर्माः ...          | ६६      |
| विद्यादानम् ...              | ४३      | शूद्रधर्माः ...          | ६६, ६७  |
| भीतानामभयदानम्               | ४४      | शूद्रापराधे ...          | ६८      |
| महीवस्त्रप्रतिमादानानि       | ४५      | शूद्राणां वृत्तयः ...    | ६९      |
| दशदानानि ...                 | ४५      | ब्राह्मणानां श्रैष्ट्यम् | „       |
| विविधदानमन्त्राः             | ४६      | जातिविवेकः ...           | ७०      |
| दानस्य देशकालौ               | ४७      | अनुलोम-प्रतिलोमाः        | „       |
| प्रतिश्रुत्य अप्रदानम्       | ४८      | तज्जाः ...               | ७१      |
| पात्रापात्रविचारः            | ४९      | कुण्डगोलकादयः            | „       |
| षट् अब्राह्मणाः              | ४९      | सावर्ण्यप्राप्तौ कारणानि | ७२      |
| पात्रे एव दानम्              | ५०      | संस्काराः ...            | ७३      |
| पात्रनिरूपणम् ...            | ५१      | तेषां भेदाः ...          | „       |
| देवलकाः वार्धुषिकाः          | ५१      | गर्भदानम् ...            | ७४      |
| पाषांडिनः ...                | ५१      | तत्कालः ...              | „       |
| पुरुषाधमाः ...               | ५२      | ऋतुयौगपदे                | ७५      |
| सप्तविधं धनम् ...            | ५२      | ज्येष्ठपुत्रस्य          | ७६      |
| अदेयानि, देयानि, च           | ५३      | क्रतौ गमनमवश्यम्         | ७७      |
| प्रतिग्रहः ...               | ५३      | गर्भोत्पत्यनुकूलकालः     | „       |
| प्रतिग्राहाणि ...            | ५२, ५५  | पुंसवनम् ...             | ७८      |
| तत्र प्रतिषेधाः पर्युदासाश्च | ५४      | तत्कालः ...              | „       |
| कुटुंबार्थं ग्राहाणि         | ५६      | सीमंतोन्नयनम् ...        | „       |
| केभ्यः प्रतिग्राहम्          | ५७      | अकृतसीमंतायाः प्रसवे     | ७९      |
| कदा ...                      | ५७      | जातकर्म ...              | ८०      |
| असत्प्रतिग्रहः ...           | ५८      | नामकरणम् ...             | ८१      |
| तत्प्रकाराः ...              | ५८      | नामधेयानि ...            | ८२      |
| प्रतिग्रहविधिः ...           | ५९      | कर्णवेधः ...             | „       |
| ब्राह्मणस्य वृत्यंतराणि      | ५९      |                          |         |

| विषयाणि                     | पृष्ठम् | विषयाणि                                  | पृष्ठम् |
|-----------------------------|---------|------------------------------------------|---------|
| निष्क्रमणम् ...             | ८२      | पितुर्गीयस्त्वम् ...                     | १०५     |
| अन्नप्राशनम् ...            | „       | पितरौ सर्वथा न त्यज्यावुपेक्षणीयौ वा १०६ |         |
| चूडाकरणम् ...               | ८३      | एतदपवादाः ...                            | „       |
| तत्कालः ...                 | ८४      | मान्यतानिमित्तानि                        | „       |
| संस्काराणां फलम्            | „       | मार्गप्रदानार्हाः ...                    | १०७     |
| अक्षरन्यासः ...             | „       | आभिवादनम् ...                            | „       |
| तत्कालः ...                 | ८६      | गुरोः पादोपसंग्रहणम्                     | १०८     |
| उपनीतधर्माः ...             | „       | पूज्याः ...                              | १०९     |
| उपनयनम् ...                 | „       | अभिवादनप्रकारः                           | ११०     |
| काम्योपनयनम् ...            | ८७      | गुरुसंनिहिते ...                         | १११     |
| उपनयनकालः ...               | ८८      | गुरुवत्पूज्या गुरुपत्न्यादयः ...         | ११५     |
| नृपस्य व्रतानि ...          | ८९      | प्रत्यभिवादनम् ...                       | ११२     |
| गैणकालः ...                 | ९०      | ब्रह्मचारिधर्माः                         | ११३     |
| यज्ञोपवीतम् ...             | ९१      | गुरुसमीपे नप्रभावः                       | ११४     |
| उपवीत-निवीत-प्राचीनावीतानि  | ९२      | भक्ष्यभोज्यानि ...                       | „       |
| वाससोऽसंभवे अनुकल्पः ...    | ९३      | सार्थवेदोऽध्येतव्यः ...                  | ११५     |
| दंडधारणम् ...               | „       | विद्याधिगमोपायाः ...                     | ११६     |
| आजिनानि ...                 | „       | अध्यापनम् ...                            | „       |
| वासांसि ...                 | ९४      | तत्र विशेषाः ...                         | „       |
| पालाशकर्म ...               | ९५      | वेदव्रतानि ...                           | ११७     |
| मेखला ...                   | „       | पुनरुपनयनम् ...                          | „       |
| भिक्षाचर्या ...             | ९६,९७   | पुनः संस्काराः ...                       | ११८     |
| संध्योपक्रमः ...            | ९८      | तत्र वर्ज्याः ...                        | „       |
| कालातिक्रमप्रायश्चित्तम्    | ९९      | ब्रह्मचर्यकालावधिः                       | „       |
| ब्राह्मणभोजनसंख्या          | „       | अध्येत्रुसामर्थ्यानुरूपतः                | „       |
| उपनयनकर्तारः ...            | „       | गोदानविधिः ...                           | ११९     |
| यमलयोः ...                  | १००     | स्नातकानाम् ...                          | ११९     |
| मूकोन्मत्तादीनाम्           | „       | तेषां भेदाः ...                          | „       |
| जडवधिराधीनाम्               | १०१     | स्नातकविधिः ...                          | १५०     |
| औरसादयः ...                 | „       | नैष्ठिकधर्माः ...                        | „       |
| क्षेत्रजाः; नियोगः          | १०२     | नैष्ठिकव्रतानि ...                       | १२१     |
| ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ | १०३     | अवकीर्णी ...                             | १२२     |
| गुर्वादिनिरूपणम्            | १०४     | तत्प्रायश्चित्तानि ...                   | „       |
| माता सदैव पञ्ज्या           | १०५     | आपस्तंब-गौतम-मन्वायकानि                  | „       |

| विषयाणि                       | पृष्ठसंख्या | विषयाणि                 | पृष्ठसंख्या |
|-------------------------------|-------------|-------------------------|-------------|
| स्नातकधर्मः ...               | १२३         | कन्यादूषणे ...          | १३९         |
| विवाहः ...                    | १२३         | अनास्याय दुष्टकन्यादाने | "           |
| कन्यालक्षणानि ...             | "           | वृथादूषणे ...           | १४०         |
| कन्यादोषाः ...                | १२४         | कन्यादातारः ...         | "           |
| सापिण्ड्यम् ...               | १२४         | विवाहभेदाः ...          | "           |
| वधूवरयोर्वयःप्रमाणम्          | १२५         | ” प्रकाराः लक्षणानि     | १४१         |
| पुत्रिकाकरणम् ...             | १२६         | ” फलानि च               | "           |
| सगोत्रत्वसप्रवरत्वादि         | "           | धर्म्यविवाहः अधर्म्यश्च | १४२         |
| सगोत्रविवाहे ...              | १२७         | शुल्कदानम् ...          | १४३         |
| सपिंडाविवाहे ...              | १२८         | ” ग्रहणम्               | "           |
| मातुःसपत्न्याः ...            | "           | तदोषः ...               | "           |
| व्यामुष्यायणके ...            | "           | कन्याविक्रये ...        | १४४         |
| मातुलकन्यापरिणयः              | १३०         | विवाहे होमः कर्तव्यैव   | १४५         |
| देशजातिकुलधर्मणां प्रामाण्यम् | १३१         | शोभनद्वयसन्निपाते       | "           |
| विवाहे वर्जनीयानि             | १३२         | एकमातृप्रसूतानाम्       | "           |
| ” कुलानि                      | १३३         | यमलयोः ...              | "           |
| असर्वर्णविवाहे ...            | "           | ” ज्यौष्ठचनिरूपणम्      | १४६         |
| शूद्राविवाहे ...              | "           | किंहस्थे गुरौ ...       | १४७         |
| वरलक्षणम् ...                 | १३३         | जन्मनक्षत्रे ...        | "           |
| वरपरीक्षा ...                 | १३४         | त्रिज्यौष्ठचे ...       | "           |
| षट्भेदाः । तेषां लक्षणानि च   | "           | ज्येष्ठानां ज्येष्ठमासे | "           |
| त्याज्यवराः ...               | १३५         | ऋद्धिपरीक्षा ...        | १४८         |
| कन्यादानकालाः                 | "           | “ आपस्तंबेनोक्ता        | "           |
| गौरी-रोहिण्यादिकन्याभेदाः     | "           | “ आश्वलायनोक्ता         | "           |
| तेषां विवाहे ...              | "           | कन्यादानकालनियमक्रमः    | १४९         |
| रजोदर्शनादुपरि ...            | १३६         | पुनर्विवाहः ...         | "           |
| वालिशाविवाहे ...              | "           | ओपासनारंभकालः           | "           |
| दात्रभावे कन्यया वरणम्        | "           | स्थालीपाकोपक्रमः        | १५०         |
| विवाहमध्ये रजोदर्शने          | १३७         | अन्वारंभणेष्टिः ...     | "           |
| आसप्रसदान्न विवाहः            | १३८         | अधिवेदनम् ...           | १५१         |
| तत्पूर्व विवाहविघ्ने-भंगे वा  | १३८         | अधिवेदनार्हा ...        | "           |
| शुल्कम् ...                   | "           | द्वितीयाविवाहकालः       | १५२         |
| तत्र विशेषः ...               | "           | अर्कविवाहः ...          | "           |

| विषयाणि                      | पृष्ठम्  | विषयाणि                 | पृष्ठम्  |
|------------------------------|----------|-------------------------|----------|
| उन्मत्तादीनां विवाहनिराकरणम् | १५३      | हंसः                    | १८४      |
| पतितादीनां धर्मनिरूपणम्      | ...      | „ धर्माः                | „        |
| दारसंग्रहस्य फलम्            | १५४      | परमहंसः                 | १८५      |
| स्त्रीरक्षणक्रमः             | १५५      | „ धर्माः                | „        |
| ग्रहाश्रमसाफल्यम्            | „        | यत्यान्हिकधर्माः        | १८७      |
| दमपत्योर्मिथ आचरणम्          | १५६      | एकरात्रमेव वासः         | १९०      |
| प्रोषितभर्तुः स्त्रीधर्माः   | „        | दिग्म्बरलक्षणम्         | १९३, १९४ |
| पतिव्रताधर्मः                | १५७      | ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम् | १९५      |
| स्त्रीपातनीयानि              | १५८      | दन्तधावनम्              | १९६      |
| गर्भिणीधर्माः                | १५९      | स्नानादि                | १९७      |
| गर्भावस्था                   | १६०      | विष्णुपूजाक्रमः         | १९८      |
| विधवाधर्माः                  | १६१      | भिक्षाचर्या             | १९९      |
| अनुगमनम्                     | १६२      | माधुकरश्रैष्ट्यम्       | २००      |
| देशांतरगते प्रेते पत्यौ      | १६२      | माधुकरभेदाः             | „        |
| गूढव्यभिचारिणींप्रति         | १६३      | माधूकरम्                | „        |
| गृहस्थधर्मचर्या              | १६४      | प्राकुप्रणीतम्          | „        |
| गृहस्थाश्रमप्रशंसा           | १६६ १६७  | अयाचितम्                | „        |
| वानप्रस्थधर्माः              | १६९ १७०  | तात्कालिकम्             | „        |
| यतिधर्माः                    | १७१      | उपपन्नम्                | „        |
| यतिभेदाः                     | १७२      | केभ्यो भिक्षा ग्राह्या  | २०१      |
| आतुरसंन्यासः                 | १७३      | सार्ववर्णिकभिक्षानिषेधः | „        |
| „ विधिः                      | १७४      | भिक्षापात्राणि          | २०२      |
| संन्यासफलम्                  | १७५, १७६ | भिक्षापात्रभोजननिषेधः   | „        |
| जीवच्छाद्वम्                 | १७७      | आहारशुद्धिः             | २०३      |
| तत्र विधिः                   | १७८, १८१ | भिक्षाप्रशंसा           | २०४      |
| आतुरसंन्यासक्रमः             | १८२      | चातुर्मास्यविधिः        | २०५      |
| संन्यासभेदाः                 | १८३      | प्राणायामविधिः          | २०६      |
| चत्वारः                      | „        | यतेर्निषिद्धानि         | २०७      |
| कुटीचकः                      | „        | आरूढपतितादीनाम्         | २०८      |
| बहूदकः                       | १८४      | संन्यासदीक्षाफलम्       | „        |
| „ धर्माः                     | „        | मोक्षाचारफलम्           | „        |

एतत्पुस्तकसंशोधने यानि पुस्तकानि यैश्च सुमनस्कतया

प्रेषितानि तेषां नामानि संज्ञाश्च यथा

क—भारतमंत्रिसंग्रहात् आंग्लदेशतः प्रेषितानि ग्रन्थलिप्यां लिखितानि—

ख—मद्रपुरसंग्रहात्प्राप्तानि ग्रन्थलिप्याम्.

क्ष— { सप्तपुरस्थ श्रीद्वाबिडमहाशयसंग्रहात् रावचहादुर भिकाजी व्यंकटेश द्रवीड  
इत्येतैः प्राप्तम् ।

ग—मुद्रितानि—

परमुपकृतं नो यैरिमानि प्रेषितानि—

जगन्नाथ रघुनाथ बारपुरे

# अथ स्मृतिमुक्ताफलम्

~~~~→०००→~~~~

श्रीगणेशाय नमः । हरि ओम् ।

अंके विहारिणमनुक्षणमद्रिजायास्तं केवलं कलभमद्वृतमाश्रयामः ॥
नित्यं ए एष बहुभिर्निजसेवकानां प्रत्यूहपुंजकवलैः परितोषमेति ॥ १ ॥

५

पारावती विधिमुखावलिसौधपंक्तेमर्याविहीनजनमानसराजहंसी^१ ॥
योगीश्वरैरपि विमृग्यनिजस्वरूपा वागीश्वरी दिशतु मे वचसां समृद्धिम् ॥ २ ॥

१०

श्रीरामचंद्रचरणद्वयपद्मकोशान्माँ यातु मे चपलमानसचंचरीकः ॥
मुक्तेर्वशीकरणचूर्णमहो यैदीयं गात्रेषु बिग्रति रजोऽपि रजोविहीनाः ॥ ३ ॥

१५

भवकोदंडदलनं भवबंधविमोचनं । दशकण्ठरिपुं वंदे दशस्यंदननंदनम् ॥ ४ ॥

शरैरं तमुपैषि साधुसेव्यं सदयं कञ्चन देवताविशेषम् ।
सहसा चरणांबुजं यदीयं मुनिवैधुर्यनिरासहेतुरासीत् ॥ ५ ॥

उरुविस्तरधर्मशास्त्रवाँद्वैरुपलब्धं महता परिश्रेष्टम् ॥

श्रवणेषु निधीयतां किमन्यैः स्मृतिमुक्ताफलमेकमेव सद्भिः ॥ ६ ॥

वैद्यनाथाध्वरी नाम दासो वाधूलवंशजः । स्मृतिमुक्ताफलं नाम कुरुते सारसंग्रहम् ॥ ७ ॥

क नु विशकलितं तु धर्मशास्त्रं क च पुनराकलने मम प्रवृत्तिः ॥
सरलमतिजुषस्तथाऽपि संतः सततमिदं मम साहसं सहंताम् ॥ ८ ॥

धर्मप्रमाणनिरूपणम् । तत्रादौ धर्मप्रमाणानि निरूप्यते । तत्र मनुः (२१६)

“वेदोऽस्तिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च” ॥ इति ।
जातावेकवचनं । धर्ममूलं धर्मस्य प्रमाणं । न केवलं विध्यात्मक एव वेदो धर्मप्रमाणं किं तु
मंत्रार्थवादात्मकोऽपीत्युक्तमस्तिल इति । अथ यत्र प्रत्यक्षो वेदो नोपलभ्यते तत्र कथमित्यत ॥ २०
उक्तं ‘स्मृतिशीले च तद्विदाम्’ इति । तद्विदां वेदार्थविदां स्मृतिः धर्मशास्त्रेतिहासपुराणानि; शीलं
च धर्ममूलं साद्भिः संभावनीयताहेतुरात्मगुणसंपच्छीलं । तदुक्तं महाभारते (शा. प. १२४।६८)
“तत्तर्कर्म तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि । शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरुनंदन ” ॥ इति ।
अत्रोदाहरणं युधिष्ठिरस्य यक्षरूपधारिधर्मात् स्वसोदरानादरेण नकुलस्य जीवितवरणम् । तद्विदा-
माचारश्चैव धर्ममूलम् । धर्माधिकारनिमित्तशौचाचमनादिलक्षणक्रियाविशेष आचारः । साधूनां २५
परमधार्मिकाणामात्मनस्तुष्टिः मनसो रुचिः । सा च धर्ममूलं । प्रमाणांतरागोचरत्वेन धर्म प्रति
संशायितेष्वर्थेषु यो धर्मत्वेन मनसे रोचते स धर्म इत्यर्थः ।

यद्यप्यप्रत्यक्षो वेदो धर्मस्य मूलभूतोऽस्मदादिभिर्नोपलभ्यते तथापि मन्वादय उपलब्ध-
वंत इत्यनुमीयते । यथाहापस्तंबः “तैषामुत्सन्नाः पाठाः प्रयोगादनुमीयते” इति । तथा
च प्रत्यक्षो वेदस्तेषां धर्मप्रमाणम् । अन्येषां वेदाः स्मृत्यादिकं च प्रमाणमित्यर्थः । ३०
याज्ञवल्क्यश्च (आचारे श्लो. ७)

“श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्” ॥ इति ।
सम्यक्संकल्पजः कामः शास्त्राविरुद्धं यथा स्वर्गकामेन मया जयोतिष्ठोमयागः कर्तव्य
इत्यादिः । व्यासः

“धर्ममूलं वेदमाहुर्ग्रथराशिमकृत्रिम् । तद्विदां स्मृतिशीले च साध्वाचारं मनः प्रियम्” ॥ इति । ३५
हारीतः

१ क्ष-सि । २ क्ष-वा । ३ क्ष-मदीयं । ४ कग-पाठः । ५ क, ग-बोद्धे । ६ तत्तु इतिभार-
तीयपाठः । ७ क्ष-कीर्ति

“वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मर्थियुक्तं वचनं प्रमाणम् ।

यस्य प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कृद्विच्चनं प्रमाणम् ॥ इति ।

आपस्तंवः (१२-३) “धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्वेति” । गौतमः (११) “वेदो धर्ममूलं । तद्विदां च स्मृतिशीले” इति । तेन नित्यनिर्देषवेदमूलकत्वादुपनयनादिरेव धर्मः । न ५ शाक्यादिकल्पितागममूलकचेत्यवंदनकेशोललुंच्छनादिरिति ।

इति धर्मप्रमाणनिरूपणम् ।

अथ स्मृतेः प्रामाण्यम् । तत्र शंखः “वेदसुलाः स्मृतयः” इति । मरीचिः

“हुर्वोधा वैदिकाः शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च येऽस्मिलाः। तत्रैत एव वृष्टार्थाः स्मृतिंते प्रतिष्ठिताः”॥इति।
मन्त्रः (अ. २) —

१० “श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः स्मरन्ति च तथा स्मृतिम् । तस्मात्प्रमाणमुभयं प्रमाणैः प्राप्नितं भुवि ॥
“योऽवमन्येत ते मूर्ले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः । स साधुभिर्विष्णकार्यो नास्तिको वेदनिंदकः” ॥११॥इति।
हारीतः—

“ न यस्य वेदा न च धर्मशास्त्रं न वृद्धवाक्यं हि भवेत्प्रमाणम् ॥

“सोऽधर्मकुदृष्टिहतो दुरात्मा नात्मा अपि तस्येह भवेत्प्रमाणम्” ॥ इति । देवलः—

१५ “मन्वाद्यः प्रयोक्तारो धर्मशास्त्रस्य कीर्तिः । तत्प्रयुक्तप्रयोक्तारो गृह्यकारास्तु मंत्रतः” ॥इति ।
अंगिराः—

“प्रमाणानि प्रमाणज्ञैः परिपाल्यानि यत्नतः । सीद्धंति हि प्रमाणानि प्रमाणैरव्यवस्थितैः”॥ इति।

अथ धर्मविहारम्

“वाक्मर्तजन्यो भयदयनिःशेयसहेतरपर्वास्य आत्मगणो धर्मः” इति हरदत्तः ।

अत्र मनः (२१)

“विद्वद्विः सेवितः सद्विनित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यस्तं धर्मं व्यैवस्यत” ॥ इति ।
विद्वद्विर्वदार्थविद्विर्वदेषरागिभिः सद्विर्धर्मो नित्यं सेवितः धर्मत्वेन नित्यमनुष्ठितः न शोक-
मोहादिना कादाचित्कनिमित्तेन । किंच हृदयेनाभ्यनुज्ञातः । इदमेव श्रेय इति स्वारस्ययुक्तेन

२५ हृदयेन स्वीकृतः। एवंभूतो योऽर्थस्तं धर्म व्यवस्थत हे महर्षयो निश्चिनुतेत्यर्थः। स एव (११०८)
 “आचारः पर्मो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन्स्त्रये युक्ते नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः”॥ इति।
 त्रये श्रौतस्मार्ताचारेण्वित्यर्थः। याज्ञवल्क्यः (११३)

“देशे काल उपायेन द्रव्यं अङ्गासमन्वितं । पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥

देशः करुक्षेत्रादि । काल उपगगादि । उपायः शास्त्रोक्तेतिकर्तव्यताक्लापः । द्रव्यं गवादि ।

३० श्रद्धा आस्तिक्यवृद्धिः । तदन्वितं यथा भवति तथा पात्रे प्रदीयते यन्तद्वर्मस्योत्पादकम् ।
किमेतावदेव धर्मस्योत्पादकम् । नेत्याह सकलामिति । अन्यदपि यागादि । तत्सकलं धर्मस्य
क्रमकम् । विश्वामित्रः—

“यमार्याः क्रियमाणं हि शंसंत्यागमवोद्दिनः । स धर्मो; यं विगर्हति तमधर्मं प्रचक्षते” ॥ इति ।
व्यासः—

३५ “सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषो ह्नीः क्षमाऽर्जवम् । ज्ञानं शमो द्रुया ध्यानमेष धर्मः सनातनः”॥ इति ।

१ ख-विकस्ति । २ क्ष-तूभे । ३ क्ष-दुष्ट । ४ क्ष-समंतः; कग-स्तु तन्त्रतः । ५ 'निवोधत' इनि पाठः । ६ क-परनो; खग-प्रथमो । ७ 'सदायुक्तो' इनि मुद्रितमानवे । ८ क्ष-चारात्तामि । ९ क्ष-एतद्वा । १० ख-कारणं ।

बृहस्पतिः—

“दैनं यज्ञः सतां पूजा वेदधारणमार्जवम् । एष धर्मः परो ज्ञेयः फलवान्प्रेत्य चेह च ॥
“भोगेष्वसक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम् । श्रेयः परं मनुष्याणां प्राह पञ्चशिखो मुनिः”॥ इति ।
परं धर्ममाह याज्ञवल्क्यः (१८)—

“इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्”॥ इति ५
योगेन चित्तवृत्तिनिरोधेन । आपस्तंबः (१२०६-७) “न धर्मधर्मौ चरत आवं स्व इति ।
न देवगंधर्वा न पितर इत्याचक्षते १५ धर्मोऽयं धर्म इति । यत्त्वार्याः क्रीयमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो
यद्वर्हते सोऽधर्मः” इति । आवासिति छांदसं रूपम् । आवासित्यर्थः । यदि हि धर्मधर्मौ विग्रहवतावावां
स्व इति ब्रुवाणौ चरेताम् यदि वा देवादयः प्रकृष्टज्ञाना ब्रूयुरिमौ धर्मधर्मविति तदोपलब्धिः
स्यात्; तदभावाच्छिष्टा यं प्रशंसन्ति स धर्मः । यद्वर्हते सोऽधर्म इत्यर्थः । इति धर्मनिरूपणम् ॥ १०

शिष्टलक्षणमाह बौधायनः (११५) “शिष्टाः स्वलु विगतमत्सरा निरहंकाराः
कुंभीधान्यौ अलोलुपाः । दंभदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः” इति । स एव—

“धर्मशास्त्ररथारुदा वेदस्वद्धरा द्विजाः । क्रीडार्थमपि यं ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः” इति ।
याज्ञवल्क्यः (१९)—

“चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा । सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तम्”॥ इति १५
तिस्रो विद्या अधीयत इति त्रैविद्यास्तेषां समूहः त्रैविद्यमित्यर्थः । पराशरः (८१५)—

“चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः”॥ इति ।
आपस्तंबः (१२०१८-९)—“सर्वजनपदेष्वेकांतसमाहितमार्याणां वृत्तं सम्यक् विनीतानां
वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदांभिकानां वृत्तसादृश्यं भजेतैवमुभौ लोकावभिजयति” । इति ।
विनयशमादिगुणोपेतानामार्याणां सर्वजनपदेषु यदेकांतेनाव्यभिचारेण समाहितमनुष्ठितं वृत्त- २०
मनुष्ठानं, न मातुलसुतापरिणयनवत्कतिपयविषयं, तदृत्तसादृश्यं भजेत; एवं कुर्वन्नभौ लोकाव-
भिजयतीत्यर्थः ।

सर्ववर्णानां स्वस्वधर्मानुष्ठाने फलनिरूपणम् । स एव (२११२१२-३)—

“सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठाने परमपरिमितं सुखम् । ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जाति रूपं
वर्णं बलं मेधां प्रज्ञां द्रव्याणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यते । तच्चक्रवदुभयोर्लोकयोः सुख एव वर्तते” २५
इति । अस्यार्थः—सर्वेषां वर्णानां वर्णश्रमप्रयुक्तधर्मानुष्ठाने परमपरिमितमुत्कृष्टमक्षयं सुखं
स्वर्गाख्यं भवति; न केवलमेतावत्किंतर्हि, ततः परिवृत्तौ पुनर्जन्मनि कर्मफलशेषेणाभुक्तां-
शेनाभिजात्यादीनि प्रतिपद्यते; तस्माच्चक्रवदुभयोर्लोकयोरिह चामुष्मिश्र सुख एव वर्तते
न जातुचिददुःख इति । तैत्तिरीयकोपनिषदि श्रूयते “धर्म इति धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं
धर्मान्नाति दुश्चरं तस्माद्वर्मे रमंते” इति । धर्म इति धर्मो नाम नित्यनैमित्तिकादि श्रौतं स्मार्तं ३०
च कर्म; तेन धर्मेण सर्वमाध्यात्मिकादिभेदभिन्नमिदं जगत्परिगृहीतं स्थितम् तस्माद्वर्मात्परं
नास्ति वैदिकमुकुमुकुभिः श्रेयोर्थिभिश्च धर्म एव कर्तव्यः; तस्माद्वर्मे रमंत इत्यर्थः तत्रैव
पुनः श्रूयते—“धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा । लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पति । धर्मेण
पापमपनुदति । धर्मे सर्वे प्रतिष्ठितम् । तस्माद्वर्मे परमं वदंतीति” । अयमर्थः । धर्मः पूर्वोक्तः,
विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्यनेनेति प्रतिष्ठा; श्रौतस्मार्तकर्मभिः समस्तजगद्विषयत ३५
इत्यर्थः । लोके धर्मिष्ठमतिशयेन धर्मानुष्ठातारं प्रजा धर्मावाप्त्यर्थमधर्मापाकरणार्थं वोपसर्पति ।

१ ख्यभक्ष-ज्ञान । २ कर्ग-लब्ध, । ३ क्ष-धाना । ४ नारायणोपनिषदि । ५ ख्य-मौषि- ।

धर्मेण विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवननिमित्तं पापमपनुदति । धर्मे सर्वे प्रतिष्ठितमितरथा बाधितं स्यात् तस्माद्धर्मं परमं वदेतीति धर्मविद् इति । चंद्रिकायाम्

“ वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्तते । वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं किल ॥

“ तथैवाश्रममाश्रित्य अधिकारः प्रवर्तते । स एवाश्रमधर्मः स्याद्विद्वादंडादिको यथा ॥

“ वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु यथा मौंजी तु मेखला”॥इति

५ मनुः (४।२।३८-२।४।३)—

“धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकिमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

“नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः । न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

“एकः प्रजायते तंतुरेक एव प्रमायते । एकोऽनुभुंके सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

१० “मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ । विमुखा बांधवा यांति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

“तस्माद्धर्मं साहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छन्नैः । धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥

“धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा वीतकल्पम् । परलोकं नयत्याशु भास्वतं से शरीरिणम् ॥

“श्रुतिस्मृत्युदितं कुर्वन्निबद्धः स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतंद्रितः”॥इति॥

धर्मस्य मूलं धर्ममूलम् । धर्मस्याचाराधीनत्वम् । आचारप्रसंशा । स एव (१।१।१०)—

१५ “एवमाचरतो दृष्टवा धर्मस्य मुनयो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ”॥

“आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्वते । आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभागभवेत् ”॥

(४।१।५।६-१।५।८).

“आचाराद्विभूते ह्यायुराचारादीसिताः प्रजाः । आचाराद्वनमक्षश्यमाचारो हंत्यलक्षणम् ॥

“दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निदितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

२० “सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्धानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ”॥

वसिष्ठः (६।३)—

“आचारहीनं न पुनाति वेदा यद्यप्यधीताः सह षट्ठिरंगैः ॥

“छंदांस्येनं सृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुंता इव जातपक्षाः ॥

“कपालस्थं यथा तोयं श्वट्टौ च यथा पयः । हुष्टं स्यात्स्थानदोषेण वृत्तहीने तथा श्रुतम्॥

२५ “ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं नोपभोगाय कल्पते । इह क्लेशाय महते प्रेत्यानंतसुखाय च ”॥

पराशारः (६।३)

“चतुर्णामपि वर्णानार्माचारो धर्मपालकः । आचारप्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ”॥

“शिष्टानामभिमतो दयादाक्षिण्यादवन्वितो वृत्तिविशेष आचारः” इति माधवीये । बृहस्पतिः—

“शौर्यवीर्यार्थराहितस्तपोज्ञानविवर्जितः । आचारहीनः पुत्रस्तु मूत्रोच्चारसमः स्मृतः ”॥

३० शौर्यादिराहितः क्षत्रियपुत्रः अर्थराहितो वैश्यपुत्रः तपोज्ञानाचारराहितो ब्राह्मणपुत्र इति विवेकः ॥

भगवान्—

“वर्णानामाश्रमाणां च या मर्यादा मया कृता । तां ये समनुवर्तते प्रसादस्तेषु संभवेत् ”॥

आश्वमेधिके—

“श्रुतिः स्मृतिर्मैवाज्ञा यस्तामुलं द्युम्य वर्तते । आज्ञाष्ठेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः”॥इति”

३५ स्मृत्यंतरे—

“यथेक्षुहेतोः सलिलं निषेचितं तृणानि वल्लीरपि च प्रसिंचति ।

१ कस्त्रग-सूयते, २ खक्षग-त्पञ्चुतो । ३ कज्ञक-समुदाचार-द्विजः । ४ क्ष-कूपावस्थे ।

५ कस्त्रग-नंद । ६ क-वेदा ।

एवं नरो धर्मपथेन वर्तयन्यशश्च कामांश्च वसूनि सोऽश्रुते ” ॥ नारदः—

“ धिग्जन्माचाररहितं जन्म धिङ्मानवर्जितम् । शूद्रेऽपि दृश्यते वृत्तं ब्राह्मणे न तु दृश्यते ॥

‘ शूद्रोऽपि ब्राह्मणो ज्ञेयो ब्राह्मणः शूद्र एव सः । हरिभक्तिपूरो वा ऽपि हरिध्यानरतोऽपि वा ॥

‘ भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते ॥

“ वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वाऽपि महेश्वरे । स्वाँचारात्पतितं भूदुं न पुनाति द्विजोत्तमम् ॥ ५

“ पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवणम् । यज्ञो वा विविधो ब्रह्मस्त्यक्ताचारं न रक्षति ॥

“ आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम् । आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न सिद्ध्यति ” ॥

महाभारते आनुशासनिके—

“ आचारालुभते चायुराचारालुभते श्रियम् । आचारालुभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥

“ ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्रांतिलंघिनः । अधर्मजा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ” ॥ इति । १०

पारिजाते—

“ सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च तथैव च । प्राप्नुवन्ति कुयोनित्वं मनुष्यास्तद्विपर्यये ” ॥

सदाचारलक्षणम् विष्णुपुराणे (तृतीयांशे अ. ११ श्लो. २-३)—

“ सदाचारवतां पुंसां जितौ लोकावुभावपि ।

“ साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः । तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ” ॥ १५

संस्कारमंजर्याम्

“ यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः । श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते ” ॥

मनुः—

“ धर्मव्यतिक्रमो दृष्टो महतां साहसं तथा । तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः संसीदत्यवरोऽबलः ॥

“ तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीद्रियाणि च । दोषैस्ते नोपलिप्यंते पद्मपत्रमिवांभसा ” ॥ २०

कतकभरद्वाजावन्योन्यं व्यत्यस्य भार्ये जग्मतुः । वसिष्ठश्चांडालीमक्षमालीं प्रजापतिश्च स्वां

द्वितिरमित्यादि धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः । जामदग्न्येन रामेण पितृवचनादविचारेण मातुः शिर-

श्छिन्नमित्यादि साहसं दृष्टम् । तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः । तदिति “ नपुंसकमनपुंसकेनेकवच्चास्यान्यतर-

स्याम् ” (१२।३९) इत्येकशेष एकवद्वावश्च । तं व्यतिक्रमं तच्च साहसमन्वीक्ष्य दृष्ट्वा स्वयमपि

तथा प्रयुंजानोऽवर इदानींतनः अबलः दुर्बलः संसीदति प्रत्यवैति । तेषामपि किं दोषः । नेत्याह २५

तेजोमयानीति । तव्यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयत एवं द्व्यस्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयंत इति श्रुतेः ।

अत्रापस्तंबः—(२।१३।७-९) “ दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम् । तेषां तेजोविशेषेण

प्रत्यवायो न विद्यते तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः सीदत्यवरः ” इति । गौतमः (१।३-४) “ दृष्टो धर्म-

व्यतिक्रमः साहसं च महताम् । न तु दृष्टार्थे । अवरदौर्बल्यात् ” इति । न तु दृष्टार्थे धर्मव्यति-

क्रमादाविदानींतनस्य साधीयसी प्रवृत्तिरित्यर्थः । बोधायनः— ३०

“ अनुष्टितं तु यद्वैर्मुनिभिर्यदनुष्टितम् । नानुष्टेयं मनुष्यैस्तदुक्तं कर्म समाचरेत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १५६)—

“ कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्वर्म समाचरेत् । अस्वर्ग्ये लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेत् तु ” ॥

धर्म विहितमपि लोकविद्विष्टं यस्मादस्वर्ग्यमित्यर्थः ।

इति धर्मनिष्ठपणम् ॥ सदाचारनिष्ठपणम् ॥

३५

अथ स्मृतिप्रशंसा । मनुः (३।१०३)—

- “ धर्मशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः । मनोवागदेहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥
- “ अहः स्याद्वद्वयकव्यानामर्हश्च पृथिवीमिमाम् । ग्रहणाद्वर्मशास्त्रस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥
- “ विदुपा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः । शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥
- ५. “ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् । इदं यशस्यं सततमिदं नैश्रेयसं परम् ॥
- “ धर्मशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ विद् । पुनाति हि पितृन्सर्वान्सप्तसप्तावरांस्तथा ॥
- “ अमार्गेण प्रवृत्तानां व्याकुलेन्द्रियचेतसाम् । निर्वर्तकं धर्मशास्त्रं व्याधीनामिव भेषजम् ॥
- “ श्रुतिस्मृती चक्षुषी द्वे द्विजानां न्यायवर्त्मन्मिति । मार्गमुजङ्गंति तद्वीना प्रयतंति पथश्चयुताः ” ॥

हारीतः—

१०. “यथा हि वेदाध्ययनं धर्मशास्त्रमिदं तथा । अध्येतव्यं ब्राह्मणेन नियतं स्वर्गमिच्छता” ॥

शंखलिखितौ—

- “ रागदेवाग्निदग्धानामज्ञानविषपायिनाम् । च्विकिता धर्मशास्त्राणि व्याधीनामिव भेषजम् ” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्

- “ स्मृतिं विना न हि ज्ञानं धर्मस्य भवति क्रिचित् । न जातु ज्ञायते ऋषमालोकेन विना यथा” ॥

१५. याह्ववल्क्यः (आ. ३)—

“पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमित्रिताः । वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश” ॥
विद्यानां स्थानानि चतुर्दशं धर्मस्य स्थानानि हेतवः । एतानि ब्रैवर्णिकैरध्येतव्यानि तदंतर्गत-
त्वाद्वर्मशास्त्रमध्येतव्यम् । शूद्रं प्रकृत्ययमः—“तस्मादस्याधिकारोऽस्ति न वेदेषु न तु स्मृतौ” इति ।
मनुरपि (२।१६)—

२०. निषेकादिश्वशानांतो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥

मानवस्य धर्मशास्त्रस्य श्रैष्टुचं दर्शयत्यंगिराः—

- “ यत्पूर्वं मनुना प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुक्तमम् । न हि तत्समतिकम्य वचनं हितमात्मकम् ॥

- “ वेदादुपनिवद्वत्वात्प्राधान्यं तु मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते” ॥

श्रुतिरपि —“ यद्वै किंच मनुरवद्वद्वेषजम् ” इति । व्यासहारीतौ—

२५. “ अवेक्षेत च शास्त्राणि मन्वादीनि द्विजोत्तमः । वैदिकान्नियमान्वेदान् वेदांगानि च सर्वशः ॥

- “ धर्मशास्त्रं सदा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः । वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशम् ॥

- “ स्मृतिर्हीनाय विप्राय श्रुतिर्हीने तथैव च । दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥

- “ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेत् द्विजः ॥

- “ श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी द्वे विनिर्मिते । काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तिः” ॥

३०. विष्णुः (९।८।८२)—

“पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदचिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः” ॥
वासिष्ठः—

- “ अप्रामाण्यं च वेदानामार्षणां चैव कुरुत्सनम् । अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः” ॥

व्यासः—

३५. “ तेन स्मार्तमनुष्टानमंतरेण न वैदिकम् । प्रवर्त्तने द्विजातीनां कर्मशुद्धिमभीप्सताम् ” ॥

प्रचेताः—

“अमीमांसा बहिःशास्त्रा ये चान्ये वेदवर्जिताः । यत्ते ब्रूयुर्न् तत्कुर्याद्वैदाद्वर्मो विधीयते”॥इति।
चतुर्विंशतिमते—

“अर्हचार्वाक्वाक्यानि बौद्धादिपठितानि च । विप्रलंभकवाक्यानि तानि सर्वाणि वर्जयेत्” ॥ इति ।
इति स्मृतिप्रशंसा

अथ श्रुतिस्मृत्यादीनां बलाबलनिष्पत्तिम् । मनुः (२।१४)

५

“श्रुतिद्वैषं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मविभौ स्मृतौ । उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः” ॥
अत्रोदाहरणमाह स एव (२।५)—

“उदितेऽनुदिते चैव समयाविष्टिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः” ॥

समयाविष्टिते उदितानुदित इत्यर्थः । अयं च यथाकल्पसूत्रं व्यवस्थितविकल्पः ।

तथा च सुमंतुः—

१०

“धर्मशास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमभेदौ यथा भवेत्” ॥

“तस्मिन्कुलक्रमायातमाचारं त्वाचरेऽबुधः । सँ गरीयान्महाबाहो सर्वशास्त्रोदितादिपि”॥ इति ।
मनुः (४।१७८)—

“येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गस्तेन गच्छन्न रिष्यति”॥इति।

स्मृत्यादिद्वैषेऽपि विकल्प एव द्रष्टव्यः । तथा च गौतमः (१।५)—“तुल्यबलविरोधे १५-

विकल्पः” इति । तुल्यबलयोः श्रुत्योः स्मृत्योश्च विरोधे विकल्प इत्यर्थः । लौगाक्षिः

“श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी । अविरोधे सँदा कार्यं स्मार्त्तं वैदिकवत्तदा” ॥

विरोधाधिकरणन्यायोऽत्रानुग्राहको द्रष्टव्यः । तथाहि— अध्वरे महावेद्यां सदोनामकस्य
मंडपस्य मध्ये काचिदुदुंबरशास्त्रा स्तंबत्वेन निखाता भवति तामुद्दिश्य वस्त्रवेष्टनं स्मर्यते—

“ओदुंबरी सर्वा वेष्टयितव्या” इति । तत्र संशय एषा स्मृतिः प्रमाणं न वेति । तत्र “अष्टका कर्तव्या” २०
इत्यादिस्मृतेमूलवेदानुमापकत्वेन यथा प्रामाण्यम् तथैव सर्ववेष्टनस्मृतिः प्रमाणमिति पूर्वपक्षः ।

“ओदुंबरीं स्पृष्टोद्भायेत्” इति प्रत्यक्षश्रुतौ स्पर्शो विधीयते । न चासौ सर्ववेष्टने सत्युपपद्यते । तथा
च सर्ववेष्टनस्मृतिमूलभूतवेदानुमानस्य प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धस्य कालात्ययापदिष्टत्वेन निर्मूला सर्व-
वेष्टनस्मृतिरप्रमाणमिति सिद्धांत इति । संग्रहे

“श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विरुद्धेषु परस्परम् । पूर्वं पूर्वं बलीयः स्यादिति न्यायविद्वो विदुः” ॥ इति । २५
चतुर्विंशतिमते—

“स्मृतेर्वेदविरोधेन परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौकिकं वाक्यं श्रुतिबाधात्परित्यजेत्”॥ इति ।

व्यासः—

“धर्मं यो बाधते धर्मः स न धर्मः कदाचन । अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सञ्चिरुच्यते ॥

“तस्माद्विरोधे धर्मस्य निश्चित्य गुरुलाघवम् । तयोर्भूयस्तनं विद्वान्कुर्याद्वर्मविनिर्णयः” ॥ इति । ३०

एवं स्मृत्याचारयोर्विरोधे स्मृतिर्बलीयसी । “श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तदलाभे शिष्टाचारः
प्रमाणम्” इति वसिष्ठस्मरणात् (१।४-५) । सदाचारद्वैविध्ये तु यस्मिन्देशे यस्मिन्काले

यस्मिन्पुरुषे रागद्वेषरहितस्य शिष्टत्वातिशयबुद्धिः तादृशस्याचारो मुख्यत्वेन ग्राह्यः । एत-
देवाभिप्रेत्य गुरोः शिष्यानुशासने तैत्तिरीयाः समामनंति—

१ कर्खम-बौद्धानि । २ कर्खग-यत्र । ३ स-सा । ४ थ-यदा । ५ खक्ष-स्वस्य ।

६ शीक्षोपनिषदि ।

“अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्श्निः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः” इति ॥
संमर्श्निः युक्तिकुशलाः । युक्ताः शास्त्रतत्परा आयुक्ताः तदर्थनुष्ठाननिरताः । अलूक्षाः कोधादिवर्जिताः । धर्मकामाः जीवन्मुक्तवत्कर्मण्यौदासीन्यमकुर्वाणाः उक्तरीत्या कस्यचिच्छिष्टा-५ चारविशेषस्य मुख्यत्वे सत्यपरो गोणो भविष्यति न तु सर्वथैवानाचारः । एवं च सत्येकामेव तैत्तिरीयशास्त्रामधीत्य बोधायनापस्तंबादिमभेदेन परस्परविरुद्धमनुष्ठानमाचरतामुभयविधानां पुरुषाणां स्वस्वपुरुषपारंपर्यक्रमागत एवाचारो मुख्यः । कदाचित्तदसंभवे मतांतरेणाप्यनुष्ठानमेव श्रेयो न तु सर्वथा तल्लोपो युक्तः । इति श्रुत्यादीनां बलाबलम् ।
अथ स्मृतिकर्त्तुनिरूपणम् । पराशरः (१२०)—

- १० “कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रुतिस्मृतिसमाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा” ॥
क्षयसहिता उत्पत्तिः क्षयोत्पत्तिः । तयोपलक्षिता भवन्ति कल्पे कल्पे महाकल्पे अवांतरकल्पे च ।
ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा महाकल्पावसाने क्षीयन्ते महाकल्पादावुत्पद्यन्ते । एवमवांतरकल्पानामवसाने प्रारंभे च स्मृत्यादीनां निर्णेतारो मन्वादयः क्षयोत्पत्तिभ्यामुपलक्ष्यन्ते । चकारेणानुको धर्मः समुच्चर्चायिते । सर्वदेव्यनेन सृष्टिसंहारप्रवाहस्यानादित्वमनंतत्वं च दर्शितम् । स एव (१२१)
- १५ “न काश्चिद्देवकर्ता च वेदं श्रुत्वा चतुर्मुखः । तथैव धर्मान् स्मरति मनुः कल्पांतरे तथा” ॥
कल्पांतरे धर्मान् स्मरति इति पदत्रयं पूर्वार्धेऽपि संबध्यते । महाकल्पे चतुर्मुखः परमेश्वरेण दत्तं वेदं श्रुत्वा तत्र विप्रकीर्णान्वर्णाश्रमादिधर्मान्स्मृतिग्रंथरूपेण उपनिब्राति तथैव स्वायंभुवो मनुः प्रत्यवांतरकल्पं वेदोक्तधर्मान्विश्वाति । मनुग्रहणेनात्रिविष्णवादय उपलक्ष्यन्ते । मन्वादीनाह याज्ञवल्क्यः (आ. ४-५)—
- २० “मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनौऽगिराः । यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥
“पगशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः” ॥
उशनःशब्दांतस्य दंदैकवद्वावः । स्मृतिरत्ने—
“मनुवृहस्पतिर्दक्षो गौतमोऽथ यमोऽगिराः । योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपराजरौ ॥
“संवर्णोशनसौ शंखलिखितावविरेव च । विष्णवापस्तंबहारीता धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः” ॥
- २५ “एते ह्यष्टादश प्रोक्ता मुनयो नियतव्रताः” ॥ अंगिराः—
“जावालिनाचिकेतश्च स्कंदो लोकाश्चिकाश्यपौ । व्यासः सनत्कुमारश्च शंतनुर्जनकस्तथा ॥
“व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातुकर्णिः कपिंजलः । बोधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च ॥
“पठीनसिगोभिलभेत्युपस्मृतिविधायकाः” ॥ शंखः—“मनुयमदक्षविष्णवंगिरोबृहस्पत्युशनापस्तंब-गौतमसंवर्तात्रेयहारीतकात्यायनशंखलिखितपरगशरव्यासशातातपप्रचेतोयाज्ञवल्क्यादयः” इति ।
- ३० तथा—
“वसिष्ठो नारदश्चैव सुमंतुश्च पितामहः । वभ्रुः काष्णाजिनिः सत्यवतो गार्यश्च देवलः ॥
“जमदग्निभरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः कतुः । आत्रेयश्छागलेयश्च मरीचिर्मत्त्य एव च ॥
“पारस्करो क्रष्णशृंगो वैजावापस्तथैव च । इत्येते स्मृतिकर्त्तर एकविंशतिरीतिः” ॥ शंखहे—
“अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः । पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्तकाः” ॥
३५ “एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा । तान्येतानि प्रमाणनि न हृन्तव्यानि हेतुभिः” ॥

१ कखगक्ष-लक्षण । २ कखग-सदाचार । ३ कखग-श्रुत्या । ४ कखग-विहन्यानि ।

“यस्तानि हेतुभिर्हन्यात्साँऽधे तमसि मज्जति”। अग्निवेश्यः “बोधायनमापस्तं बं सत्याषां द्राह्यायणमागस्त्यं शाकल्यमाश्वलायनं शांभवीयं कात्यायनमिति नवानि पूर्वसूत्राणि । वैखानसं शौनकीयं भारद्वाजमाग्निवेश्यं जैमिनीयं माधुर्यं माध्यं दिनं कौँडिन्यं कौषीतकमिति नवान्यपरसूत्राण्यष्टादशसंख्याकाः शारीराः संस्काराः” इति । इति स्मृतिकर्तृनिरूपणम् ॥

अथ धर्मदेशाः । याज्ञवल्क्यः (१२) “यस्मिन्देशे मृगः कृष्णः तस्मिन्धर्मान्ति- ५ बोधत्” । कृष्णसारो मृगो यस्मिन्देशे स्वच्छं दं विहरति तस्मिन्देशे धर्मा अनुष्ठेया इत्यर्थः । तथा संवर्त्तः—

“स्वभावाद्यत्र विचरेत्कृष्णसारः सदा मृगः । धर्मदेशः स विजेयो द्विजानां कर्मसाधनम्” ॥
स्मृतिचंद्रिकायां

“कृष्णसारैर्यवैद्यर्भश्चातुर्वर्ण्यश्रमैस्तथा । समृद्धो धर्मदेशः स्यादाश्रयेरन्विपश्चितः” ॥ १०
मनुः (२१७-१८)—

“सरस्वतीष्टद्वत्योदैश्वनयोर्यद्दंतरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

“यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्तमागतः । वर्णानां सांतरालानां स सदाचार उच्यते” ॥
सांतरालानां वर्णसंकरजसहितानां । स सदाचारः तस्य धर्म प्रति प्रामाण्यमित्यर्थः ।
स एव (२१९-२३)— १५

“कुरुक्षेत्रं च मतस्यात्म पांचालाः शूरसेनयः । एव ब्रह्मषिदेशो वै ब्रह्मावर्तादिनंतरः” ॥
अनंतरः किंचिन्न्यूनः ।

“एतदेशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षंते पृथिव्यां सर्वमानवाः” ॥
अग्रजन्मनः ब्राह्मणस्य । शिक्षंते ऽवगच्छन्ति ।

“हिमवद्विंध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तिः” ॥ २०
विनशनं सरस्वत्या अंतर्धानदेशः ।

“आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवांतरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः” ॥

“कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः । स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्” ॥
अतःपरं एम्यो ब्रह्मावर्तादिभ्योऽन्यः । म्लेच्छा यज्ञानधिकृताः ।

“एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः । शूदस्तु यस्मिन्कस्मिन्विवेद्वृत्तिकर्षितः” ॥ २५
हारीतः (११६)—

“कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते । तस्मिन्देशे वसन्धमैः सिध्यन्ति द्विजपुंगवाः” ॥
द्वयासः:

“ब्रह्मावर्तः परो देशो कृषिदेशस्त्वनंतरः । मध्यदेशस्ततो न्यून आर्यावर्तस्त्वनंतरः ॥

“चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विव्यते । तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्तमतः परम्” ॥ ३०
न म्लेच्छदेशे श्राद्धं कुर्यात् गच्छेन्म्लेच्छविषयमिति । आदिपुराणे—

“अधर्मदेशमध्ये तु कृत्वा क्रतुशतान्यपि । न गच्छति द्विजश्रेष्ठ स्वर्गमार्गं महानपि” ॥
चंद्रिकायां—

“आर्यावर्तमतिक्रम्य विना तीर्थक्रियां द्विजः । आज्ञां चैव तथा पित्रोरैदेवेन विशुद्धयति” ॥
आपस्तं बः (११५।२२) “प्रभूतैधोदकग्रामे यत्रात्माधीनं प्रयमणं तत्र वासो धर्म्यो ३५
ब्राह्मणस्य” । प्रभूतानि एधांसि उदकं च यस्मिन् तस्मिन्ग्रामे ब्राह्मणस्य वासो धर्म्यः । तत्रापि

न सर्वत्र । किं तर्हि यत्रात्माधीनं प्रयमणं प्रायत्यं मूत्रपुरीषप्रक्षालनादीनि यत्रात्माधीनानि तत्र । यत्र तु कूपेष्वैवोदकं तत्र बहुकूपेष्वपि न वस्तव्यम् । यदाह बोधायनः

“उदपानोदके ग्रामे धार्मिको वृष्टर्णपतिः । उषित्वा द्वादशसमाः शूद्रसाधम्यमृच्छति” ॥
यथा वृष्टर्णपतिः शूद्रसाधम्यमृच्छति तथा धार्मिकोऽपि एवंविधे ग्रामे वसन्शूद्रसाधम्य

५ प्राप्नोतीत्यर्थः । संग्रहे—

“कूपस्नानं तु यो विप्रः कुर्याद्वादशवार्षिकम् । स तेनैव शरीरेण शूद्रत्वं यात्यसंशयः” ॥ इति ।
मैनुः (४।६०—६१)

“नाधार्मिके वसेद्वामे न व्याधिवहुले भृशम् । नैव प्रपवेताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥

“न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृत्ते । न पाषंडजनाँकीर्णे नोप्सृष्टेऽत्यजैर्नैः” ॥

१० उपसृष्टे गृहीते उपद्रुते वा । व्यासः—

“पापदेशाश्च ये केचित् पापैरध्युषिता जनैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्रुते” ॥
चंद्रिकायां—

“सौराष्ट्रं सिंधुसौवीरमावंत्यं दक्षिणापथम् । गत्वैतान्कामतो देशान्कलिंगांश्च पतेह्विजः” ॥

“अंगवंगकलिंगांधान्पार्वतीयान् खषांस्तथा । सिंधुसौवीरसौराष्ट्रान्पारदानांध्रमालवान्” ॥

१५ “निवासाय द्विजो नित्यमनापदि विवर्जयेत् । एतानप्यापदि॑ गृही संश्रयेद्वृत्तिकर्शितः” ॥
बोधायनः (१।१२९—३१)

“आवंतयोऽग्न मगधा सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः । उपावृत्सिंधुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः” ॥

“सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यंतवासिनः । अंगवंगकलिंगांश्च गत्वा संस्कारमर्हति” ॥

प्रत्यन्तवासिनः चंडालप्रदेशाः “आरद्वान्कारस्करान्पुण्ड्रान् सौवीरान् वंगकलिंगान् प्राग्यूनानि
२० च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत् सर्वपृष्ठत्रा वा (३०) ” । अथाप्युद्धाहरात् (३१)

“पदम्यां स कुरुते पापं यः कालिंगान् प्रपद्यते । क्षयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वेश्वानरं हविः” ॥ इति ।

इति धर्मदेशानिरूपणम् । अथ निषिद्धेशापवादाः । व्यासः—

“ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्ते तथाश्रमाः । पुण्यत्रिपथगा येषां मध्ये याति सरिद्विरा ॥

“प्रभासे पुष्करे काश्यां निमेषेऽमरकंटके । गंगायां सरयूतीरे निवसेद्वार्मिको जनः” ॥

२५ “अंतर्वेदिर्ध्यदेशो ब्रह्मावर्त्त च यज्ञयम् । मिश्रकं सरयूतीरं पुष्करं नैमिषं तथा ॥

“देशानेतान्निवासाय संश्रयेन् द्विजातयः” ॥ धर्मशास्त्रसारे—

“चांद्रायणानि कृच्छ्राणि महासांतपनानि च । प्रायश्चित्तानि दीयंते यत्र गंगा न विद्यते ॥

“कावेरी तुंगभद्रा च कृष्णी वेर्णी च गौतमी । भागीरथी च विश्वाताः पंचगंगाः प्रकीर्तिः” ॥

पितामहः—

१० “शूद्रराज्येऽपि निवसेद्वदि मध्ये तु जानहवी । सोऽपि पुण्यतमो देशो नार्यैरपि समाश्रितः” ॥
गौतमः (१।६५) “प्रभूतैऽवोदकयवसकुशमाल्योपनिष्ठः णमार्यजनभूयिष्ठमनलससमृद्धं धार्मिका-

धिष्ठितं निकेतमावसितुं यतेत्” । एधाः काष्ठार्दीनि । इधमेधः समिति॑ इत्यमरकोशो (२।४।१३) ।
साहचर्यनियमेन नपुंसकलिंगत्वमेवाच्चितमेवःशब्दस्य । तथाहि पांडन्चकुलोदये “स्थापिते

सदसि जातवेदसि प्रापितैधसमभीरतेजसि” इति । अत्र तु आर्षोऽयमेधःशब्द अकारांतः । एधाः

५ काष्ठार्दीनि । पाकाद्यर्थमुदकं स्नानपानयोग्यम् । यवसास्त्रृणानि गवाद्यर्थम् । अत्रापि समाधानं तु
पूर्ववर्ताकुशा दर्मा इष्टचाद्यर्थमाल्यानि पुष्पाणि देवतार्चनार्थम् । उपनिष्ठकमणं बाह्यसंचारार्थमव-

१ कर्त्तव्य-पाठः । २ इदंतु क-गौ न पठतः । ३ ख-गणा । ४ ख-सो ष-पद्यपि । ५ क-प्रानू-
नानि । ६ खगक्ष-ण ।

काशः । एधादीनि प्रभूतानि यत्र । आर्यस्त्रैवर्णिकाः, तैर्जैर्भूयिष्ठं व्याप्तम् । अलसाः कृत्येषु निरुद्यमाः । तद्विपरीता अनलसास्तैः समृद्धम् । धार्मिकैरधिष्ठावृभिरधिष्ठितमेवंभूतं निकेतनं स्थान-मावसितुं यतेत । एवंभूते स्थाने यत्नैरपि निवसेदित्यर्थः । इति निषिद्धदेशापवादाः ।

अथ युगधर्माः । मनुः (१६७, ६९)

“दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदग्यनं रात्रिः स्याद्विष्णायनम् ॥ ५

“चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः” ॥
वर्षाणां देववर्षाणाम् । संध्या युगारंभकालः । संध्यांशः युगावसानकालः ।

“इतरेषु संसंध्येषु संसंध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्तते सहस्राणि शतानि च” (१७०) ॥

इतरेषु त्रेताद्वापारकलियुगेषु । एकापायेन एकलोपेन । पराशरः—

“कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्वादशमिरुच्यते” ॥ १०

मनुः (१८३)—

“अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः । कृते त्रेतादिषु त्वेषां वैयो ऽहसति पादशः” ॥

यत्पुनः इतिहासपुराणेषु बहुवर्षसहस्रजीवित्त्वमुक्तं तत्त्वेषां अद्वातपसा साधितमिति वेदितव्यम् ।
तथा च महाभारते कृतयुगपुरुषानधिकृत्योच्यते

“यावद्यावद्भूच्छ्रद्धा देहं धारयितुं वृणाम् । तावत्तावद्जीविंस्ते नासीद्यमकृतं भयम्” इति । १५
स एव (१८४-८६)—

“वेदोक्तमायुर्मत्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् । भवत्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम्” (८४) ॥

आयुश्चतुर्वर्षशतादि । आशिषः फलानि । प्रभावः शापानुयहादिशक्तिः । अनुयुगं युगानुरूप्येण पूर्णानि । हीनानि हीनतराणि हीनतमानीत्यर्थः ।

“अन्ये कृतयुगे धर्मस्त्रेतायां द्वापरे परे । अन्ये कलियुगे नृणां युगन्हासानुरूपतः” (८५) ॥ १०

“तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे” (८६) ॥

परं प्रधानमित्यर्थः । युगस्वभावकृतेतरधर्मनादर एवकाराभ्यां सूचितः । पराशरः (१२३)—

“कृते तु मानवा धर्मस्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः । द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशराः स्मृताः” ॥

“अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते । द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ” ॥

युगस्वभावैवमेव दीयत इत्यर्थः । स एवाह (१२९, २५)— २५

“अभिगम्योक्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् । अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

“त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् । द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगै” ॥
पतितो यस्मिन्देशे निवसेत्तें देशं वर्जयेत् । कुलत्यागो नाम पतितस्य कुले विवाहभोजनाद्य-प्रवृत्तिः । कर्मत्यागः संभाषणादिवर्जनम् ।

“कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च । द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा” (२६) ॥ ३०

“कृते तत्क्षणैतः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः । द्वापरे त्वेकमासेन कलौ संवत्सरेण तु” (२७) ॥

“कृते त्वस्थिगताः प्राणस्त्रेतायां मांसमाश्रिताः । द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः” (३२) ॥

इति युगधर्मनिरूपणम्,

कलिसामर्थ्यं प्रपञ्चयति स एव (अ. १ श्लो. ३०-३१)

“जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च । जिताश्चौरस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषाः कलौ” ॥ ३५

१ क-आयुः । २ क्ष-कर्तृं । ३ क्ष-क्षणिकः । ४ क्ष-कृतो ।

- “ सीदंति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति । कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा ” ॥
 अधर्मस्य जयो नाम पादत्रयोपेतत्वम् । एकेन पादेन वर्तमानत्वं धर्मस्य पराजयः ॥
 तथा माधवीये पराशरे (पृ. ८२. पं १-५)
- “ कृते चतुष्पात्सकलो व्याजोपाधिविवर्जितः । वृषः प्रतिष्ठितो धर्मो मनुष्येष्वभवत्पुरा ॥
- ५ “ धर्मः पादविहीनस्तु त्रिभिरङ्गैः प्रतिष्ठितः । ब्रेतायां द्वापेरेऽर्थेन व्यामिश्रो धर्म इष्यते ॥
 “ त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति” । विष्णुपुराणे मैत्रेयं प्रति पराशरः (६।१)—
 “ सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे । नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्रोदरपरायणाः ॥
 “ यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कर्लेवृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥
 “ मुखं दग्धं परान्नेन हस्तौ दग्धो प्रतिष्ठहात् । मनो दग्धं परस्त्रीभिर्ब्रह्मशापः कुञ्तः कलौ ॥
- १० “ वर्णाश्रिमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ वृणां । नैं सामयजूक्गर्धमविनिष्पादनहेतुकी ॥
 “ विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्यगुरुसंस्थितिः । न दांपत्यक्रमो नैव वन्हिदेवार्चनक्रमः ॥
 “ सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्रोचते द्विज । देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्य चाश्रमः ॥
 “ धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्टानैरनुष्ठितः । वित्तेन भविता पूंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ॥
 “ परित्यजन्ति भर्त्तरं वित्तहीनं तथा स्त्रियः । भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥
- १५ “ अर्थश्वात्मोपभोगार्था भविष्यन्ति कलौ युगे । स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ॥
 “ अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजकाः । करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिंडोदकक्रियाः ॥
 “ दुर्भिक्षभयपीडाभिरतीवोपद्वुता जनाः । गोधूमान्नयवान्नाढ्यं देशं यास्यन्ति दुःखिताः ॥
 “ वेदमार्गे प्रलीने तु पाषंडाढ्ये ततो जने । अधर्मवृत्त्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥
 “ इवशूद्धवशुरभूयिष्ठा गुरवश्च वृणां कलौ । स्यालाद्याहार्यभार्यश्च सुहदो मुनिसत्तम् ॥
- २० “ कस्य माता पिता कस्य सदा कर्त्तमकः पुमान् । इति चोदाहरिष्यन्ति इवशुरादिगता नराः ॥
 “ निःस्वाध्यायवघट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते । तदा प्रविरलो धर्मः कचिद्विकेऽपि वत्स्यति ॥
 “ तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कंधमनुत्तमम् । करोति तं कृतयुगे क्रियते तपसा हि यः ” ॥ इति ।
 कूर्मपुराणे (पूर्वार्ध अ. ३०)
- “ राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान्वातयन्ति च । भ्रूणहत्यावीरहत्या प्रजायेते प्रजासु वै ॥ ७ ॥
- २५ “ विनिंदंति महादेवं ब्रह्माणं पुरुषोन्मम् । आम्नायं धर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे ॥ ९ ॥
 “ शुक्रदंता धृताक्षश्च मुंडाः कापायवाससः । शूद्रा धर्म चरिष्यन्ति युगांते समुपस्थिते ॥ १३ ॥
 “ ताड्यन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपसेविनः । सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्ठन्ति वै द्विजाः ॥ १७, २० ॥
 “ वाहनस्थान् समावृत्य शूद्रान् शूद्रोपसेविनः । सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ ॥ २१ ॥
 “ अध्यापयन्ति वै वेदान् शूद्राणां शूद्रोपसेवकाः पठन्ति वैदिकान् शब्दान् नास्तिका घोरमाश्रिताः ॥ २२ ॥
- ३० “ तपोयज्ञफलानां च विकेतारो द्विजोन्तमाः । यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २३ ॥
 “ नाशयन्ति ह्यधीतानि नाधिगच्छन्ति चानघ । गायन्ति लौकिकैर्गानेऽवतानि नराधिप ॥ २४ ॥
 “ वामाः पाशुपताचारास्तथा वै पांचरात्रिकाः भविष्यन्ति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ॥ २५ ॥
 “ कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै । दधीचिशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ॥ २७ ॥
 “ निंदंति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः । ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः ॥ २८ ॥
- ३५ “ सर्वे तेऽवतरिष्यन्ति ब्राह्मणाद्यासु योनिषु । विनिंदंति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ” ॥ ३० ॥

युगसामर्थ्यवर्णनस्य प्रयोजनमाह पाराशारः (१३३)

“युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः । तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः” ॥
युगरूपा युगनुरूपाः कालपरतंत्रा इति यावत् । अत्र माधवीये-नन्वेवं कलौ पापिनां अनिंद्यत्वा-
कृत्स्नं धर्मधर्मव्यवस्थापकं शास्त्रं विष्ववेत् । अतः कथमनिंदेति । तत्रोच्यते—नानामुनिभि-
स्तत्तद्युगसामर्थ्यस्य उचितप्रायश्चित्तस्य प्रपञ्चितत्वात्तदुभयं पर्यालोच्य निंदानिंद्योव्यवस्था ५
कल्पनीया । यः पुरुषो युगे सामर्थ्यमनुसृत्य विहितानुष्ठानं प्रतिषिद्धवर्जनं प्रमादतः कृत-
पापस्य प्रायश्चित्तं यः कर्तुं शक्तोऽपि न कुर्यात्तद्विषयाणि ‘भ्रूणहत्या पितुस्तस्य सा कन्या
वृषली स्मृता’ इत्यादीनि निंदावचनानि । अशक्तविषयं तेषां निंदा न कर्तव्येतिवचनम् । तस्मान्ब
कोऽपि धर्मशास्त्रस्य विष्वव इति । तदाह पराशारः (१३४)—

“युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितं । पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते” ॥ इति । १०
शेषं विशिष्टम् । तत्तद्युगसामर्थ्यं मन्वादिमुनिभिर्विशेषेण भाषितं पराशरेणाप्युक्तं प्रायश्चित्तं
च तैर्विधीयते । अतः शक्ताशक्तविषये निंदानिंदे इत्यर्थः । द्यासः—

“यत्कृते दशभिर्बैष्णवेतायां हायनेन तत् । द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥

“ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्तेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्रोति तदाप्रोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

“अनेकदोषयुक्तस्य कलेरेष महानुग्रहः । विशेषाद्वाहणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत्” ॥ १५
शिवसर्वस्वे

“यावन्न कीर्तयेद्रामं कलिकल्मषसंभवम् । तावत्तिष्ठति देहेऽस्मिन्भयं चात्र प्रवर्तते” ॥
च्यवनस्मृतौ—

“श्रुतिस्मृतिपुराणेषु रामनाम समीरितम् । तन्नामकीर्तनं भूयस्तापत्रयविनाशनम्” ॥ बृहस्पतिः

“कृते यदद्वधर्मः स्यावेतायां तु क्रतुत्रयात् । द्वापरे तु त्रिपक्षेण कलावन्हा च तद्भवेत् ॥ २०

“न च वृत्तं न शुद्धार्थो न शुद्धिर्मनसः कलौ । यतोऽतः सत्यमैवैकं नराणामुपकारकम्” ॥

अथ कलियुगनिषिद्धधर्माः । पराशारः—

“ऊढायाः पुनरुद्वाहो ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुम्” ॥
स्मृत्यर्थसारे—

“देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थौश्रमग्रहः । दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥ २५

“समुद्रयात्रास्वीकारः कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोपशुश्रु शुराग्रहः ॥

“आग्निहोत्रहवण्याश्च लेहोलीढापरिग्रहः । असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ॥

“वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथाँ । अस्थिसंचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥

“प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणांतिकम् । संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः ॥

“दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः । शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ ३०

“दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ । कलौ युगे त्विमान्धर्मान्वज्यानादुर्मनीषिणः” ॥ इति ।

धर्मशास्त्रसुधानिधौ

“गोत्रान्मातृसपिंडात्तु विवाहो गोवधस्तथा । विधवायां प्रजोत्पत्तिर्देवरस्य नियोजनम् ॥

“आततायिद्विजाग्याणां धर्मयुद्देन हिंसनम् । द्विजस्याब्धौ तु निर्याणं शोधितस्यापि संग्रहः ॥

“सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञाप्तिश्च गोसवे ॥ ३५

१ क्ष-मनुष्यत्वात् । २ कखग-प्रस्थपरि । ३ ख-लीलौ लोक्या । ४ कग-कलौ ।

- “सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः । संसर्गदोषः स्तेनार्थैर्महापातकनिष्कृतिः ॥
 “वरातिथिपितृभ्यश्व पशुपाकरणक्रिया । सवर्णानां तथा दुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि ॥
 “अयोनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियाः । शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् ॥
 “भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवा च दूरतः । शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुन्द्वृत्तिरीरिता ॥
 ५ “आपद्वृत्तिर्द्विजायच्चाणामश्वस्तनिकता तथा । ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनक्रिया ॥
 “बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहे विधिचोदितः । यतेस्तु सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥
 “नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियाऽपि च ॥
 “भृगवग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा ॥
 “गोवृत्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दंडकल्पनम् ॥
- १० “यत्र सायं गृहस्थत्वं सूरिभिस्तत्त्वतत्परैः । एतानि लोकगुप्त्यर्थे कलेरादौ महात्माभिः ॥
 “निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः । समयश्वापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्वेत्” ॥
 कलौ देवरेण पुत्रोत्पादनं प्रतिषेधत्यापस्तंबः (२२७२-६) “सगोत्रस्थानीयां न परेभ्यः समाचक्षीत । सगोत्रायैव तु समाचक्षीत । कुलायैव हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशांति । तदिंद्रिय-दौर्बल्यं विप्रतिपन्नमविशिष्टं हि परत्वं पाणेस्तब्दातिक्रमे खलु पुनरुभयोर्नरकः” इति । अनपत्यो
 १५ भर्ता तत्पत्रादिर्वा सगोत्रस्थानीयां भार्या स्नुषां वा न परेभ्योऽसगोत्रेभ्यः समाचक्षीत । अस्यामपत्यमुत्पाद्यमिति स्वगोत्राय देवराय सपिष्ठेभ्यो वा समाचक्षीत । कुलायैव हि स्त्री प्रदीयत इति । तदद्य विप्रतिपन्नं विप्रतिषिञ्च भर्तुर्वर्यतिक्रमे इंद्रियपारंतत्त्वादितिप्रसंगः स्यादिति देवरादिपाणेरपि गृहीतात्पाणेरन्यत्त्वाविशेषादित्यर्थः ॥

अथ कर्मपरिभाषा

- २० “मुख्यकाले यदावश्यं कर्म कर्तुं न शक्यते । गौणकालेऽपि कर्तव्यं गौणोऽप्यत्रेषु शो भवेत्” ॥ इति ।
 स्मृतिरत्नावल्याम्—
 “स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः । यद्वाऽगामिक्रियामुख्यकालस्याप्यंतरालवत् ॥
 “गौणकालत्वमिच्छुंति केचित्प्राक्तनकर्मणि । गौणेष्वेतेषु कालेषु कर्म चोदितमाचरन् ॥
 “प्रायश्चित्तप्रकरणे प्रोक्तां निर्वृत्तिमाचरेत् । प्रायश्चित्तमकृत्वा न गौणकाले समाचरेत् ॥
 ३५ “द्रिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वे । यामिन्याः प्रहरो यावत्तावत्कर्माणि कारयेत् ॥
 “मुख्यकाले हि मुख्यं चेत्साधनं नैव लभ्यते । तत्कालद्रव्ययोः कस्य मुख्यत्वं गौणताऽपि वा ॥
 “मुख्यं कालं समाश्रित्य गौणमप्यस्तु साधनम् । न मुख्यद्रव्यलोभेन गौणकालप्रतीक्षणम्” ॥ इति ।
 रुक्मान्दे—
 “आत्मा पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी पिता सस्वा । इज्यायां धर्मकार्ये च जायंते प्रतिरूपकाः ॥
 ३० “एमिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्” ॥ इति । संग्रहे—
 “रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः” ॥ इति ।
 कात्यायनः—
 “यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः” ॥ इति ।
 मनुः
 ३५ “कुत्सिते^१ वामहस्तः स्यादक्षिणः स्यादकुत्सिते । यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्वं कर्म प्रदक्षिणम् ॥
 “आसीन ऊर्ध्वः प्रव्हो वा नियमो यत्र नेष्टशः । तदासीनेन कर्तव्यं न प्रव्हेन न तिष्ठता” ॥

^१ कखग-तस्य । २ कखग-नो ।

कात्यायनः

“यत्र दिद्विन्यमो न स्याजपहोमादिकर्मसु । तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्री सौमी तदंतरा”॥इति ।

स्मृतिचंद्रिकायाम्—

“मनः प्रसादात्सत्योक्त्या तपसा स्नानकर्मणा । आचम्य चात्मनः शुद्धिं कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥

“संकल्पः कर्मणामादौ वैदिकानां विधीयते । इंद्रं कर्म करिष्यामीत्युच्चार्य त्वाचरेत्ततः”॥इति । ५

आश्वलायनः—

“प्रधानस्य क्रियायां तु सांगं तत्क्रियते पुनः । तदंगाकरणे कुर्यात्प्रायश्चित्तं न कर्म तत् ॥

“प्रवृत्तमन्यथा कुर्यादिमोहात्कथंचन । यत्स्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥

“समाप्तं यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् । तावदेव पृथक्कुर्याभिवृत्तिं सर्वकर्मणाम्”॥शातातपः—

“बहुलं वा स्वगृह्णोक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥ १०

“श्रौतेषु सर्वशास्त्रोक्तं सर्वस्यैव यथोचितम् । स्मार्तं साधारणं तेषु गाहोष्वपि च कर्मसु ॥

“सर्वशास्त्रोपसंहारादुक्तः श्रौतो यथाविधिः । सर्वस्मृत्युपसंहारात्समार्तोऽप्युक्तस्तथा विधिः”॥इति ।

स्मृत्यर्थसारे

“प्राचीदिशामनुकौ स्यादुदीचीशानदिक् तथा । तिष्ठत्वप्रवहतानुकृतावासीनत्वं च कर्मसु ॥

“प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते । स नामोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिस्मृती”॥ १५

“न सांपरायिकं तस्य दुर्मतिर्विद्यते फलमिति” पाठांतरम् ।

“सामयाचारिका धर्मा जातिभेदकुलोद्धवाः । ग्रामाचाराः परिग्राह्याये च विध्यविरोधिनः ॥

“युगधर्माः परिग्राह्याः सर्वत्रैव यथोचितम्”॥ इति । कात्यायनः—

“यन्नाम्नातं स्वशास्त्रायां पारक्यं न विरोधि च । विद्विस्तदनुष्टेयमग्निहोत्रादि कर्मवित् ॥

“आत्मतंत्रे तु यन्नोक्तं तत्कुर्यात्पारतंत्रिकम्”॥ इति ॥ पारक्यं परकीयम् । स्वसूत्रोक्तं कर्म २०

परित्यज्य पारक्यं कर्म कुर्वतो दोषमाह दक्षः—

“स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विजः । अज्ञानादथवा ज्ञानात्यक्तेन पतितो भवेत्”॥

स्वसूत्रालाभे वृद्धमनुः—

“स्वसूत्रेऽविद्यमाने तु परसूत्रेण वर्तते । बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभागभवेत् ॥

“विधिवृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना तु यः । फलं न किंचिद्विभागेन तु तस्य तत्”॥ इति । २५

स्मृत्यंतरे—

“अकाले यत्कृतं कर्म कालं प्राप्य पुनः क्रिया । कालातीतं तु यत्कुर्यादकृतं तद्विनिर्दिशेत्”॥ इति ।

आश्वलायनः

“श्रौतं वा यत्र पौराणं स्मार्तं वापि विनिर्णये । गीर्द्धा तत्र न चलेन्न्यायाद्वा स्वानुमानतः ॥

“यत्र गीर्द्धात तत्र कुर्याच्चैवानुमानतः ॥” ३०

“यत्र यद्यथा प्रोक्तं तत्र कुर्यात्तथा च तत् । नान्यथा स्वानुमानेन कुर्यात्प्राजोऽपि मानवः”॥ इति ।

भारद्वाजः—

“आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं जपादीनि प्रकुर्वतः । कुशे शश्यासनं वापि वीरासनमथापि वा ॥

“जानूर्वोरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे । ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

“एकं पादमथैकस्मिन्विन्यस्योरौ तु संस्थितः । इतरस्मिस्तथा चोरुं वीरासनमुदीरितम् ॥” ३५

“उर्वोरुपरि विप्रेन्द्रं कृत्वा पादतले उभे । अंगुष्ठौ चानुबन्धीयाद्वस्ताभ्यां द्युत्क्रमेण तु ॥

“पद्मासनं वदेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम्”॥

स्मृत्यर्थसारे—

“ उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो यदि लभ्यते । तत्र मुख्यमनाहत्य गौणेनैव समापयेत् ॥

“ मुख्यभावे यदा गौणमुपात्तं सद्विनश्यति । तत्र मुख्योपमं गौणं ग्राह्यं गौणोपमं न तु ॥

“ यस्मिन्कस्मिन्नुपात्ते तु मुख्ये प्रचरिते सति । अन्यत द्रव्यं विजानीयं सजातीयमथापि वा ॥

५ “ उपादाय प्रयुंजानो द्रव्यं कृत्स्नमवाप्नुयात् ” ॥ भरद्वाजः—

“ अज्ञाता यदि वा मंत्राः स्वस्वगृह्णेषु चोदिताः । उपर्वीतप्रमुख्यानां तेषां वै धारणे द्विजाः ॥

“ केवलं प्रणवो वापि व्याहतित्रितयं तु वा । स्यातां विप्रादिवर्णेषु द्वावेतौ सर्वशास्विनाम् ” ॥इति ।

शांडित्यः—

“ प्रदक्षणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे । न कण्ठावृतवस्त्रः स्याद्वर्णे गुरुदेवयोः ” ॥

१० वोधायनः (२०३५८-५९)—

“ कर्तव्यमुत्तरं वासः पंचस्तेषु कर्मसु । स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमयोस्तथा ॥

“ हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः । वहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ” ॥इति ।

अन्यैच्च—

“ स्नानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् । प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥

१५ “ आसनारूढपादस्तु जान्वोर्वा जंवयोस्तथा । कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते ” ॥

वस्त्रादिना कृतपादवंधः कृतावसक्थिकः ।

“ होमः प्रतिग्रहो दानं भोजनाचमने जपः । वहिर्जानु न कार्याणि सांगुष्ठानि सदा चरेत् ” ॥

“ तद्वदाचमनं स्मृतिमिति ” ॥ इति परिभाषा ॥

अथ सृष्टिप्रकारः । तत्र मनुः (१०७)—

२० “ योऽसावर्तीद्वियग्राह्यः सूक्ष्मोऽन्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्भौ ” ॥

अव्यक्तः अविदितस्वभावः । सनातनः अनादिनिधनः । योऽसौ केवलं योगशास्त्रप्रसिद्धः ।

स एष परमः पुमान्सर्वभूतमयः प्रपञ्चस्त्रूपः । स्वयं न कस्यचिन्नियोगेन नापि कर्मवशेन ।
उद्भौ व्यक्तिवभूत ।

“ सोऽभिध्याय शरीगत्स्वातिसमृक्षुर्विधाः प्रजाः । अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ” (११८) ॥

२५ अवासृजदुप्तवान् । अंशेनानुप्राविशदित्यर्थः ।

“ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ” (११०) ॥

नरस्य पुरुषस्य सूनवः भगवता सृष्टा इत्यर्थः । वै शब्दो हेतौ । ता आपः अस्य नरस्य पूर्वं
प्रथममयनमनुप्रवेशस्थानमासीद्यनेन नारायणः स्मृतः ।

“ तदेदमभवद्देहं सहस्रांशुसमप्रभव । तस्मिन्जनें स्वयं ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः ” (११९) ॥

३० तज्जलानुप्रविष्टं भगवदीर्यहेमं हेममयं अत एव ब्रह्मा हिरण्यगर्भस्यः तस्मिन्नंडे स्वयं भगवान्ब्रह्म-
स्तपधारी जज्ञे ।

“ यत्तकारणपद्यकं नित्यं सदसदात्मकम् । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ” (१११) ॥

कारणशब्देन नारायण उच्यते । सदसदात्मकं सत्कारणं प्रकृत्यादिकं असत्कार्यं प्रपञ्चं उभ-
यात्मा देहो यस्य तस्य तत्थोक्तम् । तद्विसृष्टस्तेन कारणास्वयेन भगवता सृष्टः । पुरुषशब्दोऽयं

३५ राजपुरुषशब्दवदधिकारिविचनः । भगवन्नियोगकर इत्यर्थः ।

“तस्मिन्बन्दे स भगवानुषित्वा परिवित्सरम् । स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदंडमकरोद्दीधा” (१।१२) ॥
भगवान्भगवन्मयो ब्रह्मा ।

“ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योमदिशश्वाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्” ॥
दिवं स्वर्गादिलोकपञ्चकम् । भूमिं सपातालां मध्ये व्योम अंतरिक्षलोकं अष्टौ दिशश्च शाश्वतं
यावत्प्रलयावस्थानं अपां स्थानं समुद्रं च निर्ममे । ५

सर्वभूतानि सिसुक्षतो हिरण्यगर्भस्योपादानं शरीरांश्च इति श्लोकत्रयेणाह मनुः (१।१४-१६)

“उद्वर्बहीत्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् । मनसश्वाप्यहंकारमभिमंतारमीश्वरम् ॥

“महांतमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च । विषयाणां गृहीतृणि शनैः पंचेन्द्रियाणि च ॥

“तेषामवयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसा । संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे” ॥

मनः महत्तत्त्वं सदसदात्मकं प्रकृतिविकृत्यात्मकं मनसो महत्त्वादनंतरमभिमंतारमस्मिताप्रत्यय- १०
रूपमीश्वरम् । सर्वकर्मप्रवर्तकमहंकारं च उद्वर्बहं उद्वृत्वान् । महांतमात्मानं स्थूलमतःकरणं मन
इति यावत् । स्वरूपेण विषयरूपेणेऽद्रियरूपेण च त्रिगुणिभूयावस्थानात्रिगुणानीति तन्मात्राणि
शब्दान्युच्यन्ते । तथा विषयाणां गृहीतृणि पंच ज्ञानेऽद्रियाणि चकारात्कर्मेऽद्रियाणि शनैः क्रमाङ्क-
द्वर्बहं । तेषां महदहंकारं मनस्तन्मात्रज्ञानकर्मेऽद्रियाणि षण्णाममितौजसामुपयुज्यमानेष्वप्यवयवेषु
दीपवदक्षयवीर्याणामवयवानामंशेनात्ममात्रासु स्वजीवांशेषु संनिवेश्य आकलय्य सर्वभूतानि १५
दवमनुष्यादीनि निर्ममे । एतदुक्तं भवति । आत्मीयानां महदहंकारमनस्तन्मात्रज्ञानकर्मेऽद्रियाणा-
मंशाः सर्वभूतोपादानमिति ।

“सर्वेषां तु सनात्मानि कर्माणि च पृथक् गृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे (२।१) ॥

“कर्माणां तु विवेकाय धर्माधिमौ व्यवेचयत् । दंदैरयोजयच्चेभाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः (२।६) ॥

“लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं सुखबाहूरूपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्यत् (३।१) ॥ २०

“सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः । मुखबाहूरूपज्ञानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्” ॥ इति (८।७) ॥

सुब्राह्मणिषदि श्रूयते—“तस्मात्मः संजायते तमसो भूतादि भूतादेराकाशमाकाशाद्वायु-

र्वायोरग्निग्रेरापः । अद्रभ्यः पृथिवी । तदेषु समभवत्तसंवत्सरमात्रमुषित्वा द्विवाकरोद्धस्ताद्भू-

मिमुपरिष्टाद्वाकाशं मध्ये पुरुषः” इति । तैत्तिरीयश्चुतिरिपि “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाहू

राजन्यः कृतः । ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पम्बाऽशूद्रो अजायत्” इति च । तथा महोपनिषदि २५

“एको ह वै नारायण आसीत् । सोऽन्यं कामं मनसाऽध्यायत् । तस्य ध्यानस्थस्य ललाटात्स्वेदो-

त्रप्रसार ता आपोऽभवन् । तासु वीर्यमवासृजतद्विरण्मयमण्डमभवत् । तस्मिन् ब्रह्मा चतुर्मुखोऽ-

जायत्” इति । नारायणोपनिषदि च “अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत् । प्रजाः सृजे-

येति । नारायणाद्विष्णाऽजायत्” इति । हारीतः (१।९-१३) १५

“नारायणः परो देवो जगत्सृष्ट्वा जलोपरि । सुष्वाप भोगिपर्यकशयने तु श्रिया सह ॥ १०

“तस्य सुतस्य नाभौ तु महत्पश्चमभूत्किल । पद्ममध्येऽभवद्विष्णा वेदवेदांगभूषणः ॥

“स चोक्तस्तेन देवेन जगत्सृष्टौ पुनः पुनः । सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥

“यज्ञसिध्वर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽमुजत् । अमुजत्क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशातः ॥

“शूद्राश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः । यथा प्रोवाच भनवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः” ॥ इति ।

प्रोवाच धर्मानिति शेषः । सुष्टौ परस्परविरुद्धानां श्रुतीनां स्मृतीनां च कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । इति सुष्टिः ॥

अथ वर्णधर्माः । तत्र देवलः

“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्ञातः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् एवं क्षत्रियविद्वशूद्रा ज्ञेयाः स्वेभ्यः स्वयोनिजाः” ॥
५ इति । शातातपः

“तपो दमो दया दानं सत्यं धर्मं श्रुतं धृणा । विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्” ॥
याज्ञवल्क्यः (आचरे ९०)—

“सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायंते हि सजातयः । अैनिद्येषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः” ॥
हारीतः (११५, १७-१८)—“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव उत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।
१० “षट्कर्माणि वै निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः । तैरेव सततं यस्तु वर्तयन्सुखमेधते ॥
“अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति चोच्यते” ॥
मनुः (१८८)—

“अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माण्यग्रजन्मनः” ॥
याज्ञवल्क्यः (आचरे ११८)—

१५ “इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च । प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा” ॥ इति ।
तत्र ब्राह्मणस्येज्यादीनि त्रीणि धर्मार्थानि प्रतिग्रहादीनि त्रीणि वृत्यर्थानि
“बणां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः” ॥ इति
मनुस्मरणात् (१०।७३) । अत इज्यादीन्यावश्यकर्तव्यानि न प्रतिग्रहादीनि ।
तदाह गौतमः (१०।१-३)—“द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजन-
१० प्रतिग्रहाः । पूर्वेषु नियमः” इति । आपस्तंबः (२।१३।?)—“सवर्णापूर्वाशास्त्रविहितायां यथर्तु
गच्छतः पुत्रास्तेषां कर्मभिः संवंधः” इति । सवर्णा च अपूर्वा च शास्त्रविहिता चेति कर्म-
धारयः । सवर्णा सजातीया । अपूर्वा अनन्यपूर्वा । शास्त्रविहिता शास्त्रोक्तब्राह्मादिविवाह-
संस्कृता । एवं भूतायां भार्यायां यथर्तुगमनकल्पेन गच्छतो ये पुत्रा जायंते तेषां कर्मभिः
संवंधो भवतीत्यर्थः । कर्माण्यपि स एवाह (२।१०।४) “स्वकर्म ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं
२५ यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायाद्यं सिलोच्छ” इति । दायाद्यं दायस्वीकारः । सिलोच्छः क्षेत्रादिषु
पतितानि मंजरीभूतानि ततश्चयुतानि च धान्यानि सिलशब्दार्थः । तेषामुच्छनमंगुलिभिर्नसैर्वा
आदानम् । एतान्यष्टौ ब्राह्मणस्य स्वकर्मत्यर्थः । इति वर्णधर्माः ॥

अथ यजनम् । यज्ञे श्रुतिः^१ । “यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गता
यज्ञेनासुरानपानुदंत यज्ञेन द्विषंतो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति” ।
३० यज्ञ इति यज्ञो नामाधानाग्निहोत्रादि । स हि देवानां संबंधी । देवत्वस्य प्रापकत्वात् । तदेवाह ।
यज्ञेन हि देवा इति । अत्र श्रुत्यंतरम् । “यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्” इति । यज्ञेनासुरान-
पानुदंत । यज्ञेन द्विषंतः शत्रवः मित्राणि भवन्ति । कल्त्विक्षप्रसर्पकादिदक्षिणादानेन दानं यज्ञानां
कर्त्तव्यं गृहस्थानीयम् । दाने हि यज्ञास्तिष्ठन्ति । तदभावे कुतो यज्ञः । ‘मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः’ ।
“यो अदक्षिणेन यज्ञेन यजेत् स यज्ञः प्रक्षामोऽनायुः” इत्यादिवाक्येभ्यो दानस्य यज्ञे अवश्य-

^१ अनित्येषु । २ नारायणोपनिषादेः । तै० सं० आरण्यके ‘सहवै’ उपनिषदिः ।

कर्तव्यत्वात् यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं सर्वस्य जगतो यज्ञाधीनत्वात् यस्माद्यज्ञं परमं वदंति भगवंत् इत्यर्थः । अत्र द्यासः (भगवद्गीता अ. ३ श्लो. १०-१२)—

“ सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

“ देवान्भावयतनेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

“ इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः” ॥ इति ॥ ५
यज्ञस्य त्रैविष्यमाह भगवान् (भ. गी. अ. १७ श्लो. ११-१३)—

“ अफलाकांशिभिर्यज्ञो विधिष्ट्वा य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

“ अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥

“ विधिहीनमसृष्टान्मं भ्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ” ॥ इति ।

हारीतः—

१०

“ यज्ञेन लोका विमला विभांति यज्ञेन देवा अमृतत्वमाप्नुवन् ।

“ यज्ञेन पापैर्बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोति लोकान्परमस्य विष्णोः ” ॥

“ नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विंदते शुभं । अनिष्टयज्ञोऽपूर्तात्मा भ्रश्यति चित्तब्लपर्णवत् ” ॥

माधवीये—

“ नास्तिकयादथ वाऽल्लस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति । यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान्बहून् ॥ १५

“ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः । आधायाग्नीन्विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ” ॥ इति ।

काष्णाजिनिः—

“ पुत्रमुत्पाद्य कर्मतत्कुर्याद्वैतानिकं द्विजाः । यथाकथंचिदादध्यात्प्राप्तं चेत्साधुतो धनम् ” ॥ इति ।

प्रजापतिः—

“ सर्वसंस्थाधिकारी स्यादाहिताग्निर्धने सति । आदध्यान्निर्धनोऽप्यग्नीन्नित्यं पापभयाद्विजः ” ॥ २०

वसिष्ठः—“ अवश्यं ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत दर्शपूर्णमासाग्रयणैश्चातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजेत ” ॥ इति ।

हारीतोऽपि—

“ पाकयज्ञान्यजेन्नित्यं हविर्यज्ञान्तसुनित्यशः । सौम्यांस्तु विधिपूर्वेण य इच्छेद्वर्ममव्ययम् ” ॥ इति ।

ते च गौतमेन दर्शिताः (११८-२४)—“ अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्व-

युजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः । अग्न्यावेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चार्तुमास्यान्याग्रयणेष्टि- २५

निरुद्धपशुबंवः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उवक्ष्यः षोडशी

वाजपेयोऽतिरात्रोऽसोर्यमि इति सप्त सोमसंस्थाः ” ॥ इति । अष्टका हेमंतशिशिरयोरष्टमीषु क्रिय-

माणं श्राद्धम् । पर्वणि भवः पार्वणः स्थालीपाकः । श्राद्धं मासिश्राद्धम् । श्रावणी सर्पबलिः

श्रावण्या पौर्णमास्यां तत्क्रियते । आग्रहायणी पौर्णमासी । तस्यां क्रियमाणः सर्पबलेरुत्सर्गः ।

हेमंतप्रत्यवरोहणाख्यं च कर्म आग्रहायणीशब्देनोच्यते । चैत्री चैत्रपौर्णमास्यां क्रियमाण ३०

ईशानबलिः । आश्वयुजी आग्रयणम् । अग्न्याधेयादयः श्रुतिप्रसिद्धाः । बौधायनः (१२१६)—

“ कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति श्रुतिः ” ॥ इति । स एव (१५१८२)—

“ अयज्ञेनाविवाहेन वेदस्योत्सादनेन च । कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिकमेण च ” ॥ इति ।

गर्गः—“ प्रवानं वैदिकं कर्म गुणभूतं तथेतरत । गुणनिष्ठाप्रवानं तु हित्वा गछत्यधोगतिम् ॥

“ यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तेतिहासिकम् । मोहात्समाचरेद्विप्रो न स पुण्येन युज्यते ॥ ३५

“ श्रौतं कर्म न चेच्छक्तः कर्तुं स्मार्तं समाचरेत् । अत्राप्यशक्तः करणे कुर्यादाचारमंततः ” ॥ इति ।

अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासविषये श्रुतिः। (ते.सं.१३।९) — “प्रजापतिर्यज्ञानसृजताग्निष्टोमं च पौर्णमासीं चोक्थयं चामावास्यां चातिग्रन्थं च । तानुद्दिमिसीत । यावदग्निहोत्रमासीन्तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासीं तावानुकृथ्यो यावत्यमावास्यातावानतिरात्रः” इति ॥ प्रजापतिरग्निहोत्रादीन्षड्भागान-सृजत्तत्राग्निहोत्रपौर्णमास्यमावास्यायगः अल्पैद्रव्यमंत्रक्रियाविशेषैः साध्या अल्पफलाः, अग्नि-५. एषोक्थयातिरात्रयागा वहुभिर्द्रव्यमंत्रविशेषैः साध्या अधिकफलाः-इति विमर्शे सत्यनुग्रहेण तुलया त्रीणि द्वंद्वानि उन्नितवान् । तदनुग्रहादग्निहोत्रादीन्यग्निष्टोमाद्वितुल्यानि संपन्नानि । एवं वेदने फलमाह श्रुतिः (१३।३) — “य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति यावदग्निष्टोमेनोपाग्रोति तावदुपाग्रोति । य एवं विद्वान्वौर्णमासीं यजते यावदुक्थयेनोपाग्रोति तावदुपाग्रोति । य एवं विद्वानमावास्यां यजते यावदतिरात्रेणोपाग्रोति तावदुपाग्रोति” इति । ज्ञानयुक्तस्य कर्मणः फलाधिक्यं छंदोगा १०. आमनंति—“यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति” इति

पुनरपि दर्शपूर्णमासौ प्रशंसति (१३।९) “परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्न आसीन्तेन स परमां काष्ठामगच्छत्तेन प्रजापतिं निरवासाययत्तेन प्रजापतिः परमां काष्ठामगच्छत्तेनेदं निरवासाय-यत्तेनेदः परमां काष्ठामगच्छत्तेनाग्निष्टोमौ निरवासाययत्तेनाग्निष्टोमौ परमां काष्ठामगच्छताम् । य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते परमेव काष्ठां गच्छति” इति । परमे पदे सत्यलोके तिष्ठतीति पर-१५. मेष्ठी चतुर्मुखः; तस्य चाग्रे पूर्वस्मिन्कल्पे यजमानत्वेनावस्थितस्यैष दर्शपूर्णमासयज्ञः प्रवृत्तः; तेन चेश्वरार्पणबुध्वा उनुष्टितेन यजमानः परां काष्ठामिदं परमेष्ठित्वपदं प्राप्तवान् । प्रजापतिर्दक्षादिः । तं पूर्वस्मिन्जन्मनि तेनोत्तमफलहेतुदर्शपूर्णमासोपदेशेन निरवासाययत् अनुष्टानाय प्रेरितवान् स च तस्मिन्जन्मनि यजमानस्तेनानुष्टानेन परमां काष्ठां दक्षत्वादि पदं प्राप्तवान् एवमितरत्रापि योज्यम् । तथाऽग्निहोत्रं प्रशंसति—“अग्निहोत्रं सायंप्रातर्गुहाणां निष्कृतिः स्वष्ट॑ सुहुतं २०. यज्ञक्रतूनां प्रायणः सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्निहोत्रं परमं वदंति” इति । अग्निहोत्र-मिति कर्मनाम । तत्सायंप्रातश्च निर्वर्तिं गुहाणां गृहस्थाश्रमिणामार्जितपापानां निष्कृतिः प्रायश्चिन्तम् । स्वष्ट॑ शोभनयागहेतुः । सुहुतं शोभनहोमहेतुः । यज्ञक्रतूनां प्रायणम् । यज्ञा दर्श-पूर्णमासादयः । क्रतवः अग्निष्टोमादयः । एतेषां यज्ञक्रतूनां प्रायणं कारणभूतम् । सुवर्गस्य लोकस्य ब्रह्मलोकादेः । ज्योतिः प्रकाशकम् । ब्रह्मलोकादिप्रतिष्ठेतुरिति यावत् । तथाऽन्यत्र श्रूयते-२५. “तस्मादाहुरग्निहोत्रं वै देवा गृहाणां निष्कृतिमपश्यन्” इति । “अग्निहोत्रप्रायणा यज्ञाः” इति च । हारीतः—

“ नाग्निहोत्रात्परो धर्मो नाग्निहोत्रात्परं तपः । नाग्निहोत्रात्परं श्रेयो नाग्निहोत्रात्परं यशः ॥

“ नाग्निहोत्रात्परग मिद्दिर्नाग्निहोत्रात्परा गतिः । नाग्निहोत्रात्परं स्थानं नाग्निहोत्रात्परं वतम् ॥

“ आँद्रा व्याहृतयस्तित्रः स्वधा स्वाहा नमो वषट् । यस्यैतेवेश्मनि सदा ब्रह्मलोकस्थ एव सः” ॥ इति ।

३०. सत्यव्रतः—

“ सिलोऽित्तिनां च यो धर्मस्त्वहन्यहनि यत्कलम् । तदर्शपूर्णमासं च ये यजंति द्विजातयः ॥

“ न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्काचन ” ॥ वृद्धयनुः

“नित्याग्निहोत्रं दर्शश्च पूर्णमासः पितृक्रिया । आतिथ्यं वैश्वदेवं च ब्रह्मलोकस्य शाश्वतः” ॥ इति ।

षृद्धमनुः—

३५. “ यस्य वैवार्षिकं धान्यं पर्याति भूत्यवृत्तये । अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥

“पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धानो जितेद्वियः । न त्वल्पदक्षिणे यज्ञैर्यजेताथ कथंचन ॥
“इंद्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजां पशून् । हन्त्यल्पदक्षिणे यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥
“ प्राजापत्यमदत्वाऽश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् । अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति”॥इति ।

ठ्यासः—

“अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनस्त्वथत्विजः । आत्मानं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः”॥ ५
याज्ञवल्क्यः (आ. १२४)—“ प्राक्सौमिकीं कियां कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् ” इति ।
एतानि मन्वादिवचनानि काम्ययागविषयाणि । यतो विहितदक्षिणापर्याप्तिद्रव्याभावेऽपि नित्यं
न लोपयेदित्याह षोधायनः—

“ यस्य नित्यानि लुप्तानि तथैवागंतुकानि च । विपथः सोऽपि न स्वर्गं गच्छेत्तु पतितो हि सः ॥
“तस्मात्कंवैः फलैर्मूर्लैर्मधुनाऽथ रसेन वा । नित्यं नित्यानि कुर्वीत न च नित्यानि लोपयेत्”॥इति । १०
स्मृत्यर्थसारे

“ विवाहात्परमाधाय जुवहन्देवाग्निहोत्रकम् । दर्शपूर्णमासाग्रयणसोमयागान्कमाच्चरेत् ॥
“ सर्वथा प्रथमः सोमयागः कार्यो द्विजातिभिः । यथासंभविनांगेन शक्त्या इत्वा तु दक्षिणाम् ॥
“ ब्रात्यदुब्राह्मणत्वादिमहाऽषोपशांतये ” ॥ इति । संग्रहे—
“ अग्निहोत्रपरिप्रैषः प्रसक्तः क्रयविक्रये । वर्णसंकरकर्ता च ब्राह्मणो वृष्णः समः ” ॥ १५

प्रजापतिः—

“ अग्निहोत्रफला वेदा सषडंगपदक्रमाः । अग्निहोत्रसमो धर्मो न भूतो न भविष्यति ॥
“ दर्शं च पूर्णमासं च लुप्त्वाऽथोभयमेव वा । एकस्मिन्कुच्छ्रपादेन द्वयोरधेन शोभनम्” ॥ इति ।
मनुः (४।१०)—

“ वर्त्तयस्तु शिलोऽभ्यामग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पार्वायणांतीयाः केवला निवेपेत्सदा ” ॥ २०
पर्वं चायनं च पर्वायने । तयोरंतः पर्वायणांतः । तत्र भवाः पार्वायणांतीयाः । दर्शपूर्णमासाग्रयण-
लक्षणाः केवलाः फलाभिसंधिरहिताः नित्या इष्टीर्निर्वपेत्सिलोऽच्छवृत्तिरप्येतावच्छ्रौतं कर्म कुर्यान्न
ततोऽधिकमित्यर्थः । असंकुचितवृत्तेवृत्त्यन्तराण्याह स एव (४।२५-२६)—

“ अग्निहोत्रं च जुहुयादायन्ते द्युनिशोः सदा । दर्शेन चार्धमासांते पूर्णमासेन चैव ह ॥
“सस्यांते नवस्येष्टचा तथत्वंते द्विजोऽध्वरैः । पशुनाप्ययनांते तु समांते सौमिकैर्मिखैः” ॥ इति । २५
अनयोरयमर्थः । द्युनिशयोरहोरात्रयोरायन्ते । अर्धमासांते पक्षयोरंते पर्वणोरिति यावत् । सस्यांते
सस्यपाककाले । नवस्येष्टचा अध्वरैश्वातुर्मास्यैः । पशुना निरूढपशुबंधेन । समांते संव-
त्सरांते । सौमिकैः सोमवद्विरिति । आपस्तंबः (१।१३-२२; १४।१-२)—“निवेशो हि वृत्ते नैयमि-
कानि श्रूयन्ते अग्निहोत्रमतिथयोयच्चान्यदेवं युक्तम् ” इति । निवेशो वृत्ते दारकर्मणिं निवृत्ते नैयमि-
कानि नियमेन कर्तव्यानि नित्यान्यग्निहोत्राणि श्रूयन्तं इत्यर्थः । आर्थर्वणे श्रूयते—“यस्याग्नि- ३०
होत्रमदर्शपूर्णमासमनाग्रयणमतिथिवर्जितमहृतमैश्वदेवमविधिना हृतं आ सप्तमांस्तस्य लोका-
न्हनास्ति ” इति । अस्यार्थः-यस्याग्निहोत्रिणः अग्निहोत्रमदर्शम् आग्नेयोऽष्टाकपाठ ऐंद्रं दधि
ऐंद्रं पय इति यागत्रयवर्जितम् अपौर्णमासमाग्नेयोपांश्वग्रीषोमीययागत्रयवर्जितम् अनाग्रयण-
माग्रयणोष्ट्रहितम् अतिथिवर्जितम् आतिथ्याख्यकर्मणा सत्क्रियमाणः सोमोऽतिथिः तद्वर्जितं

१ कण-शोधनम् । २ कण-कवला ।

सोमयागरहितमित्यर्थः । अहुतं कस्मिंश्चित्काले आलस्यादिना होमवर्जितम् । अवैश्वदेवं वैश्व-
देवहोमरहितम् । अविधिना हुतं संवदेवतादिविषयसिन हुतम् । आसनमांडोकान् हिनस्तीति त्रयः
पितृपितामहप्रितामहाः त्रयः पुत्रपौत्रप्रपौत्राः आत्मा च सप्तमः तान्पुरुषान्भूरादिलोकांश्च
हिनस्तीति । याज्ञवलक्ष्यः (आ. १२५)—

- ५ “ प्रतिसंवर्त्तनं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा । कर्तव्याग्रयणेष्ट्वा चातुर्मास्यानि चैव हि ॥
“ एवानसंसर्वे कुर्यादिति॑ वैश्वानरीं दिजः ” ॥ इति । मनुरपि (४२८; ११२७, ४१)—
“ नदेनानचित्ता इस्य पशुहव्येन चाग्रयः । प्राणनेवानुभिच्छ्रुतिं नवान्नामिषजग्धिनः ॥
“ इष्टिं वैश्वानरीं वापि निर्विपेक्षदपर्यये । कूपानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥
“ अग्निहोत्र्यविद्यामीन् ब्राह्मणः काष्ठकारतः । चांद्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ” ॥
- १० श्रुतिरपि “ वीरहा वा एव देवानां योग्यिऽपुदासयते ” इति । स्मृतिभास्करे—
“ निर्वने धनसाध्येषु नित्येष्वपि कृतेषु च । चौर्यादन्यैः कुमारैर्वा इज्यार्थं धनमाहरेत् ॥
“ चूर्यप्रेषे कुरुक्षेषे मर्यादुष्णाजिनादिक्षु । चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावश्यकैर्मस्वैः ” ॥ इति ।
एतत् वचनं यत्किंचिद्दुनसंपादनेनाप्यावश्यक्षानि कर्तव्यानीत्येवंपरम् । तथा च यमः—
“ धर्मविद्वाङ्मणः चूद्रावज्ञार्थं नाहरेत् धनम् । जायते प्रेत्य चंडालः शूद्रार्थेनैष्टदेवतः ॥
- १५ “ उपादाय धनं शूद्राद्योऽग्निहोत्रमुपसेविनाम् । शूद्राग्निहोत्री स भवेद्वृष्टवादिषु गर्हितः ” ॥ इति ।
व्यासः—“ कुटुंबार्थं तु सच्चूद्रात्प्रतिगृह्यमयाचित्तम् । क्रत्वर्थमात्मने चैव न हि याचेत् कर्हिचित् ” ॥
मनुरपि (११२५, ४३, ४२)—
“ न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विजो भिक्षेत् धर्मवित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चंडालः प्रेत्य जायते ॥
“ तेषां सततमज्ञानां वृथलाग्न्युपसेविनाम् । पदा मस्तकमाक्रम्य इँता दुर्गाणि संतरेत् ॥
- २० “ ये शूद्रादिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते । क्रत्विजस्ते च शूद्रा हि ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ” ॥ इति ।
छागलेयः “ यः शूद्रादिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपाचरेत् । इतात तत्कलमाघोति कर्ता च नरकं वजेत् ” ॥
याज्ञवलक्ष्यः (आ. १२७)—“ चंडालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ” । एतानि शूद्रप्रतिग्रह-
नित्यध्ययनाणि वचनानि नित्यव्यतिक्रमविषयाणि; “ चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावश्यकैर्मस्वैः ” इति
नित्यम्यावश्यकत्वस्मरणादिति स्मृतिरत्त्वावस्थादावभिहितम् । मनुः—
- २५ “ यज्ञार्थं निक्षितं द्रव्यं यः सर्वे नोपयोजयेत् । श्वपाकयोनौ जायेत् स तद्वक्त्वा तु दुर्मतिः ” ॥ इति ।
यमः—
“ यज्ञार्थसर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति । स यानि भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ” ॥
याज्ञवलक्ष्यः (आ. १२७) “ यज्ञार्थमददद द्रव्यं भासः काकोऽपि वा भवेत् ” इति ॥
स्मृतिभास्करे—
- ३० “ वाजपेये कंतों सर्वदक्षिणानामसंभवे । गावः सप्तदशेषां संभेदपीति सामगाः ॥
“ न लभ्येते यदा गावो दक्षिणात्वेन चोदिताः । प्रत्येकं तत्र निष्कं स्यात्तदर्थं पादमेव वा ” ॥
नित्यविषयमेतत् । द्वंखः—
“ सहस्रं भोजयेत्सोमे ब्राह्मणानां शतं पशौ । चातुर्मास्येषु सर्वेषु शतं पर्वणि पर्वणि ” ॥
स्मृत्यंतरे—

१ कग-उपवासेत् ख-उपाचरेत् । २ क्ष-तदा । ३ ट-यमः । ४ कखगक्ष-कलौ ।

“द्विजभोजनमत्रैव सोमयागे सहस्रकम् । पशौ शतं दर्शेष्टौ स्युः भोज्या क्रत्विज एव वा”॥
स्मृतिभास्करे—

“ तावद्वन्न विना कुर्यान्नित्येष्टि सौमिकीं क्रियाम । यथालब्धगुणोपेतां यथासंभवदक्षिणाम् ॥

“ संनिधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः । असन्निधौ तु पत्नी स्याद्वर्ध्युस्तदनुज्ञया ॥

“ स्यादर्शपूर्णमासेष्टौ चतुर्णामृतिवजां क्रियां । चत्वारश्वेष्ट लभ्यन्ते त्रयः कुर्युत्त्रयोऽपि वा ॥ ५

“ न संभवति कुर्यातां द्वावेवेष्टि कथंचन ॥

“यदि द्वावपि न स्यातां एकेनापि समापयेत् । यजमानः प्रयुंजीत तत्रानाज्ञातनिष्कृतिः”॥इति ।

अखंडादर्श—

“दायप्राप्तैः स्वकृष्ण्या वा लब्धैः शिष्टप्रतिग्रहात् । यजेत श्रद्धया विष्णुं श्रेयोऽर्थी नाम्यथा यजेत्”॥

व्याख्या—

“ संशुद्धैर्यजमानैव क्रत्विग्मिश्च तथाविधैः । शुद्धैर्द्रव्योपकरणैर्यष्टव्यमिति निश्चयः ॥

“ तथाकृतेषु यज्ञेषु देवानां तोषणं भवेत् । तुष्टेषु देवसंवेषु यज्ञा यज्ञफलं लभेत् ॥

“ देवाः संतोषिता यज्ञैर्लोकान्संवर्धयन्त्युत । उभयोर्लोकयोश्चैव भूतिर्यज्ञैः प्रदृश्यते ”॥

आधानकर्तृन्प्रति चतुर्विंशतिभते विशेषो दर्शितः—

“ जीवे पितरि नादध्यादग्निहोत्रं कदाचन । तथैव भ्रातरि ज्येष्ठे न यजेन्न विश्वाहयेत् ”॥ यत्तु १५

“ पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाऽथ कस्यचित् । तपोग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ”॥ इति

तत्स्त्वपितृवैधुर्यादिविषयम् । तत्रैवोक्तम्—

‘ज्येष्ठभ्रात्रा त्वनुज्ञातः कुर्यादग्निपरिग्रहम् । अनुज्ञातोऽपि वा पित्रा नादध्यान्मनुरब्रवीत्”॥ इति ।

शातातपः—

“ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विजेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २०

“ अज्ञे देशांतरस्थे च पतिते प्रवजितेऽपि वा । योगशास्त्रनियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥

“ कुब्जवामनषंदेषु गद्देषु जडेषु च । जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥

“ एकमातृप्रसूतानां भ्रातृणां परिवेदने । दोषः स्यात्सर्वर्णेषु नेतरेष्वब्रवीन्मनुः ॥

“ परिवेत्तुर्न चाग्निस्तु न वेदा न तपांसि च ” इति ॥ सुमंदुः—

“ व्यसनासक्तचित्तो वा नास्तिको वाऽथ वाऽग्रजः । कनीयान् धर्मकामश्चदाधानमथ कारयेत् ॥ २५

“ पितुर्यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्राविकारोऽस्ति शंखस्य वचनं तथा ”॥

‘वृद्धवासिष्ठः:

“ अग्रजस्तु यदानग्निरादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ”॥ इति ।

शातातपः—“ नाश्रयः परिविदंति न वेदा न तपांसि च ”॥ हारीतः—

“ सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दरैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया ”॥ इति ॥ ३०

पराशरोपि—

“ पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ”॥

परनारीसुतः दत्तक्रीतादिः । स एव—

“ ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं तथा ”॥

कारयेत्कुर्यादित्यर्थः । माधवीये—“ अनुज्ञातः कनिष्ठो ज्येष्ठातपूर्वमावानं कुर्यात्पित्रा ३५

तनुजातोऽपि पितृः पूर्वं न कुर्यात् । पित्रादेवैधुर्यादिना प्रतिबंधे कुर्यात् ” इति ॥
बृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु ज्येष्ठस्यापि कदाचित्परिवेच्छत्वमाह—

“ आवस्थयमनाहृत्य प्रेतायां यः प्रवर्तते । अनाहिताग्निर्भवति परिवेता तथोच्यते ” ॥ इति ।
अवस्थे औपासने ब्रह्मोद्दनपाकमकृत्वा निर्मथ्याग्निना कृत्वा यः प्रथमाधानं करोति स
परिवेनेत्यर्थः । “ वसंते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यः ” इति श्रुत्युक्ते
(तै. ब्रा. १।१२।७) काले पर्वण्युक्तक्षेत्रे वाऽग्निराधेयः । तदाह व्यासः—

“ वसंते ब्राह्मणस्य स्यादाधेयोऽग्निर्यथाविविधि । शत्रियस्याग्निराधेयो ग्रीष्मे तु श्रेष्ठ उच्यते ॥

“ शरद्राव्रेत्र वैश्यस्याप्याधानीयो हुताशनः ” इति । पुनराधाननिमित्तमाहापस्तंबः

“ अग्निनाधायैतस्मिन्संबत्सरे यो नर्व्यात्स पुनरादधीत ” इति । तथा च श्रुतिः (तै.
१० सं. १-५-१) “ भागवेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पशून्यजमान्योपदोद्दावोद्दास्य
पुनरादधीत भागवेयेनैवैनै सपर्वयत्यथोशांतिरेवास्यैषा ” इति । निमित्तांतरमाह स एव
“ यद्गण्योः समाहृद्दो नश्येदस्य वोभावनुगतावभिनिष्ठोचेदभ्युदियाद्वा पुनरोधयं तस्य
प्रायश्चिनिः ” इति । समाहृद्दाग्न्योररण्योन्निष्ठे पुनराधेयम् तथा प्रणयनात्पूर्वं केवलगार्ह-
पत्यानुगमने प्रणयनानंतरमजस्त्रे वा गार्हपत्याहवनीयोरुभयोरनुगमने प्रतिनिधौ चास्थापिते
१५ सूर्यो यद्गमिनिष्ठोचेदस्तं गच्छेदुदियाद्वा तदा पुनराधेयं कार्यमित्यर्थः । केचित्तु केवलगार्हपत्या-
नुगमने प्रतिनिध्यस्थापनेऽपि न पुनराधानं किं तु प्रायश्चिन्तमेवेति वदंति । आश्वलायनः—“ सर्वा-
श्चेदनुगतानांदित्योऽभ्युदियाद्वा ऽभ्यस्तमियाद्वा ऽन्याधेयं पुनराधेयं वा ” इति ॥ कात्यायनः—

“ विहायाग्निं सभार्यश्चेत्सीमामुलुंघ्य गच्छति । होमकालव्यपेतस्य पुनराधानमिष्यते ” ॥
शोनकः—

२० “ अग्नावनुगते यत्र होमकालद्वयं व्रजेत् । उभयोर्विंश्वासे वा लौकिकोऽग्निर्विधीयते ॥
“ प्राविते तु यदा पत्नी यदि ग्रामांतरं व्रजेत् । होमकाले यदि प्राप्ता न दोषेण प्रयुज्यते ॥
“ अथ तत्रैव वसति होमकालव्यतिक्रमः । लौकिकाग्निर्विधीयेत काठकश्रुतिदर्शनात् ॥
“ यज भनश्च पत्नी च उभौ प्रवसतां यदि । आ होमान्नं निर्वर्तेतां पुनराधानमर्हति ” ॥
संग्रहे “ केचित्तु पत्न्यस्तमयोदयोश्चेद्ग्रामादिसीमामतिलंघ्य गच्छेत् ।

२५ “ समुद्रगां सिंधुं गतोऽन्यद्वापि स्याद्गौकिको वन्हिरिति ब्रुवन्ति ” ॥ “ चतूरात्रमहूयमानोऽग्निलौकिको
भवनि ” इति श्रुतिः । आपस्तंबः—“ न ग्राममध्यादग्निनतिहरेयुर्यच्चतिहरेयुलौकिकाः
संपद्येग्न्यावत्यारं याममर्यादा नद्यः स्युस्तावच्चतिकामंतावन्वारभेयातां यदि नान्वारभेयातां
लौकिकाः संपद्येग्न् ” इति ।

वोद्यायनः—

३० “ अचोदितेन पाकेन कृतेनोद्धरणेन वा । लौकिकोऽग्निः स विजेयः पुनराधानमर्हति ॥
“ नैक्याऽपि विना कार्यमाधानं भार्या द्विजः । अकृतं तद्विजानीयात्सर्वान्वारभंत यत् ॥
“ ज्येष्ठायां दोषहीनायां कनीयस्या यदाग्निमान् । ब्रह्महत्या भवेत्स्य प्रतिपर्वणि सर्वदा ” ॥
महृः (५।१३.७, १३.८)—

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाऽग्निनंत्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥
३५ “ एवं वृत्तां सवर्णां स्त्री द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ” ॥ इति ।
याज्ञवल्क्योऽपि (आचारे ८९)—

“दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं वृक्षवतीं पतिः । आहरेद्विधिवदारानश्चैवाविलंबयन्” ॥ इति ।
कात्यायनः—

“स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता दाह्या तथाऽग्निना । विपरीता न दाह्या तु पुनर्दारक्रिया तथा ॥

“मृतायां चैव भार्यायां द्वितीयायां कथंचन । समुत्सृजेदग्निहोत्रं मोहितो यो द्विजोक्तमः ॥

“ब्रह्मोज्ञं तं विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा ॥

“द्वितीयां वै तु यो भार्या दहेद्वैतानिकाग्निभिः । तिष्ठत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत् ॥” इति ।

‘एतदाधाने सहाधिकृताया अग्निदाने वेदितव्यमिति’ विज्ञानेश्वरीये (पृ. २५ पं. १४)। कपर्दी—

“यदि त्वनेकभार्यस्य काचित्पत्नी मृता तदा । निर्मथ्येनैव सा दाह्या तदग्निं धारयेत्पतिः ॥” इति ।

“यदि त्वनेकभार्यः स्यात् विभज्याग्निं दहेन्मृताम्” इति तु स्मार्ताग्निविषयम् । तत्राग्निसंसर्गस्य

विभागस्य बोधायनादिभिरुक्त्वात्पुनर्दारक्रियासंभवे पूर्वमृतायाः पत्न्या अग्निदानम् । असंभवे १०

तु “निर्मथ्येन पत्नीं दाहयित्वा अग्निहोत्रं यावज्जीवं यावदाश्रमांतरं वा जुहुयात्” । यदाहुर्बहवृचाः

“अपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदित्याहुः । यदि नाहरेत् अनद्वा पुरुषः । कोऽनन्द्वा पुरुष इति ।

न देवान्न पितृन् न मनुष्यानिति । तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदिति ” । भारद्वाजः—

सूत्रम् “यद्यपत्नीकः स्यादुभाभ्यां तस्य संस्कारः औपासनाग्निहोत्राभ्यामिति”

‘निर्मन्थयेन पत्नीमिति’ । जैमिनिरपि सूत्रम् “आहिताग्निश्चेत्पूर्वं जाया मृयेत तां निर्मन्थयेन १५

दहेत् सान्तपनेन वा ” इति । आश्वलायनः सूत्रम् “आहार्येणानाहिताग्निं पत्नीश्च ” इति ।

कपर्दी च

“अपत्नीकोऽग्निभिः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकाः क्रियाः । अकाम्या अङ्गवैकल्या न हि काम्यासु तत्समम् ॥

“आहिताग्निः पूर्वमृतां स्वाग्निभिर्दाहयेत् स्त्रियम् । शक्ये विवाहेऽथाशक्ये नैर्मन्थयेनैव दाहयेत्” ॥ इति ।

किञ्च आचारोऽप्यत्र दृष्टः शिष्टतमानां पूर्वेषां कण्वविभाण्डकादीनां यथा च भगवतो २०

दाशरथेस्तस्मादभावेऽपि पत्न्या नाग्निहोत्रादिनिवृत्तिः । तथा विष्णुः—

“मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं न संत्यजेत् । उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ।

“अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । उपासते ह्यग्निहोत्रं यावज्जीवमतन्द्रिताः ॥

“रामस्तु कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यजैः सहितो ब्रातृभिर्वर्शी ॥” इति ।

मैत्रायणीश्रुतिरपि—

“यस्तु स्वैरग्निभिर्भार्यां संस्करोति कथंचन । असौ मृतः स्त्री भवति स्त्री चैषा स पुमान् भवेत्” ॥ इति ।

त्रिकाण्डी च—

“यस्य भार्याऽतिदूरस्था मृता वा व्याधिताऽपि वा । अनिच्छुः प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधौ क्रिया” ॥

इति । यस्त्वापस्तम्बवचनम् सूत्रं “दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यादग्निहोत्रं

दर्शपूर्णमासावाग्रयणश्च शेषाणि कर्माणि न भवन्तीति” तत्पत्नीमृतेः पूर्वं विच्छिन्नाग्निविषयम् । ३०

तथा च कपर्दिभाष्यम्—“विच्छिन्नाग्नेः कदाचित्पत्नीमरणे यावज्जीवं श्रुतेरवगतत्वात् दारान्तरग्रहणे चासामर्थ्यादात्मार्थमग्न्याधेयं कार्यमिति” । स एव—

“नष्टोत्सृष्टाऽनलसहचरी दाहकृत्येन कुर्यात्प्रेताधानं माथितदहनस्तत्क्रियायां प्रकल्प्य” इति ॥

नष्टाग्निरुत्सृष्टाग्निर्वा पत्नीमरणे दाहार्थं प्रेताधानं कुर्यात् । किन्तु दाहकृत्ये माथिताग्निरेव

कल्प्यः । ततः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । आधानप्रभूति यजमान एवाग्नयो भवन्ति । ‘यज- ३५

मानो वा अग्नेर्योनिरिति’ श्रुतेः (तै. सं. ३।४।१०) । यदपि कपर्दिवचनम्—

^१ अतःपरं पृ. २७ प. २७ पर्यन्तं कल्पग पाठः ।

“ पत्नीदाहोपयुक्ताग्रेगन्यादेयात्पुरा मृतौ । प्रेताधानं तु कर्तव्यमग्न्याधानं तु जीवतः ॥
 “ पत्नीदाहोपयुक्ताग्रेविच्छिन्नाग्निसमत्वतः । नाट्यं ऋतुनक्षत्रं नारम्भार्थादिकं च न ” ॥ इति ।
 तत्पुनः कृतोद्वाहविषयम् ‘पुनर्दर्शक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च’ इति भग्न्यादिस्मरणात् (५।१६७) ।
 न च ‘अग्न्याधानं तु जीवत’ इत्येतदशक्यविवाहविषयम् । ‘अथाशक्ये नैर्मन्थयेनैव
 ५ दाहयेत’ इति वचनात् । तदेवं शक्यविवाहः पत्नीं स्वाग्निभिर्दहयित्वा पुनर्दर्शक्रियां
 कृत्वा अविलंकेनाशीनादध्यात् । अशक्यविवाहस्तु निर्मन्थयेन पत्नीं दाहयित्वा यावज्जीव-
 मधीन्परिचरेदिति स्थितम् । अपरे तु पत्नीदाहोपयुक्ताग्रिर्धुर आत्मार्थमग्न्याधेयं कृत्वा याव-
 ज्जीवमग्निहोत्रं कुर्यादित्याहुः । तथा च ‘अपत्नीकोऽपि अग्निहोत्रमाचरेत्’ इति, ‘दारकर्मणि
 यद्यशक्तः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । पत्नीदाहोपयुक्ताग्निः अग्न्याधेयं कृत्वा तत्पुरा मृतौ ’
 १० इत्यादीनि पूर्वोक्तानि वचनानि तद्विषयतया योजयन्ति ।

‘ पत्नीदाहोपयुक्ताग्रेगन्याधेयं तु जीवतः ’ इति वचनं यः शक्याशक्यसंशयविषयः
 ‘ पत्नीदाहोपयुक्ताग्निः सन् विवाहं न शक्नुयात् ’ तद्विषयम् । ततश्च ‘आहिताग्निः पूर्वमृताम् ’
 इत्यनेन न विरुद्ध्यते । विच्छिन्नाग्निः पत्नीमरण इत्यादि भाष्यस्यापि कदाचित्पत्नीमरणे सति
 विच्छिन्नाग्रेति योजनेति ते वर्णयन्ति । यद्यपि ‘पाणिग्रहणाद्वि सहत्वं कर्मसु’ इत्यादिभिः
 १५ पतिवत् पत्न्या आपि स्वामित्वमवगम्यते तथापि नोभयोस्तुल्यता । ‘पत्नीवदस्याग्निहोत्रम्’ इत्यादौ
 यजमानस्यैव प्राधान्येन स्वामित्वावगमात् । ‘ज्योतिष्ठोमेन यजेत्’ इत्यादावेकवचनश्रुत्या च यज-
 मानस्यैवाधिकारत्वावगमात् । तदङ्गतया पत्न्याः स्वामिकोऽनुप्रवेशात्स्वामित्वं सहत्वं च नि-
 र्वोद्धयम् । ‘पत्नी हि पारीणहस्येश’ इति श्रुत्या (तै. सं. ८।२१) गृहोपकरणरूपधनैकदेश-
 स्वामित्वमवगम्यते । अत एव ‘उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत्’ इति पत्न्याः
 २० प्रतिनिधिः स्मर्यते । अन्यथा ‘न च प्रतिनिधिर्भन्वस्वामिदेवाग्निकर्मसु’ इति स्वामिप्रतिनिधि-
 निवेदेनोपाधिना कर्म समापनमयुक्तं स्यात् । न च वचनात् प्रतिनिधिस्थापनमिति वाच्यम् ।
 वचनादेव पत्न्याभावेऽपि आग्निहोत्रादेवनिवृत्तेः । कपर्दीं च—

“ अस्ति स्वामित्वलेशोऽस्यास्तप्राचुर्यं तु भर्तरिस हि प्रधानं विधिभिस्तस्यैवाथ क्रिया यतः” ॥ इति ।

अनेनैव न्यायेनानाहिताग्रेति शक्ये विवाहे औपासनेन पूर्वमृतां पत्नीं दाहयित्वा
 २५ विवाहः कार्यः । अशक्ये तु नैर्मन्थयेन दाहयित्वा धार्योपासन इति द्रष्टव्यम् ।

अत्र आद्वलायनो विशेषमाह—

“ स्मार्ताधिनाग्निभिर्दग्ध्वा मृतां पत्नीं च तां त्रिभिः । शिष्टाधिनोद्वेदन्यां पुनश्चैवाग्निमान्यजेत् ॥

“ प्रागुद्वाहाच्च शिष्टार्थं स्मार्तस्याग्नेयथाविधि । शुश्रूषेदप्यपत्नीक इष्टिं कुर्याच्च वा न वा ॥

“ सायंप्रातहर्मधर्ममधर्मावपि सञ्चरेत् ” इति ॥

३० अनाहिताग्निः पूर्वमृतां पत्नीमौपासनार्थेन दग्ध्वा शिष्टाधिं सायंप्रातर्जुह्वन् स्थाली-
 पाकं च कुर्वन् तस्मिन्नन्यामुद्वहेत । पुनरुद्वाहमकुर्वन्वा सायंप्रातहर्मधर्मावेव यावज्जीवं
 सञ्चरेत् । आहिताग्निस्तु त्रिभिरग्निभिस्तां दग्ध्वा पुनरुद्वाहनन्तरमग्निमान् भूत्वा यजेत् ।
 उद्वाहशक्तौ निर्मन्थयेन पत्नीं दग्ध्वा यावज्जीवमग्निहोत्रं कुर्वन् पर्वणोरिष्टिं कुर्यादित्यर्थः ।
 भारद्वाजोऽपि—

५ “ कंपत्योरुभयोरेको यदि प्राणैर्वियुज्यते । भर्ता वा यदि वा पत्नी जीवन्विधुर उच्यते ॥

“ द्वयोः साधारणो वक्त्रः सहसंस्कारसंस्कतः । प्रेतं विधिब्लादेति पत्नीं भर्वाग्रेत वा ॥

“ संस्कृत्य विधिवत्प्रेतं वह्निर्जीवन्तमश्नुते ॥ इति । तदेवमेकाग्निः पत्न्या अग्निमदत्वार्थं दत्वा वा अपत्नीकोऽपि यावज्जीवमौपासनं परिचरेत् । केचिच्चनु औपासनाग्निना पत्नीं दग्ध्वा विधुरोऽप्यग्निमुत्पाद्यौपासनं कुर्यादिति ॥

अग्न्युत्पत्तिप्रकारः क्रियाकल्पकारिकायामभिहितः—

“ उद्घृत्य वह्निं प्रणवेन पूर्वमन्वग्निमन्त्रेण हरेत्पुरस्तात् ।

५

“ निधाय ‘ पृष्ठो दिवि ’ मन्त्रकेण ततस्तु होमः शकलैश्चतुर्भिः ॥

“ रेखादयो नैव च तत्सतां स ‘ विश्वानिनोद्यान् ’ इमे च मन्त्राः ।

“ आरोहणं नास्त्यवरोहणं स्यादुत्पत्तिरेवं विधुरानलस्य ॥

“ नित्यानि नैमित्तिककाम्यकर्मण्यत्रैव कुर्याद्विधुरः सदैव ” ॥ इति । एवमुत्पाद्य सायं-प्रातरौपासनं कुर्यात् । कर्मान्तेऽग्निलौकिक इत्याहुः । तथा च भारद्वाजः—

५०

“ आधाय विधिवद्वह्निं भर्ती पत्न्यपि वा पुनः । यावज्जीवं परिचरेदोषधीभिर्यथाविधि ॥

“ स्थालीपाकं चाग्रयणमस्मिन्नग्नौ विधीयते । आ प्राणविप्रयोगान्तं न जहात्येष पावकः ॥

“ प्राणैर्विद्युके संस्कृत्याद्विधुरं विधुराग्निना ” ॥ इति । ‘ स्त्रीं चैवं भर्तरि प्रेते ’ इति वचनाद्धर्तरि प्रेते पत्न्यप्यौपासनं परिचरेदित्यर्थः । अत्र सार्वभौमीये—‘ पाणिग्रहणादधिगृहमेघिनो-व्रतम् ’ इति द्विवचनस्वारस्यादन्यतरात्यये स्मार्तकर्मनिधिकारज्ञापनादावाभ्यां कर्माणि कर्तव्यानीत्युभयाधिकारित्वेनैव गार्हकर्मदौ सङ्कल्पाच्च विधुरस्याश्रमान्तरपरिग्रहार्हत्वाय सन्ध्यावन्दनमात्रं कर्तव्यमिति ।

५५

तथा च तस्याग्न्याभावं सिद्धवत्कृत्य मन्त्रजपेन तत्फलावाप्निमाह शौनकः

“ महत्तप्रजपेत्सूक्तं पञ्चवारं दिनेदिने । औपासनं विना दोषो न स्पृशेद्विधुरं ततः ॥

“ अग्ने न य’जपेद्वर्चं पञ्चवारं दिनेदिने । विधुरस्याग्निकस्यैव यत्फलं तद्वेद्धुवम् ” ॥ इति ॥ २०

शातातपोऽपि—

“ अनग्निरपि यो विप्रः सदाचारपरो यदि । श्राद्धादिषु समस्तेषु सोऽपि ग्राह्यो मनीषिभिः ॥

“ अनग्निकस्य वेदोऽग्निर्वेदहीनोऽप्यनग्निकः । साऽग्निकोऽप्यनधीतश्चेदनग्निक इति स्मृतः ॥

“ वैधुर्यं न तु बाधेत पुत्रवान्यदि यो द्विजः । तथा च वेदविच्चैव सर्वकर्मसु सोऽहंति ॥

“ पुत्रवान्मृतभार्योऽपि सोऽग्निमानिति संस्कृतः । पुत्र एवाग्निरित्याहुः पुत्रार्थं दारसङ्ग्रहः ॥

२५

“ मृतायामपि भार्यायां प्रत्यक्षाग्निर्विनश्यति । आत्मन्यग्निर्न नश्येत्तु तस्मात्कर्माहं एव सः ” ॥ इति ॥

एवं चैकाग्नेर्विधुरस्याग्निस्वभावासङ्घावयोः शिष्टाचारप्राचुर्येण व्यवस्थाऽवगन्तव्या । इति यजनम् ॥

अथ याजनं निरूप्यते ।

तत्र विधिः श्रूयते—“ द्रव्यमार्जयन्नाह्वणः प्रतिगृहीयाद्याजयेदध्यापयेद्वा ” इति । न चायं नित्यविधिः । अकरणे प्रत्यवायादिनित्यलक्षणाभावात् । अपि तु काम्यविधिः । ३० द्रव्यार्जनकामस्य तत्राधिकारात् । तत्रापि नापूर्वविधिः । जीवनोपायत्वेन याजनस्य प्राप्तत्वात् । आग्निहोत्रं जुहुयादृष्टकाः कर्तव्या इत्यादिवदत्यंताप्राप्त्यभावात् । अत्यंताप्राप्तप्राप्तं ह्यपूर्वविधिः । नापि परिसंख्या । एकस्यानेकत्र प्राप्त्यभावादेकस्योभयत्र प्राप्तस्यान्यतो निवृत्यर्थमेकत्र पुनर्वचनं परिसंख्या ।

१ ज स्यनैकः क्ष-स्यानेकपुत्रप्राप्त्य ।

“ इमामगृभ्णन्नरशनासृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत् ” इत्यत्र मंत्रलिंगसामर्थ्यादश्वाभिधान्या
गर्दभाभिधान्याश्च रशनाया ग्रहणे विनियुक्तः पुनरश्वाभिधानीमादत् इति वचनेनाश्वाभिधान्यां
विनियुज्यमानो गर्दभाभिधान्या निवर्तते । तथा च ‘पञ्च पञ्चनस्त्रा भक्ष्या’ इत्यत्र स्वेच्छया
शशादिषु श्वादिषु च प्राप्तं पुनः शशादिषु श्रूयमाणं श्वादिभ्यो निवर्तत इति । तस्मात्पक्षे
५ प्राप्तत्वात् ‘समे देशे यजेत्’ ‘प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत्’ इतिवन्नियमविधिरयम् । मंत्रेष्वृष्ट्यादिज्ञानं
च याजनांगत्वेन छंदोगब्राह्मणे समाप्नायते “ यो ह वा अविदितार्षेयछंदोदैवतब्राह्मणेन मंत्रेण
याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्वा पद्यते प्र वा मीयते पार्पयान्भवति । यातया-
मान्यस्य छंदांसि भवन्तीति ” तदज्ञानवृयाजकस्य दोषाभिधानात् “ याजयित्वा प्रतिगृह्य
वाऽनश्चन् त्रिः स्वाध्यायं वेदमधीयेत् ” इत्यादीनि अयाज्ययाजनविषयाणि । तथा च देवलः
१० ‘यः शूद्रानपतितांश्चापि याजयेदर्थकारणात् । याजितो वा पुनस्ताभ्यां ब्राह्मणोऽयाज्ययाजकः’॥इति।
मनुः (३।३५)—

“ अयाज्ययाजनैश्चैत्तर्नास्तिक्येन च कर्मणाम् । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः ॥
“ संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु शश्यासनादिना”॥(११।१८०)
पतितेन संसर्गं कुर्वन् शयनादिना संवत्सरेण पतति । याजनादिना तु संवत्सरेण न किंतु सद्यः
१५ पततीत्यर्थः । यौनं विवाहः । देवलः—

“ याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः”॥
वोध्रायनः (२।१।६२)—
“ संवत्सरेण पतति पतितेन समाचैरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यो न तु शश्यासनादिभिः”॥इति।
आपस्तंवः (१।२।१।५) “ न पतितैः संव्यवहारो विद्यते । तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति
२० च वर्जयेत् ” इति (१।१।३३) । व्यासः—

“ संवत्सरेण पतति संसर्गं कुरुते तु यः । यानशश्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ॥
“ याजनं योनिसंबंधं तथैवाध्यापनं द्विजः । कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनमेव वा”॥ संवर्त्तः—
“ महापातकसंयोगी ब्रह्महत्यादिभिर्नरः । तत्संसर्गविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ” ॥ इति ।
यमः—“ प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानां प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वदन्ति ।
२५ “ प्रतिग्रही शुद्ध्यति जप्यहोमैः याज्यं तु पापैर्न पुनर्निति वेदाः” ॥ इति याजनम् ॥
अथाध्ययनम् । “स्वाध्यायोऽध्येतव्यो ब्राह्मणेन षेषांगो वेदोऽध्येय” इति श्रूयते (सह वै उपनिषदिः)।
अनेन अर्थज्ञानपर्यंतं अध्ययनं विधीयते इति न्यायसिद्धम् । मंत्राः पुनरविदितार्थनुष्ठाना अनु-
ष्टेयार्थप्रकाशनासमर्थाः । तस्मात्प्रतिपन्नवेदार्थेऽनुष्ठाताभिलिषितानि कर्मफलानि प्राप्नोति न च
प्रत्यवैतीति वेदोऽध्येतव्यः तदर्थश्च प्रतिपन्नव्यः । अत्र मनुः (२।१।६५)—
३० “ तपोविशेषैर्विवैश्च विविच्चोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ” ॥
व्रतैः प्राजापत्यादिभिः । कृत्स्नः सांगः । स एव (२।१।६६)—
“ वेदमेव सदाभ्यस्येत तपस्तप्त्यन् द्विजोत्तमः । वेदाध्यासे हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ” ॥
इह वेदे । उच्यते “तपो हि स्वाध्याय” इति श्रूयते ।
“योऽनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः”(१६८)॥
३५ “ कुविवाहैः क्रियालोपेवेदानध्ययनेन च । कुलान्याशु विनश्यन्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च (३।६३)॥

“मंत्रवन्ति समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि। कुलसंख्यां च गच्छति कर्षति च महयशः॥

“यदधीतमविज्ञानं निगदेनैष शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्केभौ न तज्ज्वलति कर्हिचित्”॥

श्रूयते च (निरुक्ते १८)—

“स्थाणुरुयं भारहावः किलभूदधीत्य वेदान् न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्वते स नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ”॥ इति । मनुरापि (१२१००)—

५

“सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वर्हति ॥

“इतिहासपुराणज्ञः पद्वाक्यप्रमाणवित् । अंगोपकारवेदी च वेदार्थं ज्ञातुमहति”॥ इति ।

इतिहासो भारतरामायणादिः । कूर्मपुराणे (उत्तरार्धे अ. १४ श्लो. ८४-८७)—

“योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः । स वै मूढो न संभाष्यो वेदवाहो द्विजातिभिः ॥

“न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै द्विजोत्तमः । पाठमात्रावसानस्तु पंको गौरिव सीदति ॥

१०

“योऽधीत्य विधिवदेदं वेदार्थं न विचारयेत् । सौ सान्वयं शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते”॥

याज्ञवल्क्यः—

“पारंपर्यागितो येषां वेदः सपरिबृंहणः । तच्छासाकर्म कुर्वीत तच्छासाध्ययनं तथा ॥

“यः स्वशास्वां परित्यज्य पारक्यमधिगच्छति । स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वकर्मसु साधुभिः ॥

“अधीत्य शास्वामात्मीयां परशास्वां ततः पठेत्”॥ मनुः (२१५७-१५८)—

१५

“यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । ब्राह्मणश्चानधीयानः त्रयस्ते नामधीरकाः”॥ इति ।

“यथा षट्ठोऽफलस्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । यथा चाक्षेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः”॥

पराशरः (१२८)—

“ये पठंति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये । त्रैलोक्यं तारयन्त्येते पंचेद्रियरता अपि”॥

संवर्त्तः “वेदं चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशो समाहितः”॥ इति । दक्षः—

२०

“वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः । तदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा”॥

द्व्यासः—

“वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तिं द्विजः । वेदमध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत्”॥

“अधीतमपि यो वेदं विमुचति यदा नरः । भ्रूणहा स तु विशेषो वियोनिमधिगच्छति”॥

मनुः (१११९८)—

२५

“शरणागतं परित्यज्य वेदं विश्वाव्य च द्विजः । संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति”॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ४०)—

“यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् । वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः”॥

यज्ञादीनां बोधकत्वेन निःश्रेयसकरः । द्व्यासः—

“हरिरोमिति निर्दिश्य यत्कर्म क्रियते बुधैः । अधीयतेऽपि राजर्बे तद्विवीर्यकरं भवेत्”॥

३०

आपस्तुंबः (११३६-७)—“ओंकारः स्वर्गद्वारं तस्माद् ब्रह्माऽध्येष्यमाणः एतदादि प्रतिपद्येत ।

विकथां चान्यां कृत्वा एवं लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते ब्रह्म”॥ इति । ब्रह्म वेदं स्वर्गसाधनम् अध्येष्य-

माणः स्वर्गद्वारं प्रणवमादौ कृत्वा प्रतिपद्येत उपक्रमेत । अध्येतुमध्ययनेन अनुपयुक्ता कथा-

विकथां चान्याकृत्वेतदादिप्रतिपद्येत । एवं सति ब्रह्म वेदः लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते तथा

व्यामिश्रितं न भवतीत्यर्थः । अर्थवर्णे श्रूयते—“प्रणवं देवा असुरजयार्थं प्रार्थयन्तः । वरं वृणी-

३५

१ ‘म चान्मा शत्रुघ्नेन्नन्म’ इति पात्रः । २ ग-निभानि । ३ व्य-न मै ।

ज्ञेत्यब्रुवंस्तान् प्रणवोऽब्रवीत् न मामनिराधित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुः अब्रह्मैव स्यादिति । तस्मादोक्तारः पूर्वमुच्यते इति । एव एव हि पुरस्तादुच्यते एव पश्चादितीति च” । इत्यध्ययनम्॥

अथाध्यापनम् । स्मृतिरत्ने—

‘याजनाध्यापने शुद्धे तथा पूतप्रतिग्रहः । एव सम्यक्समाख्याता त्रितीयी तस्य जीविका” ॥
‘अध्यापने नियमानाह यथः—

“सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं नरः” ॥

मनुरपि (२१७०)—

“अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतंद्रितः । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्तिवति चारमेत् ॥

“आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्जनिदो धार्मिकः शुचिः । शक्तोऽर्थदोऽर्थी स्वः साधुरध्याप्या दक्षं धर्मतः ॥ (२१०९)

१०

“धर्मार्थीं यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा । तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे (११२) ॥

“विद्ययेव समं कामे मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि च घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् (११३) ॥

“विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष मां । असूयकाय मां माऽदाः तथास्यां वीर्यवत्तमा (११४) ॥

“यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने” (११५) ॥

१५ शेवधिरित्यादिविद्याया वचनं शेवधिर्निधिः । ते शेवधिरस्मि विद्या जानीयाः । निधिपालाय विद्या निधिपालाय । स एव (२११६)—

“ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् । स ब्रह्मस्तेयकृद्विप्रो नरकं प्रतिपद्यते ॥

“नापृष्ठः कस्यचिद्ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् (११०) ॥

“अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति । तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति” (१११) ॥

१० प्राह वचनं करोति । प्रैति श्रियते ।

विद्याधर्मस्त्रियो विशिष्टतराश्वेदविशिष्टादप्यपादानादवैश्यमुपादेया इत्याह स एव (२२३८)

“श्रद्धानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अंत्यादपि परं धर्मः स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि” ॥

एतदेव दृष्टांतेनोपपादयति (२२३९-२४३)

“विषादप्यसृतं ग्राह्यं वालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम् ॥

१५ “स्त्रियो रत्नं तथा विद्या धर्मः शोचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

“अब्राह्मणादध्ययनमाप्तकाले विधीयते । अनुवज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः” ॥

अब्राह्मणादक्षत्रियवैश्याभ्याम् ।

“अधीयीरन्स्वकर्मस्थास्त्रयो वर्णा द्विजातयः । प्रब्रूयात् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः (१०१) ॥

“ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यव्ययो वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः” ॥

० हारीतः—

“मंत्रार्थज्ञे जपञ्जुवहंस्तथैवाध्यापयन् द्विजः । स्वर्गलोकमवाप्नोति नरकं तु विपर्यये” ॥

लिखितं पाठं निषेधति नारदः—

“पुस्तकप्रत्याधीतं नाधीतं गुरुसंन्निधौ । भ्राजते न समाप्त्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः” ॥ इति ।

स एव—

१ “हस्तहीनस्तु योऽधीते स्वर्वर्णविवर्जितः । कर्णयजुःसामभिर्दर्शो वियोनिमधिगच्छति” ॥

हारीतः—

१ क्ष-तृतीयं । २ क्ष-कर्तव्यं । ३ क्ष-ऐसम् । ४ क्ष-त्यं ।

“ अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थं चार्थकारणात् । शुश्रूषाकरणाचेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥

“ येषामन्यतमाभावे मृषाचारे भवेद् द्विजाः । तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥

“योग्यानध्यापयेच्छिष्ठाध्यानयोग्यानपि वर्जयेत्” ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. २८)—

“कृतज्ञोऽद्रोहि मेधावी शुचिः कल्पोऽनसूयकः । अध्याप्यो धर्मतः साधुः शक्तासो ज्ञानवित्तदः” ॥
व्यासः—

“कृतज्ञश्च तथाऽद्रोही मेधावी शुभकृत्त्वरः । आसः प्रियोऽथ विधिवृत् षडध्याप्या द्विजोन्मैः” ॥ इति ।
आपस्तंबः (२१५।१८)—“यथागमं शिष्येभ्यो विद्यासंप्रदाने नियमेषु च युक्तः स्यादेवं वर्तमानः
पूर्वापरान् संबद्धानात्मानं च क्षेमे युनक्ति” इति । येन प्रकारेणागमपाठार्थयोस्तथैव शिष्येभ्यो
निर्मत्सरेण विद्या संप्रदेया । एवंभूतो विद्यासंप्रदाने युक्तोऽवाहितः स्यात् च गृहस्थस्य नियमा-
ध्यापनेऽन्यत्र च तेष्वपि युक्तः स्यादेवं वर्तमानः पूर्वान्पितृपितामहप्रपितामहानपरान् पुत्रपौत्रनप्तृ- १०
न्कर्मणिवर्तुस्वसंबंधिनः पुरुषानात्मानं च क्षेमे अभयस्थाने नाकपृष्ठे युनक्ति स्थापयतीत्यर्थः ॥
बोधायनः (१२।४९-५०)—

“धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा । विद्या सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत् ॥

“आग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्मपृष्ठमनादृतम् । तस्मादै शक्यं न ब्रूयाद्ब्रह्म मानमकुर्वताम्” ॥ इति ।

स एव (१२।४२-४३)—“अब्राह्मणादध्ययनमापदि शुश्रूषाऽनुवज्या च यावदध्ययनम्” ॥ इति । १५

गौतमः (९।६८)—“सत्यधर्मार्थवृत्ती शिष्टाध्यापकः” इति । स एव (७।१) “आपत्कल्पो
ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा समाप्ते ब्राह्मणो गुरुः” ॥ इति । न चापररात्रमधीत्य
पुनः प्रतिसंविशेष स्वप्यादित्यर्थः । मनुः (४।९९)

“नाविस्पृष्टमधीयीत न शूद्रजनसंनिधौ । नानिशीथे परिश्रांते ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत्” ॥ व्यासः—

“अनध्यायेष्वधीतं यद्यच्छूद्रस्य च संनिधौ । प्रतिग्रहनिमित्तं च नरकाय तदुच्यते” ॥ इति । स एव— २०

“आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् । वृत्त्यर्थं यस्य चार्थीतं स याति नरकान्बहून्” ॥

शातातपः—

“वेदाक्षराणि यावंति नियुञ्ज्यादर्थकारणात् । तावंति भ्रूणहत्या वै वेदविक्रियमाप्नुयात्” ॥

छागलेयः—

“प्रख्यापनं प्राध्ययनं प्रश्नपूर्वप्रतिग्रहः । याजनाध्यापने वादः षट्पूर्णो वेदविक्रियः” ॥ २५
प्रख्यापनं अहं चतुर्वेदीत्यादि राजमंदिरादावाक्रोशः । स्वस्योत्कर्षार्थमध्ययनं प्राध्ययनम् ।
कियन्मे दास्यतीत्युक्त्वा प्रतिग्रहो याजनमध्यापनम् । प्रश्नपूर्वाणि इतरमाधिक्षिप्य स्वविद्याख्यापने
परस्परं विवादः । शातातपः—

“प्रश्नपूर्वं तु यो द्वयाद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम् । स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनंतरम्” ॥

स्मृतिसंघ्रहे—

“गायत्रीं मूल्यमादाय यः परस्मै प्रयच्छति । स जीवन्नत्येजातित्वं संप्राप्नोति न संशयः” ॥

शौनकः—

“वेदाक्षराणि यावंति नियुक्ते त्वर्थकारणात् । तावंति भ्रूणहत्या वै लभते नात्र संशयः ॥

“अर्थार्थं भोजनार्थं वा यो वेदाक्षरमुच्चरेत् । चांडालः स तु विशेयः सर्वकर्मवहिष्कृतः” ॥ इति ।

भूतकाध्ययनभूतकाध्यापने उपपातकेषु पठति याज्ञवल्क्यः (प्रा. २।३५)—“भूतकाध्ययनादानं ३५
भूतकाध्यापनं तथा” ॥ इति । इत्यध्यापनम् ॥

अथोपाकरणम् ॥ मनुः (४१९५-९६)—

“ श्रावण्यां प्रौष्ठपद्मां वा उपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छंदांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपंचमान् ॥

“ पुष्ये तु छंदसां कुर्याद्विहस्तर्जनं द्विजः । माघशुक्लस्य वा प्राते पूर्वाङ्गे प्रथमेऽहनि ” ॥

अव्यर्थाणां श्रावण्यां प्रौष्ठपद्मां छंदोगानामिति व्यवस्थितविषयोऽयं विकल्प इति त-
५ अव्याख्यानम् । ग्रामाद्विहस्तर्जनाख्यं कर्म प्रथमेऽहनि प्रथमायां तिथौ पुष्येऽध्वर्यूणां माघे छंदो-
गानाम् । आपस्तंबः (११११-३)—“ श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्यायमुपाकृत्य मासं प्रदोषे
नाधीयीत तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेऽर्धपंचमांश्चतुरो मासानित्येके ” इति ॥

“मेषादिस्थे सवितरि यो यो दर्शः प्रवर्तते । चांद्रमासास्तत्तदंताश्वैत्राद्या द्वादश स्मृताः ॥

“तेषु या या पौर्णमासी सा सा चैत्यादिकाः स्मृताः । कौदाचित्केन योगेन नक्षत्रस्येति निर्णयः ” ॥

१० तदेवं सिंहस्थे सवितरि याऽमावास्या तदंते चांद्रमासे या मध्यवर्तिनी पौर्णमासी सा श्रावणी ।

श्रवणयोगस्तु भवतु वा मा वाऽभूत । तस्यामध्यायमुपाकृत्य स्वगृह्योक्तेन विधिना ‘उपाकर्म स्वगृह्योक्ते
काल’ इत्यत्रिस्मरणात् । स्वगृह्योक्तकाले उपाकर्म कृत्वा स्वाध्यायमधीयीत । अधीयानश्च

मासमेकं प्रदोषे प्रथमे रात्रिभागे नाधीयीत । तैष्यां पौर्णमास्यां तैषे मासि तिष्यात्पूर्वा या
रोहिणी तस्यां विरमेत् । स्वगृह्योक्तविधिना उत्सर्जनं कुर्यात् । अनयोः पक्षयोः पंच मासान-

१५ धीयीत अर्धपंचमानिति अर्धं पंचमो येषां ते अर्धपंचमाः । अर्धोधिकांश्चतुरो मासानधीयीतेत्येके
मन्यंते । अस्मिन्पक्षे प्रौष्ठपद्मामुपाकरणं शासांतरदर्शनादिति । तथा गौतमः (१६।१)

“श्रावणादिवार्षिकं प्रौष्ठपद्मां वोपाकृत्य तदादि छन्दांस्यधीयीत” । तदिदमध्ययनं वार्षिकं प्रतिसं-
वत्सरं भवति अर्धपंचमान्पूर्णान्यावद्वक्षिणायनं वाऽधीयीतेत्यर्थः । बोधायनस्तु (१५।१४३)—

“श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य तैष्यां माध्यां वोत्सुजेयुः ” ॥ इति । याज्ञवाल्क्यः

(आ. १४२)—

१० “ अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेषु वा । हस्तेनौषधिभावे वा पंचम्यां श्रावणस्य वा ” ॥
ओषधीनां प्रादुर्भावे सति श्रावणमासस्य पौर्णमास्यां श्रवणयुक्ते वा दिने हस्तेन युक्तायां
पंचम्यां वा स्वगृह्योक्तविधिना कुर्यात् ।

अत्र व्यवस्था दर्शिता स्मृतिसारे—श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणमासस्य श्रवणे वा पंचम्यां
५ हस्ते वा पंचमीहस्तयोगे भाद्रपदपौर्णमास्यां तत्रापि श्रवणे हस्ते वा पंचम्यां पंचमीहस्तयोगे वा
यथास्वकुलाचारं कुर्यादिति । कालादर्शेऽपि—

“अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बहूच्चाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि ॥

“सहस्तशुक्लपंचम्यां न तद्ग्रहणसंकरे । असिंहार्के प्रौष्ठपद्मां श्रवणे च व्यवस्थया ” ॥ इति ।

अर्कः सूर्यः सिंहराशिस्थितो यदि स्यात्तदा तैत्तिरीयाः श्रावणमासस्य पौर्णमास्यामध्यायानामुपाकर्म
० कुर्युः । बहूच्चाः श्रवणनक्षत्रयुक्ततिथाविति व्यवस्था । तत्रासंभवे तन्मास एव हस्तनक्षत्रयुक्तपंचम्यां वा

कुर्यात् । ग्रहणे संक्रमे च तदुपाकर्म न कुर्युः । असिंहार्क इति यदि सूर्यः सिंहराशिस्थितो न
भवति तदा प्रौष्ठपद्मां भाद्रपदपौर्णमास्यां श्रवणे च व्यवस्थया कुर्युः । प्रौष्ठपद्मां तैत्तिरीयकाः

कुर्युः । बहूच्चाः श्रवणक्षयुक्ततिथाविति व्यवस्था । चकारात् भाद्रपदमासे हस्तनक्षत्रयुक्ततिथा-
विति सूचितम् । तथाह गार्यः—

११ “ पर्वण्योदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः । बहूच्चाः श्रवणे चैव ग्रहसंक्रांतिवर्जिते ” ॥

आ॒दयिके उदयकालव्याप्तिनी । गौमिलोऽपि—

“पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः । बहूचाः श्रवणक्षेत्रं तु हस्तक्षेत्रं सामवेदिनः” ॥ इति ।
स एव—

“छंदोगाभिहिताः कुर्युः प्रातरौत्सर्गिकीं क्रियाम् । अपराह्नेऽप्युपाकर्म पुष्यहस्तक्षेत्रोद्विजाः” ॥
हस्तक्षेत्रं उपाकर्म पुष्यक्षेत्रं उत्सर्गीं कुर्युः ॥^१

“अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्निके । पूर्वाह्ने तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः” ॥
“उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च । कर्षीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तान् द्विजस्ततः” ॥ इति ॥

सामवेदिनः सिंहभाद्रपदे मौद्यादिना दूषिते सति कन्यामास अपरपक्षे हस्त-
नक्षत्रे उपाकरणं कुर्वति । तत्र सायं त्रिमूहर्त्तव्यापि हस्तनक्षत्रं ग्राह्यम् । मौद्यादिरहिते तु
सिंहभाद्रपदे शुक्ले उदयादिसंगवान्तव्यापि हस्तक्षेत्रं ग्राह्यम् । तथा संश्वरे “हस्तक्षेत्रेऽनुदये शुक्ले
त्रिमूहर्त्तस्तगे सिते” ॥ इति । हस्तक्षेत्रं त्वाष्ट्रक्षेत्रं संयुतं संगवांतयुगिति च । तिथिद्वर्षणे च—^{१०}
“औदयिके संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे” ॥ कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्” ॥ इति ।
संगवस्पर्शे संगवांतस्पर्शे । अत्र वृद्धगार्यः—

“घटीपरिमितः कालः संगवादूर्ध्वपर्वणि । औदयिकमिति प्राहुर्मुनयः स्मृतिचिंतकाः” ॥
गर्गः “परेन्हि संगवादूर्ध्वं पूर्णिमाश्रवणं^२ वजेत्” । स्मृत्यंतरे—

“सन्धिः संगवतः पश्चादर्वाङ्गम्हृयंदिनाव्यादि । तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सद्यश्च समिदाहुतिः” ॥^{१५}

“संधिः संगवतः प्रावचेत्पूर्वस्मिन्पर्वणि क्रिया । श्वोभूते समिदाधानमेष श्रावणिको विधिः” ॥
तथा ध्वर्यूनधिकृत्य स्मर्यते

“श्रावणी पौर्णिमासी तु संगवात्परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत्” ॥ इति ।
तदेवं उदयादि द्वादशशठिकाधिकं किंचित्कालव्यापिन्यां पौर्णिमास्यां यजुःशास्त्रिन्या-
मुपाकर्म । उदयादिद्वादशशठिकाव्यापिनि हस्तनक्षत्रे छंदोगानां मौद्यादिदूषिते तु सिंह-^{२०}
भाद्रपदे कन्यापरपक्षे सायं त्रिमूहर्त्तव्यापिनी । हस्तनक्षत्रे छंदोगानां बहूचानां तु सूर्योदयात्परं
घटिकाद्वयव्यापिनि श्रवणनक्षत्रे । तथैव संश्वरे

“उदयव्यापिनं चैव विष्णवक्षेत्रं घटिकाद्वयम् । तत्कर्म सार्थकं स्याच्च तदोपाकरणं भवेत्” ॥
वंसिष्टः मलमायां—

“यां तिथिं समनुप्राप्य श्रवणं घटिकाद्वयम् । तस्यामुपाकृतिं कुर्युराश्वलायनशास्त्रिनः” ॥ इति ॥^{२५}
गार्यः—

“अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रांत्यां ग्रहणेऽपि वा । न कर्त्तव्यमुपाकर्म परतश्चेन्न दोषभाक्” ॥
तथा पैद्वतौ—

“मलमासे निपतिते सूतके मृतकेऽपि वा । ग्रहणे संक्रमे वाऽपि मौद्येऽपि गुरुशुक्रयोः” ॥

“प्रौष्ठपद्यामथाषाढ्यामुपाकरणमिष्यते । प्रौष्ठपद्यामुपाकुर्याच्छ्रावणं दूषितं यदि” ॥^{३०}

“आषाढे वाऽपि कर्त्तव्यं प्रौष्ठपद्यां च दूषिते । मासत्रयेऽपि दोषश्चेच्छ्रावण्यामेव कारयेत्” ॥

व्यासः—

“श्रावण्यामथवाऽषाढ्यां प्रौष्ठपद्यामथापि वा । दुष्टायां पूर्वपूर्वस्यामुत्तरस्यां विधीयते” ॥

“कालत्रयेऽपि दोषे तु श्रावण्यामेव कारयेत् । पौर्णिमास्यास्तु नित्यत्वादापस्तंबस्य शासनात्” ॥

“मुक्त्वा भाद्रपदाषाढ्यौ श्रावण्यामेव कारयेत्” ॥ इति ।

३५

^१ क्ष-धि । ^२ ख-अन्यच्च । ^३ क्ष-है । ^४ करखग-स्थिति । ^५ करखग-श्रावणव्रते ।

^६ करखग-आवर्तनाव्यादि । ^७ क्ष- एवाधिको । ^८ क्ष-घटिकाव्याधिना । ^९ खग-व्यापिनि त्वेन ।

^{१०} करखग-पद्वतौ । ^{११} करखग-वंसिष्टः ।

“अधीतवेदविद्यानां कर्तव्यं तु द्विजन्मनाम् । अध्यायांगमिदं नित्यमिति होवाच भार्गवः ॥

“वेदोपाकरणे प्राते कुलीरस्थे दिवाकरे । उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके ॥

“सिंहदर्शा तु या पूर्वा पूर्णा सा श्रावणी मता । तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सिंहस्थोऽकर्णे भवेन्न वा ” ॥

इत्यादीनां वचनानां परस्परविरुद्धानां देशभेदेनाविरोधमाहुः ।

५ “कुलीरे सूर्यसंयुक्ते उपाकुर्यात्तु दक्षिणे । नर्मदोत्तरदेशे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके ” ॥ इति । आंधमहाराष्ट्रकर्णाटककायस्था दाक्षिणात्या तद्वितिरिक्ताः सर्वे नर्मदोत्तरतीरस्था इत्यभियुक्तवादः । गुरुशुक्रमौङ्ग्ये मलमासे च प्रथमोपाकरणं प्रतिषेधति बृहस्पतः—

“गुरुभार्गवयोर्मौङ्ग्ये मलमासे तथैव च । प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कुर्याच्चेत्स विनश्यति” ॥ इति । यत्तु

“प्राधान्येन विधानाच्च मनुनाऽध्यायकर्मणः । प्रथमोपाकृतिश्चापि कर्तव्येत्याह गौतमः ” ॥ इति

१० गौतमवचनं तत्कृतशांतिविषयम् । यदाह बृहस्पतिः—

“शांतिं कृत्वा तयोर्वाऽपि शुक्रदेवेद्रमंत्रिगोः । होमैर्दानैर्जपैर्वाऽपि तयोरादितमंत्रकैः ॥

“कर्तव्यं श्रावणं विप्रैरिति जीवेन भाषितम् ” ॥ इति । श्रावणप्रोष्ठपदाषाढेषु एकस्मिन्दोषरहिते प्रथमोपाकृतिः कर्तव्या । त्रिष्वपि द्वेषु श्रावणमासे शांतिपूर्वका कर्तव्या । उदितमंत्रकैः गृहयज्ञोक्तमंत्रैः । पद्धतिग्रंथे ‘बृहस्पते अति यदर्य’ इति बृहस्पतेः । ‘प्रवः शुक्राय’ इति

१५ शुक्रस्य । “आप्यायस्व स मे तु” इति मलमासो सोमस्य । सूर्योपरागसंक्रातौ ‘चिंत्रं देवानाम्’ ‘उदुत्यं जातवेदसं’ ‘सूर्यो देवीमुषसम्’ ‘उद्ययंतमस्परि’ ‘आ सत्येन रजसा देवो वः सवितोत्पुनातु’ इति सूर्यस्य । सोमोपरागे ‘सोमो धेनुम्’ इति षड्भिः ‘नवो नवो भवति’ इति च सोमस्य शांतिहोमं कृत्वा उपाकरणांगहोमं कुर्यादिति ।

“प्रथमोपक्रमे प्राते कुलीरस्थे रवौ सति । उपाकर्म न कुर्वीत कुर्यात्सिंहस्थिते रवौ ” ॥ यत्तु

२० “यज्ञोपवीतं कर्तव्यं श्रावणे गुरुशुक्रयोः । बाल्ये मौङ्ग्येषि वार्धकये कर्तव्यं नित्यकर्मवत् ”

इत्यादि तत् छास्वाधीशस्य शक्तिसद्भावविषयमिति । सार्वभौमीये तत्रैव—

“ऋग्यजुः सामार्थ्येशा जीवशुक्रकुञ्जेदुजाः । शास्वाधीशो शक्तियुक्ते तच्छास्वाध्ययनं शुभम् ॥

“एको मूढो भवेदन्यः स्वोच्चमित्रांशगो यदि । स्वराशिष्ठूदगौ चैव मौङ्ग्यदोषो न विद्यते” ॥ इति आत्रेयैर्दर्शनात् शुक्रे शक्तियुते गुरुमौङ्ग्येऽपि यजुःशास्वोपाकर्म कर्तव्यम् । शुक्रमौङ्ग्यादावप्येवम् ।

२५ शुक्रमौङ्ग्यादिवेष्योपाकर्मवर्जनस्मरणं स्वशास्वाधीशस्य शक्तयभावविषयामिति शास्वाधीशस्य शक्तौ सत्यामपि मासत्रयदोषे श्रावणमासे शांतिपूर्वकमेवोपाकर्म कर्तव्यमित्यन्ये । एतच्चोपाकरणं गृहस्थब्रह्मचारिणोः साधारणं कर्म । मन्वादिभिर्गृहस्थधर्ममध्ये उपाकरणस्य विधानात् ।

“उपाकर्म तथोत्सर्गं वनस्थानामर्पीष्यते । धारणाध्ययनं कृत्वा गृहिणां ब्रह्मचारिणाम्” ॥ इति देवलस्मरणात् । “अधीयीत गृहस्थोऽपि नियमाद् ब्रह्मचारिवत्” इति व्यासस्मरणात् ।

३० “समावृत्तो ब्रह्मचारी कल्पेन यथान्यायमितरः” इति शौनकस्मरणाच्च । अत्र ब्रह्मचारिकल्पेनेति इषदसमाप्तौ कल्पविधानात् गृहस्थस्य मेखलाजिनदंडविरहितमुपर्वीतधारणं तर्पणहोमादिकमविरुद्धं कर्तव्यतयाऽवगम्यते ।

अत्रोपवीतधारणमाह भरद्वाजः—“अथ यज्ञोपवीतस्य धारणे कथयते विधिः ।

“स्नात्वा शुद्धः शुचौ देशे प्रक्षालितपद्धयः । करदंद्वपवित्रश्च कृतोदस्पर्शनो द्विजः ॥

३५ “उपविश्यासने दर्भे प्राणानायम्यं मंत्रतः । मंत्रं सदैवमुच्चार्यं ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् ॥

१ सग-पूर्णिमा । २ कखग-प्रावल्ये सति वेदितव्यमिति । ३ खग-त्यादिवचन । ४ खग-वाग्यतः ।

“ दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शिरसैव सह द्विजः । गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः ॥

“ मंत्रोच्चारणमाचामद्वितयं क्रमशः स्मृतम् ” ॥ शांडिल्यः—

“ आद्र्वासा न कुर्वीत कर्म किञ्चित्कथंचन । राक्षसं तद्विविजेयं तस्माद्वलेन वर्जयेत् ॥

“ उपवीतादिकं धार्य उपाकर्मणि तन्नवम् । अनवं वा नवं वाऽपि पुरातनमिह त्यजेत् ” ॥ स्मृतिसारे-

“ मौंजीयज्ञोपवीतादि नवमेव तु धारयेत् । कटिसूत्रं चैव नवं नववस्त्रमुपाङ्कुतौ ” ॥ ५

ब्रतचतुष्टयेऽप्येवं स्मर्यते

“ मेखलामग्निं दंडं वस्त्रं यज्ञोपवीतकम् । पूर्वोपयुक्तमुत्सृज्य धारयेयुर्नवं व्रते ” ॥ इति ।

अत्र कपर्दी—

“ प्रजापतिमुखान देवानेकैकं त्रिस्तलोदकम् । उद्धृत्य तर्पणं कुर्याच्छ्रावण्यां तैत्तिरीयकाः ” ॥

उपाकर्मणि ब्रह्मचारिणां वपनमावश्यकम् । ‘ आवण्यां पौर्णमास्यां शिष्यं वापयित्वेति ’ ॥ १०
वैखानसे दर्शनात्

“ क्षुरकर्म न कर्तव्यं चौलात्परमृतुत्रयम् । तथोपनयनादूर्ध्वमुपाकर्म विनाक्चित् ” ॥ इति स्मृतेश्च ।

तत्र तिथिवारादिदोषो न चिंत्यः

“ वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिंतयेत् । सद्यः क्षौरं तु कुर्वीत मातापित्रोर्मृतौ तथा ” ॥ इति
वसिष्ठस्मरणात् । एवं प्रत्यब्दं श्रावण्याभुपाकर्म कार्यम् । कात्यायनः— ॥ १५

“ प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवत् द्विजैः । क्रियते छंदसां तेन पुनराप्यायनं परम् ॥

“ अयातयामैश्चछंदोभिर्यत्कर्म क्रियते द्विजैः । क्रीडमानैरपि तदा तत्तेषां सिद्धकारणम् ” ॥ इति
इत्युपाकरणम् ॥

अथानध्यायाः ॥ मनुः (४।९७)—

“ यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छंदसां बहिः । विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाऽप्येकमहर्निशम् ” ॥ २०

तद्वेदाध्ययनम्

“ अत ऊर्ध्वं तु छंदांसि शुक्ले तु नियतः पठेत् । वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ” ॥

एतद्वुपाकृत्याध्ययनं स्नातकानां ब्रह्मचारिणामपि साधारणम्

“ इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥

“ उपाकर्मणि चोत्सर्गं विरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृतवंतासु च रात्रिषु ” ॥ (४।१०१) २५

उपाकर्मणि विरात्रमुत्सर्गं तु पूर्वोक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां सह विकल्प इति विज्ञानेश्वरः

(पृ. ४१ पं. १९) । प्रथमाध्ययने ऋयहमितरत्र पक्षिण्यहोरात्रं वा

“ उत्सर्गं प्रथमाध्यायेऽत्वनध्यायस्त्रयं भवेत् । धारणाध्यापनादौ तु पक्षिणीं दिनमेव वा ” ॥ इति
मनुस्मरणादित्यन्ये ।

“ मार्गशीषे तथा प्रोष्ठे माघमासे तथैव च । तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षेषु सूरिभिः ” ॥ इति । ३०

विष्णुस्तु “ तिस्रोऽष्टकाः तिरत्रोष्टन्वकास्तिस्रः पुर्वेद्युः । प्रौष्ठपदे हेमंतशिशिरयोरपरपक्षेषु ” ॥ इति ।

नित्यानध्यायानाह हारीतः—

“ प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वगोद्वयोः । इत्वोऽनध्यायेच्च शर्वर्यी नाधीयीत कदाचन ” ॥

मनुः (४।११४)—

“ आमावास्या गुरुं हंति शिष्यं हंति चतुर्दशी । ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ” ॥ ३५

ब्रह्मवेद वर्त्य द्वन्द्वन्ति अष्टका पौर्णमास्या । नैमित्तिकानध्यायानाह याज्ञवल्क्यः (आ. १४८-१५१)-

“ श्वक्रोद्धृगर्दभोलूकसामवाणार्तनिस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यइमशानपतितांतिके ॥

“देशोऽशुद्धावात्मनि च विद्युत्सन्नितसंपूर्वे । भुक्त्वा ऽद्रेपाणिरभोतरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥

“पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगंधे च शिष्टे च गृहमागते ॥

“खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः” ॥इति ।

स एव (आ. १४४११४५)

५ “अयहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यत्विंगृहुरुबंधुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशास्वाश्रोत्रिये तथा ॥

“संध्यागर्जितनिर्धात्मूकंपोल्कानिपातने । समाप्त्व वेदं वृनिशमारण्यकमधीत्य च” ॥
वृनिशमहोरात्रमनध्यायः ।

“पञ्चदश्यां च तुर्दश्याष्टम्यां राहुसूतके । क्रतुसंधिषु भुक्त्वा च श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च” (१४६) ॥
क्रतुसंधिः प्रतिपत् । वृनिशमनध्यायः ।

१० “पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जरमूषकैः । गतेऽतरे त्वहोरात्रं शकपाते तथोच्छ्रये” (१४७) ॥

शकपातः आश्वयुक्तशुक्लदादशी । उच्छ्रयः भद्रपदशुक्लदादशी । यत् पुनर्गौतमेनोक्तं (१४८)

“श्वनकुलमंडूकसर्पमार्जाराणां अयहमुपवासमनध्यायो विप्रवासश्च” इति तत्प्रथमाध्ययन-
विषयमिति विज्ञानेश्वरीये (पृ. ४२ पं. ११) । मनुः (४११०२-१०३) —

“कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांसुसमूहने । एतौ वर्षास्त्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥

१५ “विद्युत्सन्नितवर्षेषु महोल्कानां च संपूर्वे । आकालिकमनध्यायेतेषु मनुरब्रवीत्” ॥ विद्युदादिप्रादु-
र्भावकालादारभ्य नाडिकाषष्टिराकालः । तत्र भवमाकालिकम् । येयमुक्ता विद्युदादिरिति प्रवृत्तिः
सा वर्षासु संध्ययोश्चेदाकालिकानध्ययननिभित्तं भवेदन्यद्वा चेत् नेत्याह स एव (४११०४) —

“स्वतस्त्वभ्युद्दितान्विद्यान्यदाप्रादुक्तुष्टाग्निषु । तदा विद्यादनध्यायमनृतावभ्रदर्शने” ॥

प्रादुष्टुताग्निषु विहतेष्वग्निषु संध्ययोरिते यावत् । एतान्विद्युदादीनभ्युद्दितान्विद्यात्पश्येतदा आ-
२० कालिकमनध्यायं विद्यात् । अनृतौ वर्षतुर्वयतिरिक्ते चत्तौ अप्रसंपूर्वे आकालिकमनध्यायं विद्यात् ।

“निर्धार्ते भूमिचलने ज्योतिषां चोपतर्जने । एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि (१०५) ॥

उपसर्जने उपप्लवे । चलनादौ अपिशब्दादनृतावपि ।

“अंतःशवगते ग्रामे वृष्टलस्य च संनिधौ । अनध्यायो रुध्यमाने समवाये जनस्य च (१०८) ॥

“उद्दके मध्यरात्रे च विष्मूत्रे च विसर्जिते । उच्छिष्टे श्राद्धभंक्तौ च मनसापि न चिंतयेत (१०९) ॥

२५ “प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोहिष्टस्य केतनम् । अयहं न कीर्तयेद्वप्त्वा राज्ञो राहोश्च सूतके” (११०) ॥
एकोहिष्टस्य नवश्राद्धादौ केत्यते निमंडयतेऽनेनेति केतनं द्रव्यम् । राज्ञः सूतके पुत्रजन्मनि
राहुसूतके ग्रहणमुक्ते च । अयहं न कीर्तयोदिति । एतत् ग्रस्तास्तमयविषयम् । ‘रवीन्दोर्धेहणे
चैव नाधीयीत दिवानिशम्’ इति स्मरणात् ।

“शायानः प्रौढपादश्च वद्वा चैवावसविथकाम् । नाधीयीतामिषं जग्धवा सूतकान्वाद्यमेव च” ॥

३० (११२) ॥

पादस्योपरि पादो यस्य सः प्रौढपादः । वस्त्रादिना अवसविथका बध्वा नाधीयीत ।

“नीहारे वाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरपि । अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णिमास्यष्टकासु च (११३) ॥

“पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा । श्वस्वरोष्ट्रे च रुवतेतिपंक्तौ न पठेत द्विजः (११५) ॥

“नाधीयीत स्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजे तथा । वसित्त्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च” (११६) ॥^३

३५ इत्यादिकं प्रपञ्चयति स एव (४११७) —

“प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छाद्विकं भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि
द्विजोत्तमः” (११७) ॥

आलभ्य इत्तं पाणिना स्पृष्टा प्रतिगृह्य एव भोजनमित्याह पाण्यास्यो हीति ।

१ कस्त्रग-पाठः । २ क्षा-पंके च । ३ कस्त्रग- श्वसनान्ते श्वसनसम्पि । गोव्रजे-गोष्ठे
मैथुनं मिथनसंबंधि प्रतिगृह्य भुक्त्वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।

“न विवादे न कलहे न स्तेये न च संकरे । न भुक्तिमात्रे नाजीर्णे न वमित्त्वा न शुक्कके” (१२१)॥

वाग्युद्धं विवादः । अंगयुद्धं कलहः । शस्त्रयुद्धं संगरः । शुक्कके भुक्तस्यान्नस्य यातयामस्य गंधरसाविर्भवि ।

“आतिथीन्नाननुज्ञाप्य मारुते वाऽतिवायति । रुधिरे तु सुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षिते (१२२)॥

“सामध्वनौ क्रग्यजुषं नाधीयीत कदाचन । वेदस्याधीत्य चैवान्तमारण्यकमधीत्य च” (१२३)॥ ५
सामध्वनौ सामाधीत्य तत्क्षणमेव क्रग्यजुषां नाधीयीत । वेदास्यांतमुपनिषद्मारुणकेतुकं चाधीत्य क्रग्यजुषं नाधीयीत । सामध्वनावृग्यजुषामनध्यायेऽर्थवादमाह स्त एव (४।१२४)—

“ऋग्वेदो देवदेवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः । सामवेदः स्मृतः पितृयस्तस्मात्स्याशुचिर्धर्वनिः॥

“पशुमंडूकमार्जिरसर्पश्वनकुलादिषु । अंतरागमने विद्यादनन्द्यायमहर्निशम्” (१२६) ॥

“द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतःस्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिद्विजः” (१२७)॥ ९०
नित्यमापद्यपि । अनेन नान्येषामनध्यायनिमित्तानामापद्यनुज्ञा सूचिता । नारदः—

“अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु” ॥ इति ।
मन्वादयो मत्स्यपुराणेऽभिहिताः (अ. १७ श्लो. ६८)—

“आश्वयुक्तशुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ॥

“फाल्गुनस्याप्यमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी” १५

“श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पंचदशी सिता॥

“मन्वंतरादयश्चेते इत्स्याक्षयकारकाः” इति । युगादयोऽपि विष्णुपुराणेभिहिताः (३।१४।१२)—

“वैशाखमासस्य सिता तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ॥

“नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे” ॥ इति । शयनमाषाढशुक्लद्वादशी ।

बोधनं कार्तिकशुक्लद्वादशी । व्यासः—

२०

“श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येष्वं कोविदारकपित्ययोः” ॥

हारीतः

“महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु । तथाऽक्षयतृतीयायां शिष्या नाध्यापयेद्विजः ॥

“माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्जयेत् । अध्यापनं समभ्यज्जन्तस्नानकाले च वर्जयेत्” ॥

द्वादश्यां श्रवणद्वादश्यां । भरण्यां भाद्रपदभरण्याम् । तदाह वृद्धगार्ड्यः—

२५

“ऋक्षेषूद्वाहनक्षत्रे स्त्राध्याये परिवर्जयेत् । द्वादश्यां श्रवणं भाद्रे भरणी च महालये” ॥ इति ।

शातातपः “आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । द्वादश्यां संस्पृशेयुश्वेतत्रानध्ययनं विदुः” ॥ इति ।

गार्ड्यः—“मैत्रक्षत्वोङ्गशक्षेषु वर्षेऽनध्ययनं विदुः । अतिवर्षे त्रिरात्रं स्यादल्पवर्षे तु वासरम्” ।

मैत्रक्षमनुराधा । तस्मादारभ्य यृगशीष्टिषु । अतिवृष्टौ त्रिरात्रमल्पवृष्टौ वासरमित्यर्थः । जावालिः—

“नाधीयीत नरो नित्यमादावते च पक्षयोः । आदौ च हीयते वृत्थिरंते ब्रह्म प्रन्हीयते” ॥ इति । ३०

पक्षादिः प्रतिपत्पक्षांतः पंचदशी । तथा पुराणे हनुमद्वचनं

“सा स्वभावेन तन्वंगी त्वद्वियोगाच्च कर्षिता । प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता” ॥ इति ।

बोधायनः—“सायंप्रातः संध्ययोश्च नाधीयीत महानिशि ॥

“प्रातःसंध्या त्रिनाडी स्यात्सायंसंध्या तथाविधा महानिशा तु विज्ञेया चतस्रो घटिकास्तथा” ॥ इति ।

बृद्धगौतमः—

“यायाद्वजोऽते व्याघ्रो नैवाधीयीत हायनम् । शशोऽपि वा श्वपकोऽजः षण्मासानिति सूरयः”॥
गौतमः (१३५-१३; १४)—“नाधीयीत वायौ दिवापांसुहरे । कर्णश्राविणि नक्षम् ।
वाणभेरी मृद्गंगरथगर्तीर्तश्वदेषु श्वसृगालगर्दभसंहादे । रोहितेन्द्रधनुर्नीहारेषु । अभ्रदशने
१ चापत्तौ । मूर्वित उच्चारिते । निशासंध्योदकेषु । वर्षति च । संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छदिं-
श्राद्धमनुष्यज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् ” इति च । संकुलो राजाद्युपद्रवः । उपहितोऽग्निदाहः ।
छर्दिर्भुक्तोद्धारः । श्राद्धं पार्वणम् । मनुष्यज्ञः सीमंतादि । आपस्तंबः (१९।४)—‘निगमे-
ष्वध्ययनं वर्जयेत्’ इति । निगमाश्वत्वारः । स एव (१९।६-८)—

- “स्मशाने सर्वतः शम्याप्रासाद्यग्रमेणाध्यवसिते क्षेत्रेण वा नानध्यायो ज्ञायमाने तु
१० तस्मिन्नेत्र देशे नाधीयीत” इति । शम्या क्षिप्ता यावति देशे पतति ततोऽर्वाक्तिदेशे स्मशानसमीपे
नाध्येयम् । यदा स्मशानं ग्रामतया क्षेत्रतया वाऽध्यवसितं स्वीकृतं तदाऽध्येतव्यमेव । यदि अव-
सितमपि स्मशानं ज्ञायते अर्थं स प्रदेश इति तदा तावत्येव प्रदेशे नाधीयत न शम्याप्रासा-
दादित्यर्थः । स एव (१९।२०-२१)—“संधावनुस्तनिते रात्रिम् । स्वप्रपर्यंतं विद्युति” इति । सायं-
संध्याया भेषगर्जने रात्रिं सर्वा नाधीयीत । तत्र विद्युति सत्यां स्वप्रपर्यंतं प्रहरावशिष्टां रात्रिं
१५ नाधीयीतेत्यर्थः । प्रातःसंध्यायामाह स एव (१९।२२) । “उपव्युषं यावता वा कृष्णां
रोहिणीमिति शम्याप्रासाद्विजानीयादेतस्मिन्काले विद्योतमाने सप्रदोषमहरनध्यायः” इति ।
उपव्युषसि व्युद्यति सत्यां पेतुः सप्रदोषमहरनध्यायः । प्रदोषादूर्ध्वमध्ययनं यावता कालेन
शम्याप्रासाद्विजानीयादेतस्मिन्काले उपव्युषसि वेत्यन्वयः । स एव (१९।२३-२४)—
२० “दैन्येऽपररात्रे स्तनयित्वनोर्ध्वमर्धरात्रादित्यैके” वर्षतांविद्म् । इतरतीं स एवाह । (१२।१।२७,२९)
“विद्युत्स्तनयित्वृष्टिश्वापत्तौ यत्र संनिपतेयुस्त्यहमनध्यायः । एकेन द्वाभ्यां वैतेषां कालम्”
इति । यस्मिन्देशे यो वर्धकालस्ततोऽन्यस्तत्रापर्तुः । तत्र यदि विद्युदादयः समुदिताः स्युः
तदा व्यहमनध्यायः । एतेषां विद्युदादीनां मध्ये एकेन द्वाभ्यां वा संयोगे आकालमनध्यायः ।
परेवुरेतस्मात्कालादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारे—

- २५ “चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु तु । वेदांगन्यायमीमांसार्थमशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥
“उद्येऽस्तमये वाऽपि मुहूर्तत्रयगामि यत् । तद्विनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः” ॥ इति ।
“केचिद्दाहुः क्वचिदेशे यावत्तद्विननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो न तस्मिन्न दिनांतरे ॥
“अधिकायां त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां दिवा यदि । अमावास्या च दृश्येत तदानध्ययनं भवेत्” ॥
अत्र त्रयोदशीवृद्ध्यादिनद्वये स्वाध्यायदिनद्वयमापन्नाधिकेत्युच्यते । अत्र तस्यां त्रयोदश्यामन-
३० ध्ययनम् । यदि चतुर्दश्यां दिवा अमावास्या स्वल्पापि दृश्येतेत्यर्थः ।
“प्रणवव्याहृतीनां च गायत्र्याः शिरसस्तथा । नित्यनैमित्तिके काम्ये व्रते यज्ञे क्रतौतथा ॥
“प्रवृत्ते काम्यकार्यं च नानध्यायास्तथा स्मृताः । देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायाः सदा तथा” ॥
आपस्तंबोऽपि (११।२९) “विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते न कर्मयोगे मंत्राणाम्” ॥ इति । संग्रहे—
“अलं जपेदनध्याये पर्वण्यत्पतरं जपेत् । श्रीरुद्रं पवमानं च गृहीतनियमाहृते” ॥ इति ।
३५ मनुः । (२।१०५)

१ खण्ड-मश्वत्वणः । २ खण्ड- + तेन । ३ खण्ड-अम्बे ।

“वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि”॥
कूर्मपुराणे (अ. उ. १४ श्लो. ८२-८३)

“अनध्यायश्च नांगेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतान्विसर्जयेत्”॥ इति ।
कालादर्श—

“पूर्वं चोर्ध्वमनध्यायमहःसंक्रमणे निशि । दिवा पूर्वोत्तरा रात्रिरिति वेदविदो विदुः”॥ इति । ५

“स्वाध्यायस्य व्यनध्यायो मुहूर्तद्वितयादधि । स्यात्किंचिदपि न प्राहुरनध्यायं च संशये ॥

“यदा भवेदनध्यायतिथिरुत्तरभागिनी । तदा पूर्वतिथौ रात्रौ नाधीयितेति निश्चयः”॥
अनयोरर्थः । स्वाध्यायस्याह्नि अनध्यायो मुहूर्तद्वितयादधि । ऊर्ध्वं किंचिदपि स्यात्तदनध्यायं
प्राहुः । पूर्वोक्तनिमित्तसंदेहादनध्यायसंशये चानध्यायं प्राहुः । यदोत्तरभाविनी तिथिरनध्यायो
भवेत् तदा पूर्वतिथिरात्रौ नाधीयितेति निश्चय इति ॥ अत्र बोधायनः— १०

“यद्यनध्यायदिने अत्रापि स्वाध्यायदिने द्विमुहूर्तादुपरि दृश्येत निमित्तविशयनेनाध्यायं
प्राहुरिति विज्ञायते” इति । हारीतः—

“श्वोनध्यायेऽय शर्वर्या नाधीयात कदाचन । चातुर्मास्यद्वितीयासु वेदाध्यायं विसर्जयेत्”॥ इति ।

किं च आषाढकार्तिकफालगुनकृष्णद्वितीयाश्वातुर्मास्यद्वितीयाः । गौतमोऽपि (१६।३७-३८)—

“कार्तिकीफालगुन्याषाढपौर्णिमासीति तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रौ”॥ इति । उक्तपौर्णिमासीष्वारभ्य १५
त्रिरात्रं तथा तिस्रोऽष्टकाः तत्र सप्तम्यादयस्तास्वपि त्रिरात्रमनध्याय इत्यर्थः ।

प्रदोषानध्यायमाह वृद्धगार्यः—

“रात्रौ यामद्वयादर्वाक्सप्तमी स्यात्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥

“रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयो वेदाध्यायविगर्हितः ॥

“आद्यंतयोः कलामात्रं यदि पश्येत्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वशब्दविगर्हितः” २०

“त्रयोदशी यदा रात्रौ यामस्तत्र निशामुखे । प्रदोष इति विज्ञेयो ज्ञानार्थी मौनमाचरेत् ॥

“भोजनं मैथुनं यानमभ्यंगं हरिदर्शनम् । अन्यानि शुभकार्याणि प्रदोषे नैव कारयेत्”॥

वृद्धमनुः—

“त्रयोदश्यां च सप्तम्यां चतुर्थ्यामर्धरात्रतः । नार्वागध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तत्र धारणम्”॥ इति ।

स एव—

२५

“रात्रौ यामद्वयादर्वग्यदि पश्येत्रयोदशीम् । सा रात्रिः सर्वकर्मघ्नी शंकराराधनं विना”॥ इति ।

स्तकादि—

“त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तंगते ततः । मितसंध्यव्योदश्यां न स्मरेच्च मनोहितम् ॥

“अन्होऽष्टमां संप्रयुक्तं रात्र्यर्धं मौनमाचरेत् । प्रदोषे भानुश्चरे च चरराश्युदये तथा ॥

“स्वल्पदानाद्विष्टं विनश्यति न संशयः”॥ लिखितः

३०

“छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिः । छिद्रेभ्यः स्वति ब्रह्म ब्राह्मणेन यदर्जितम् ॥

“तत्काले तस्य रक्षांसि श्रियं ब्रह्म यशो बलम् । सर्वमादाय गच्छति वर्जयांति च तत्पलम्”॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“चतुर्थ्यां पूर्वरात्रौ तु नवनाडीप्रदर्शने । चातुर्मास्याद्वितीयासु वेदाध्यायं विवर्जयेत्”॥

आषाढकार्तिककृष्णतृतीयाश्वतुर्मास्यद्वितीयाः । गौतमोपि (१६।३७-३८)—“कार्तिकी- ३५

फाल्गुन्याषाढीपौर्णमासीस्तस्रोष्टकांस्त्रिरात्रम्” ॥ इति उक्तपौर्णमासीरात्रभ्य त्रिरात्रं तथा तिस्रोऽष्टकाः सप्तम्यादयः तास्वपि त्रिरात्रमनध्याय इत्यर्थः ।

“नाध्येयं पूर्वरात्रौ स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी । अर्धरात्रात्परस्ताच्चेन्नाध्येयं पूर्वरात्रकम्” ॥

स्मृत्यंतरम्—

५ “कृष्णपक्षे तृतीयायां फाल्गुनाषाढकातिके । शुक्लाश्वयुग्मितीयायां नैवाध्ययनमाचरेत् ॥
“अनध्यायेष्वध्ययने प्रजामःयुः त्रियं तथा । ब्रह्म वीर्यं च तेजश्च निकृंतति यमः स्वयम् ॥

“मंत्रवीर्यक्षयभयादिद्वे वज्रेण हंति च । ब्रह्मराक्षसता चांते नरकं च भवेद्ध्रुवम् ॥

“अत्र गाथां यमोद्वीता कीर्त्यांति पुराविदः ॥

“आयुरस्य निकृंतामि प्रजामस्याददेऽथ वा । य उच्छिष्ठः प्रवदति स्वाध्यायं वाऽधिगच्छति ॥

१० “यश्चानाध्यायकालेऽपि नोहादभ्यस्यति द्विजः तस्माद्युक्तोऽप्यनध्याये नार्थीयीत कदाच्चन्” इति
“अनध्यायेष्वधीयीत द्विजस्तैन्यं करोति यः” ॥ इति अनध्यायः ॥

अथ दानं निरूप्यते । तत्र दाने श्रुतिः—“दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रशङ्खसंति दानान्नाति दुष्करं तस्माद्वाने रमंत” इति । अन्यच्च—“दानं यज्ञानां वरुथं दक्षिणा लोके दातारः सर्वभूतान्यूपजीवांति दानेनारातीरणानुदंत दानेन द्विषंतो मित्रा भवंति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं १५ तस्माद्वानं परमं वदंति” इति च । मनुः (४२३१)—

“यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया । उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः” ॥

यज्ञवल्क्यः (आ. २०३)—

“दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रत्यापूर्वं तु शक्तिः ॥

“गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चिते । नापात्रे विदुषां किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥” इति ।

२० **देवलः—**

“भुवमजस्तकं काम्यं नैमित्तिकमिति कमात् । वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्णितो द्विजैः ॥

“प्रपारामतटाकादिसर्वकामफलध्रुवम् । तदाजस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्विने दिने ॥

“अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं यदिष्यते । इच्छासंज्ञं तु तदानं काम्यमित्यभिधीयते ॥

“कालापेक्षां क्रियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्रुतम् । त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवर्जितम्” ॥

२५ व्यासः (कूर्मपुराणे उ. २६.४-८)—“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं चेति कथयते ।

“अहन्यहनि यत्किंचित् दीयते ऽनुपकारिणे । अनुद्विश्य फलं तस्माद्वाहणाय तु नित्यकम् ॥

“यनु पापोपशांत्यर्थं दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तदुद्विष्टं दानं सद्विनुष्ठितम् ॥

“अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते । दानं तत्काम्यमास्यात्मृषिभिर्धर्माचिंतकैः ॥

“ईश्वरप्रीणनार्थं यद्विष्णवित्सु प्रदीयते । चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ।

(भगवद्गीतायां अ. १७ श्लो. २०-२२)

३० “दातव्यमिति यदानं दीयते ऽनुपकारिणे । देशो काले च पात्रे च तदानं सात्विकं स्मृतम् ॥

“यनु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्विश्य वा पुनः । दीयते च परिकृष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

“अदेशकाले यदानं अपात्रेभ्यश्च प्रदीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्त्वामसमुदाहृतम् ॥

“सात्विकानां फलं भुक्ते देवत्वे नात्र संशयः । अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत् ॥

“ तामसानां फलं भुक्ते तिर्यक्त्वे मानवः सदा ॥

“ एकस्मिन्नप्यतिक्रांते दिने दानविवर्जिते । दस्यवग्निमुषितेनैव युक्तमाक्रांदितं भृशम् ॥

“ यस्य वित्तं न धर्माय नोपभोगाय देहिनाम् । नापि कीर्त्ये न यशसे तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

“ तस्माद्वित्तं समासाय दैवाद्वा पौरुषात्तथा । दद्यात्सम्यग् द्विजातिभ्यः कीर्तनानि न कारयेत् ॥

“ सीदते द्विजमुख्याय योऽर्थिने न प्रयच्छति । सामर्थ्ये स तु दुर्बुद्धिर्नरकायोपपद्यते ॥ ५

“ अक्षरद्वयमध्यस्तं नास्तीति यत्पुरा । तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपास्थितम् ॥

“ दीयमानं तु यो मोहाद्वोविप्राग्निसुरेषु च । निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं भजेत् सः” ॥ इति ।

मनुः (४२३२-२३७)—

“ वैरिदस्तुमिमाप्नोति सुखमक्षययमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिषां दीपदश्वशुरुत्तमम् ॥

“ भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽप्याणि वेशमानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ ३०

“ वासोऽश्वंद्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनुदुइः श्रियं जुष्टां गोदो ब्रह्मस्य विष्टपम् ॥

“ यानशश्याप्रदो भार्यमैश्वर्यमध्यप्रदः । धान्यदः शाश्वतः सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टितम् ” ॥

ब्रह्म वेदः । सार्ष्टितां सायुज्यम् ।

“ सर्वेषां तु प्रदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यनगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥

“ येन येन तु भावेन यद्यदानं प्रयच्छति । तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ” ॥ १५

भावेन श्रद्धादिना । न केवलं दात्रा प्रतिगृहीतैर्वाचनीयः किंतु देयद्रव्यमपि ताभ्यामित्याह स एव (४२३८-२४०)—

“ योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति दद्यादर्चितमेव वा । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥

“ न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् । नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान् न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥

“ यज्ञोऽनुतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् । आयुर्विप्रापवादेन दानं तु परिकीर्तनात् ॥ २०

“ न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विने । न बकव्रतिके पापे नावेदविदि धर्मवित् (१९२) ॥

“ त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाऽप्यर्जितं धनम् । दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च (१९३) ॥

“ यथा पूर्वेनोपलेन निमज्जत्युद्देशे तरन् । तथा निमज्जतोधस्ताददृशौ दातृप्रतीच्छकौ ” (१९४) ॥

बैडालवृत्तिकबकवृत्तिकयोः स्वस्तपमाह स एव (मनुः ४१९५-१९६)—

“ धर्मध्वजी सदा लुभ्यश्वाग्निको लोकडांभिकः । बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वातिसंधकः ॥ २५

“ अधोदृष्टिनैकुतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्या विनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ” ॥

श्लोकद्वयस्यायमर्थः । धर्मध्वजी धर्मलिंगी । छाग्निको व्याजवृत्तिः । डाम्भिकः विशिष्टेषेण

स्वदोषतिरस्कारी । अतिसंधकः वंचकः । अधोदृष्टिः परानवेक्षी । नैकुतिकः गूढैरूपायैः परानर्थ-

कारी । शठः नृशंसः । स एव (४१९७)—

“ ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिंगिनः । ते पतंत्यंधतामिस्ते तेन पापेन कर्मणा (१९७) ॥ ३०

“ अलिंगी लिंगवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिंगिनां हरत्येनस्तिर्यग्योन्यां च जायते ” (२००) ॥

इति । यात्रावलक्ष्यः (आचारे २०४२०५)—

“ हेमशृंगी शफै रूप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता । सकांस्थपत्रा दातव्या क्षीरिणी शौः सदक्षिणा ॥

“ दाता स्वर्गमवाप्नोति वत्सरात्रोमसंमितान् । कपिठा चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥

१ क्ष-दोषान् । २ क्ष-पारदः । ३ क्ष-वाससोमिंद्रः । ४ क्ष-वाच्यन्य ।

“ सवत्सरो मतुल्यानि कुलान्युभयतो मुखी । दाता स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत् (२०६)॥

“ यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां च दृश्यते । तावद्वौः पृथिवी ज्ञेया यावद्भर्म न मुचति (२०७)॥

हेमशृंगाद्यसंभवेऽप्याह स एव—

“ यथाकथंचिद्वित्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा । अरोगामपरिकृष्टां दाता स्वर्गे महीयते (२०८)॥

५ “श्रांतसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् । पादशौचं द्विजोऽच्छिष्टमार्जनं गोप्रदा समम्”(२०९)॥

श्रांतसंवाहनं आसनादिदानेन श्रमापनोदना । रोगिपरिचर्या ओषधदानादिना । हरिहरादीनामर्चनं सुरार्चनम् । गोप्रदा समं गोदानसमम् । स एव (अ. २१०)—

“भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्विःप्रतिश्रयात् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्वा स्वर्गे महीयते” ॥

प्रतिश्रयः प्रवासिनामावासदानम् । नैवेशिकं कन्यादानम् । धुर्यं बलीवर्दः ।

१० “गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुरेपनम् । यानं वृक्षं प्रियं शश्यां दत्वाऽत्यंतसुखी भवेत् (२११)॥

“सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः । तद्वद्वत्समैवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्यवम्”॥ इति । (२१२)

अविच्यवं च्युतिरहितम् । परस्वत्वापादानमात्रं वेदादेवानं स्वत्वनिवृत्तेः कर्तुमशक्यत्वात् । धर्मदानमपि स्मर्यते

“देवतानां गुरुणां च मातापित्रोऽस्तथैव च । पुण्यं देयं प्रथत्नेन नापुण्यं चोदितं कच्चित्”॥ इति ।

५ अपुण्यदाने तदेव वर्येत दातुर्लोभादिना प्रवृत्तस्य प्रतिगृहीतुरपि ।

“ यः पापं स्ववैलं ध्यात्वा प्रतिगृह्णाति दुर्मतिः । गर्हिताचरणात्तस्य पापं तावत्समाश्रयेत् ॥

“ समद्विगुणसाहस्रमानंत्यं च प्रदातृषु ” ॥ इति स्मरणात् । शातातपः—

“तिलात् ददत्तिलस्नायी शुचिर्नित्यं तिलोदकी । होता दाता तिलानां च शतवर्षाणि जीवति”॥

संवर्त्तः—

० “ श्रोत्रियाय कुलीनायार्थिने च विशेषतः । यद्वानं दीयते भक्त्या तद्वेत्सुमहत्फलम् ॥

“ यद्विष्टतमं लोके यच्च स्यादैधिकं गृहे । तत्तद्वुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥

“ तांबूलं चैव यो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

“ दद्याच्च शिशिरेष्वग्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः । कायाग्निर्दीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपसौभाग्यमाप्नुयात् ॥

“ अलंकृत्य तु यः कन्यां भूवणाच्छादनादिभिः । दद्यात्स्वर्गमवाप्नोति पूजयन्नुत्सवादिषु ॥

५ “ कपिलाश्वतिलानागरथदासीगृहाण्यपि । कन्यासुवर्णरत्नानि महादानानि ते दश ॥

“ आधासशतलव्यस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेका हि वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥

“ यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनः । पुण्यकीर्तेन धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

“ स्थितार्द्धमविश्राममर्थिभ्यः किं न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

“ तैलमामलकं प्राज्ञः पादाभ्यं ददाति यः । प्रहृष्टः स नरो लोके सुखी चैव सदा भवेत् ॥

० “ अनड्डाहौ च यो दद्याद्युगसीरेण संयुतौ । अलंकृत्य यप्राशकिर्धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥

“ सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः । वर्षाणि वसाति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥

“ भूमिं सस्यवर्तीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे । गां दत्वा द्विःप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥

“ यावंति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः । नरस्तावंति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥

“ अग्रेपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूवैष्णवीं सूर्यसुताश्च गावः

१ “ लोकत्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ॥

१ क्ष-दत्वा । २ क्ष-प्रशंस्यं स्यात् तत्क । ३ क्ष-सर्वं । ४ खग-विपुलं । ५ क्ष-दधिकं
६ खग-ग्रासादधर्मपिग्रासं ।

“ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सर्वेषामेव भूतानां यतस्तज्जीवनं परम् ॥

“ मृत्तिकागोशकृद्भर्मानुपशीतं तथोत्तरम् । इत्वा गुणाद्यविप्राय कुले महति जायते ॥

“ मुख्वासं तु यो दद्याहंतधावनमेव च । पादशौचं तथा स्नानं शौचं च गुदलिंगयोः ॥

“ यः प्रयच्छति विप्राय शुचिबुद्धिः सदा भवेत् ॥

“ ब्रह्मचारियतिभ्यश्च वपनं यश्च कारयेत् । न स्वर्णमाणि कुर्वांगश्चक्षुष्मान् जायते नरः ।

५

“ देवागारे द्विजातीनां दीर्पं दत्त्वा चतुष्पथे । स विज्ञानेन संपन्नः चक्षुष्मांश्च भवेत्सदा ॥

“ यो येनैवार्थितो विप्रस्तदस्य प्रतिपादयेत् । तृणकाष्ठसमेऽप्यर्थे गोप्रदानसमं भवेत् ॥

मनुः—

“ त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । अतिदानं हि दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥

६०

“ विद्यानां च परा विद्या ब्रह्मविद्या समीहिता । अतस्तद्वातुरस्त्येव लाभः स्वर्गपर्वगयोः ॥

“ यो दद्यात् ज्ञानमज्ञानं कुर्याद्वा धर्मदेशनम् । स कृत्स्नां पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं न तद्वेत्”॥

सारसमुच्चये—

“ एकतः क्रतवः सर्वे समाप्तवरदक्षिणाः । एकतो भयभीतस्य प्राणिनः परिरक्षणः ॥

“ महतामपि यज्ञानां कालेन क्षीयते फलम् । भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते”॥

शांडिल्यः—

१५

“अयाचितानि देयानि सर्वदानानि यत्नतः । अन्नं विद्या च कन्या च अनर्थिभ्यो न दीयते ॥

“ आश्रुतस्याप्रदानेन इत्तस्य हरणेन च । जन्मप्रभूति यद्वत्तं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ।

“मा ददृस्वेति यो ब्रूयात् गव्यग्नौ ब्राह्मणेषु च । तिर्यग्योनिशतं प्राप्य चंडालेष्वभिजायते ॥

“द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः । अनप्रदाता दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवस्त्रदः”॥

देवलः—

२०

“स्वल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् । श्रद्धा भक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे हि ते ॥

“शौचं शुचिर्महाप्रीतिरर्थिनां दर्शने तथा । सत्कृतिश्चानसूया च दानश्रद्धेत्युदाहृता ।

“ दाता प्रतिगृहीता च श्रद्धादेयं च धर्मयुक् । देशकालौ च दानानामंगान्येतानि षड्बुद्धुः ।

“अपापरोगी धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः । अनिद्वः शिवकर्मा च षड्बुद्धिर्दाता प्रशस्यते ॥

“अन्नविद्यावैधूस्त्रीणां गोभूरुक्माश्वहस्तिनाम् । दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ॥

२५

“ विद्यादौच्छादनं वासः परिभोगौषधानि च । दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥

“ उपानतप्रेष्ययानानि छत्रपात्रासनानि च । दीपकाष्ठफलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥

“ इष्टं दत्तमधीतं च प्रणश्यत्यनुकीर्तनात् । श्लाघानुशोचनाभ्यां वा भूमतेजो विपद्यते ॥

“ तस्मादात्मकृतं पुण्यं न वृथा परिकीर्तयेत् ”॥ वृहस्पतिः—

“अतोर्युं सात्विकं दानमुदपूर्वं तु शान्तिकम् । आशिषा पौष्टिकं दद्यात्रिविधं दानलक्षणम्”॥ इति । ३०

आपस्तंबस्तु (२१८-९) “ सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि । यथाश्रुतिविहारे ” इति । विहारे यज्ञकर्मणि । अर्न्यदानानि सर्वाणि उदकपूर्वाण्येवेत्यर्थः । स एव (२१०११-२) ‘भिक्षणे निमित्तमाचार्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रो बुभूर्बाहृतश्च । नियमविलोपस्तत्र गुणानसमीक्ष्य यथाशक्तिदेयम्” इति । भिक्षणं याचनम् । तत्राचार्याद्यो निमित्तम् । बुभूर्बा भर्तुमिच्छा । अर्हतो विद्यादिमतोऽग्निहोत्रादौ नियमे योग्यस्यार्थस्याभावेन लोपस्तत्रैवभूते भिक्षणे याचकश्रुतवृत्तादीनगुणानसमीक्ष्य ३५

१ क्ष-संपन्नश्च । २ ख-ना । ३ क्ष-सिद्धा । ४ ख-वर । ५ ख-गौ । ६ क्ष-भिन्न ।

७ क्ष-यत् । ८ ख-यानि ।

- शक्त्यनुरूपमवश्यं देयमदाने प्रत्यवेयात् । आपस्तंब एव (२।१०।३) “इंद्रियप्रीत्यर्थस्य तु भिक्षणनिमित्तम् । न तदाद्रियेत्” इति । इंद्रियप्रीत्यर्थस्य स्वक्चंदनवनितादेस्तन्मूलस्य भिक्षणं नियमे । न निमित्तं दानं न भवति तस्मान्न तदाद्रियेत् । दानेषि न प्रत्यवायः । तत्र दृष्टान्तमाह “धर्मप्रजासंन्नायां प्रथमायां पत्न्यां द्वितीयाविवाहोऽपि न निमित्तम् । पुत्राभावे तु निमित्तं भवत्येव” ।
- ५ तथा भविष्योत्तरे—“सुवर्णयाचकानां च विद्यां चैवोर्ध्वरेतसाम् । कन्यां चैवानपत्यानां ददर्तां गतिरुच्चमाम्”॥ इति । गौतमः—(५।१९-२२) “गुर्वर्थनिवेशाष्विधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदि । भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु । प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ते न दद्यात् । कुञ्जहृष्टभीत्तार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यन्वतान्यपातकानि”॥ इति । निवेशो विवाहः । वृत्या हीनो वृत्तिक्षीणः । नित्यं यज्ञं करिष्यन् यक्ष्यमाणः ।
- १० अध्ययनेन संयोगो यस्य सः अध्ययनसंयोगः । अध्वनि वर्तमानः अध्वसंयोगः । वैश्वजितः विश्वजियागे सर्वस्वदानेन निर्द्रव्यः । यज्ञे दक्षिणाकाले सदस्येभ्यो यद्यानं ततोऽन्यत्र बहिर्वेदिद्रव्यस्य हिरण्यादेर्दानमावश्यकं अदाने प्रत्यवेयात् । इतरेषु उक्तव्यतिरिक्तेषु भिक्षमाणेषु कृतान्नं पकान्नं देवं प्रतिश्रवो दास्यामीति संवादः । तं कृत्वाऽपि अधर्मसंयुक्ते विषये न दद्यात् । हृष्टः हर्षवशेन कृत्याकृत्यविवेकशून्यः । लुब्धो लोभवशेन । कुञ्जः कोपवशेन । मत्तो मद्यादिना मद्द्रव्येणाप्रकृतिंगतः । उन्मत्तो भ्रातः । एतदादीनां वाक्यानि अयथार्थान्यपातकानि न पैपं न यंति । तेषां प्रतिश्रुत्यापि अदाने न दोष इत्यर्थः । बोधायनः (२३-६१)—“अन्ने शूतानि भूतानि ‘अन्नं प्राणम्’ इति श्रुतिः । तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः”॥ इति । व्यासः—
- “अर्थानामुदिते पात्रे अद्वया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
- १० “यस्तु दद्यान्मही भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥
- “भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किंचन । अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्”॥
- महाभारते आनुशासनिके (अ. १०।१६४)—
- “अन्नमेव प्रशंसांति देवाः सर्विगणाः पुरा । लोकतंत्रा हि यज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥
- “अन्नेन सदृशं दानं न भूतो न भविष्यति ॥
- २५ “कुटुंबं पीडित्यत्वाऽपि ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षवे चान्नमत्मनो भूतिमिच्छता ॥
- “वानीयदानं परमं दानानां मनुरब्रवीत् । तस्मात्कूपांश्च वापीश्च तटाकानि च स्थानयैत् ॥
- “निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् । स कुञ्जं विषमं दुर्गं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥
- “बलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा । घृतं दद्याद्विजातिभ्यः सततं शुचिरात्मवान्”॥
- उपमन्तुः—
- ३० “शिवलिंगं तु यो दद्यात् शिवभक्ताय तन्मनाः । स्वर्णस्त्वादिरूपं वा सोमं संपूज्य शक्तिः ॥
- “सर्वदानाधिकं पुण्यं संप्राप्य करणात्यये । गाणपत्यमवाप्तैव गणैः सह स मोदते ॥
- “श्लालग्रामशिलामूर्तिं विष्णुमाराध्य भक्तिः । विष्णुभक्ताय यो दद्याद्वाह्मणाय सदक्षिणाम् ॥
- “पंचाशत्कोटिविस्तीर्णभूमिदानेन यत्कलम् । तत्कलं समवाप्नोति देहांते वैष्णवं पदम् ॥
- “कुर्यात्प्रतिकृतिं देवं सुवर्णेन स्वशक्तिः । शेषपर्यंकशयनं श्रिया देव्या युतं तथा ॥
- ३५ “शंखचक्रगदायुक्तं वासुदेवं सुरेश्वरम् । दत्त्वा गुणाद्यविप्राय विष्णुलोके महीयते”॥

व्यासः

“ गोभूहिरण्यदानानि यमाश्च नियमास्तथा । गृहदानस्य वै लोके कलां नार्हति षोडशीम् ॥

“ यः कारयेन्मठं शैलं शिवायतनसंनिधो । स शैवं पद्मासाद्य कल्पायुतशतं वसेत् ॥

“ गां पंकाद्राह्णीं दास्याद्वृत्तिं लोपाद्विजं वधात् । मोचयन्मुच्यते पापादाजन्ममरणांतिकात् ॥

“ अनाथप्रेतसंस्कारं शून्यलिंगप्रपूजनम् । दीनांधृष्णेभ्यश्च दानं सर्वाघनाशनम् ” ॥ ५

योगीश्वरः—

“ स्वर्णयुक्तं ताप्रपात्रं गोधृतेन समन्वितम् । आत्मावलोकनं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

“ अनेन विधिना दानं यः कुर्यात्प्रयतो नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ” ॥

स्मृतिरत्ने कन्यादानमंत्रः

“ कन्यां लक्षणसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् । दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ” ॥ १०

पुस्तकदानम्—

“ सर्वविद्यास्पदं ज्ञानकारणं विमलाक्षरम् । पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ” ॥

शालग्रामदानम्—

“ शालग्रामाचलोद्भूतां शिलां पापप्रणाशिनीम् । सुवर्णकुसुमोपेतां गृहाण त्वं द्विजोन्म ” ॥

नारायणमूर्तिदानमंत्रः—

“ नारायण जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर । नाशथाशु महारोगान् दानेनानेन केशव ” ॥

उमामहेश्वरदानमंत्रः—

“ प्रसीदतु भवो नित्यं कृत्तिवासा महेश्वरः । पार्वत्या सहितो देवो जगदुत्पत्तिकारकः ॥

“ शिवशक्तचात्मकं यस्माज्जगदेतच्चराचरम् । असतस्तु समादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति ॥

“ धनस्वामिनमात्मानं स तारयति निश्चितम् । तस्माद्वानेन सर्वं मे करोतु भगवांश्चित्तवः ” ॥ २०

ब्रह्मांडपुराणे “ महिषीं वत्संसंयुक्तां सुशीलां च पर्यस्वनीमारक्तवस्त्रेण पुष्पेण अलंकृत्य प्रयत्नतः ॥

“ श्रोत्रियाय सुशांताय दत्त्वा मृत्युं जयेन्नरः । कालमृत्युस्वरूपा सा महिषी रक्तभूषणा ॥

“ पुच्छदेशे प्रदातव्या अतः शांतिं प्रयच्छ मे ” ॥ पाद्मे—

“ तिलपूर्णं ताप्रपात्रं सुवर्णेन समन्वितम् । तत्पात्रं ब्राह्मणे इत्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

“ देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलप्रद । तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे सुस्थिरोऽस्म्यहम् ” ॥ २५

“ गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च । ऋष्यं लवणमित्याहृदैश दानान्यनुक्रमात् ॥

“ गवामंगेषु तिष्ठति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्स्माच्छिवं भे स्यादतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥

“ सर्वसस्याश्रया भूमिर्वाहेण समुद्धृता । अनंतसस्यफलवत्यतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥

“ तिलाः पापहरा नित्यं विष्णोर्देहसमुद्भवाः । तिलदानादस्यां मे पापान् नाशय केशव ॥

“ हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसो । अनंतपुण्यफलद्रमतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥

“ कामधेनुसमुद्भूतसर्वकर्तुषु संस्थितम् । देवानामाज्यमाहारमतः० मे ॥

“ शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया लक्षणं परम् । देहालंकरणं वस्त्रमतः शांतिं प्रयच्छ मे ।

“ धन्यं करोषि दातारमिह लोके परत्र च । ग्राणिनां जीवनं धान्यमतः० मे ।

“ यथा रसानां प्रवरस्तथैवेक्ष्यरसः स्मृतः । मम चैव परां लक्ष्मीं इदस्व गुडं सर्वदा ।

“ पितृप्रीतिकरं नित्यं विष्णुशंकरयोरपि । शिवनेत्रोद्भवं सूर्यमतः० मे ।

“ रसानामग्रजं श्रेष्ठं लवणं बहुर्धनम् । ब्रह्मजा निर्मितं साक्षादृतः० मे ॥ इति दशदानमन्त्राः ।

“ सालग्रामशिलाच्के भुवनानि चतुर्दश । तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु केशवः ।

शिवलिंगदानमन्त्रः

५ “ कैलासवासी गोरीशो भगवान्भगवेन्नहा । चराचरात्मको लिंगरूपी दिशतु वांछितम् ” ॥

अन्नदानमन्त्रः

“ अत्र प्रजापतिर्विष्णुब्रह्मेद्वचिवभास्कराः । अग्निवायुथापश्च अतः शांतिं प्रयच्छ मे ” ॥

शक्तिरादानमन्त्रः

“ अमृतस्य कलोत्पन्ना इक्षुसारं च शर्करा । सूर्यप्रीतिकरा नित्यम० मे ” ॥

१० आज्यावेक्षणदानमन्त्रः

“ अलक्ष्मीपरिहारार्थं सर्वांगेषु व्यवस्थितम् । तत्सर्वं शमयाज्य त्वं श्रियं पुष्टिं च देहि मे ॥

चणकदानमन्त्रः

“ गोवर्द्धनगिरिद्वारे समवे हरिरक्षिता । चणकाः सर्वपापन्ना अतः० मे ॥

माषदानमन्त्रः

१५ “ यस्मान्मधुवने काले विष्णोर्देहसमुद्भवाः । पितृप्रीतिकरा माषम० मे ॥

मुद्राऽ

“ मुद्रा बीजानि वै यस्मात्प्रियाणि परमेष्ठिनः । तस्मादेषां प्रदानेन अ० मे ॥

अन्नदानमन्त्रांतरम्

“ अन्नेन जायते विश्वं प्राणिनां प्राणधारणम् । तंडुलं वैश्वदेवार्थपांकेनान्नं प्रयच्छ मे ” ॥

२० श्रीतांबूलदानमन्त्रः

“ पूर्णो ब्रह्मा हरिः पर्णं चूर्णं साक्षान्महेश्वरम् । एतेषां संप्रदानेन संतु मे भाग्यसंपदः ” ॥

शाकदाने

“ सर्वदेवप्रियकरं शाकतृप्तिकरं वृणाम् । ददाति सर्वभद्राणि मम संतु मनोरथाः ” ॥

जलदाऽ

२५ “ जीवनं सर्वभूतानां सर्वभूतं जलं यतः । सर्वदानोत्तमं पुण्यमतः० मे ॥

कंबलदान०

“ ऊर्णच्छादनसुश्लाघ्यं शीतवात्भयापहम् । यस्माद् दुःखनिवारं तु अतः० मे ॥

उपानद्वाऽ

“ उपानहां प्रदास्यामि कंटकादिनिवारको । सर्वस्थानेषु सुखदावतः० मे ॥

३० औषधदाऽ

“ प्राणिनां जीवनोपाय प्राणिनां शाश्वतं पदम् । तस्मादौषधदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ” ॥

कूष्मांडदानम्

“ कूष्मांडं घृतसंयुक्तं तिलमिश्रं तु यत्कलम् । पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं अतः० मे ॥

सूर्यदाऽ “ पद्मासनः पद्मकरो दिवाहुः पद्मप्रियः सप्ततुरंगवाहः ।

३५ “ दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी मयि प्रसादं विद्यथातु देवः ” ॥

आयसदा०

“ यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लांगलाद्यायुधादीनि तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे ” ॥

छागदानमंत्रः

“ यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामंगत्वेन व्यवस्थितः । यानं विभावसोर्नित्यमतः०मे ” ॥

तान्नदानमंत्रः

“ ताम्रं शुद्धिकरं सर्वदेवप्रियकरं शुभम् । सर्वरक्षाकरं नित्यम०मे ” ॥

कांस्यदा०

“ शुद्धं कांस्यमिहामुत्र पात्रयोग्यं मनोहरम् । निर्मितं पापशमनम०मे ” ॥

छत्रदा०

“ वर्षवातातपत्राणामातपत्रं यशस्करम् । अस्य प्रदानाद्भूतानि सुखं यच्छुतु मे सदा ” ॥ १०

व्यजनदा०

“ व्यजनं वायुदेवत्यं धर्मकाले सुखप्रदम् । तस्मादस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम ” ॥

फलदा०

“ फलं मनोरथफलं प्रददाति सदा नृणाम् । पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थम०मे ” ॥

दानस्य देशकालौ ॥

१५

याज्ञवल्क्यः (व्य० १७५)—

“ स्वं कुटुंबाविरोधेन देयं दारसुताद्वते । नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ” ॥

बृहस्पतिः—(अ. १५ श्लो. ३)

“ कुटुंबभक्तवसनाद्वेयं यदतिरिच्यते । अन्यथा दीयते यद्वि न तदानफलप्रदम् ” ॥

शंखलिखितौ

२०

“ आहारं मैथुनं निद्रां संध्याकालेषु वर्जयेत् । कर्म चाध्ययनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ” ॥

“ कुरुक्षेत्रे गयातीर्थे तथा वामकरण्डके । एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात् ॥

व्यासः—“अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥

“ प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च । दत्तं चाक्षयमाप्नोति नदीषु च नदेषु च ” ॥

संवर्त्तः—“अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । चंद्रसूर्यग्रहे चैव दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ २५

“ अमावास्या द्वादशी च संकांतिस्तु विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥

“ अत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च तर्पणम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् ” ॥ इति ।

“ पौर्णमासीषु सर्वासु मासक्षसाहितासु च । दत्तानामिह दानानां फलं दशगुणं भवेत् ॥

“ सहस्रगुणितं दानं भवेदत्तं युगादिषु । कर्मश्राद्धादिकं चैव तथा मन्वंतरादिषु ” ॥

याज्ञवल्क्यः—

३०

“ शतमिंदुक्षये दानं सहस्रं तु दिनक्षये । विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपातेष्वनंतकम् ” ॥ भरद्वाजः—

“ व्यतीपाते वैधृतौ यदत्तमक्षययकृद्भवेत् । द्वौ तिथ्यंतवेकवारे यस्मिंस्तत्स्याद्विनक्षयः ॥

“ तस्मिन्दानं जपो होमः स्नानं चैव फलप्रदम् ” ॥ सुमंतुः—

“ वानप्रस्थस्य पकान्नं तांबूलं ब्रह्मचारिणः । सन्न्यासिनः सुवर्णं च दाताऽपि नरकं ब्रजेत् ॥

“ बहूनां न प्रदातव्या गौर्वस्त्रं शयनं स्त्रियः । तादृग्भूतं त्रु तदानं दातारं नोपतिष्ठति ” ॥ ३५

यमः—

“ प्रतिश्रुताप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च । जन्मप्रभूति यत्पुण्यं तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥
“ आशाकरस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः । दत्तं च यः कीर्तयति स पापिष्ठतरः स्मृतः ॥
“ काले संकल्पिते दाने आ भासं न प्रदीयते । मासे मासे शतं वृद्धिर्यावत्संवत्सरं भवेत्”॥

५

नारदः—

“ ब्राह्मणाय यद्गुह्याण्डं तत्सद्यः संप्रदीयते । अहोरात्रमतिक्रम्य तदानं द्विगुणं भवेत् ॥
“ त्रिरात्रं घटगुणं दद्याद् दशरात्रं तु षोडश । मासे शतगुणं दद्याद्वत्सरं तु सहस्रकम् ॥
“ वत्सरात्परतो नास्ति दाता तु नरकं व्रजेत् । ब्राह्मणस्य तु यद्दत्तं तदभावे तु तद्वनम् ॥

“ सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बंधुषु । दद्यात्सजातिशिष्येभ्यस्तदभावेऽप्सु निक्षिपेत् ” ॥

१० आपस्तंबः (२।१५।१२) “देशतः कालतः शौचतः सम्यक्प्रतिगृहीत्वात्” इति दानानि प्रतिपादयति इति । वालिमकिः—

“ उत्पतन्नपि चाकाशं विशन्नपि रसातलम् । अटन्नपि महीं कृत्स्नां नादत्तमुपतिष्ठते ॥

“ दत्तं हि प्राप्यते स्वर्गे दत्तमेवोपभुज्यते । यत्किंचिद्वित्तमश्नाति नादत्तमुपतिष्ठते ” ॥

यत्तु ‘दानं कयो धर्मश्वापत्यस्य न विद्यते’ इत्यापस्तंबस्मरणम् (२।१३।१०) । “स्वकुटुंबा-
१५ विरोधेन देयं दारमुताहृत” इति यदपि याज्ञवल्क्यवचनं (व्य. १७५) तज्ज्येष्ठपुत्रविषयं
एकपुत्रविषयं च । द्वादशविधेषु पुत्रेषु दत्तक्रीतयोरपि मन्वादिभिः पठितस्वात्
“दत्तौरसेतर्गां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः” इति दत्तौरसव्यतिरिक्तानामेव पुत्राणां कलौ वर्ज्यत्व-
स्मरणाच्च । तथा च वसिष्ठः (अ. १५।३-६) “न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा ।
न चैकं पुत्रं । स हि संतानाय पूर्वेषां । न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा अनुजानाद्वर्तुः । पुत्रं
२० प्रतिगृहीयन्वन्वनाहूय राजनि चावेश निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हृत्वा अदूरबांधवं संनिकृष्टमेव
प्रतिगृहीयत्” ॥ इति । बहुच्चब्राह्मणेऽपि शुनःशेषाख्याने ज्येष्ठं पुत्रं न प्रयच्छेदित्यादि ॥
इति दानम् ।

अथ पात्रनिरूपणम् ॥ मनुः (१९९-१००)—

“ ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य चैव हि ॥

२५ “ सर्वं स्वं ब्राह्मणश्चेदं यत्किंचिज्जगतीगतम् । श्रैष्ठयेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽहर्ति” ॥

स्मृतिसारे—

“ सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशालिनः । तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मविज्ञमाः” ॥

स्मृत्यर्णवे—

“ अज्ञेभ्यो ग्रंथिनः श्रेष्ठा ग्रंथिभ्यो धारिणो वराः । धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्योऽध्यवसायिनः” ॥

३० यमः— “ विद्यायुक्तो धर्मशीलः प्रशांतः क्षांतो दांतः सत्यदादी कृतज्ञः ।

“ स्वाध्यायवान् धूतिमान् गोशरणयो दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः ॥

“ स्वाध्यायाद्यन्यो योनिमंतं प्रशांतं वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ॥

“ स्त्रीषु क्षांतं धार्मिकानां शरणं व्रतैः क्षांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥ ”

याज्ञवल्क्यः (अ. २००)—

३५ “ न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्विपात्रं प्रचक्षते ” ॥

शातातपः—

“यथाश्वा रथहीनाः स्यु रथश्चाइवैर्यथा विना । एवं तपो ह्यविद्यस्य विद्या वाऽप्यतपस्विनः ॥

“यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन मिश्रितम् । एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं न तद् ॥”

वसिष्ठः—

“किंचिद्देवमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् । पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे” ॥ ५

ब्रह्मवैवर्ते—

“ये पूर्वं पूजिता एव पुरस्तात्स्युर्नमद्विया । तां निराकृत्य चान्येषु कुर्वन्भक्तिं व्रजत्यधः” ॥

देवलः—“मातुश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम् । अनूचानस्तथा भ्रूणक्षषिकल्पक्षषिर्मुनिः ॥

“इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ । तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः” ॥

एतेषां लक्षणं स एवाह-

१०

“ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यथा भवेत् । अनुपेतः क्रियाहीनो मातृ इत्यभिदीयते ॥

“एकदेशमतिक्रम्य वेदस्याचारवान्नजुः । स ब्राह्मण इति स्वातो निभृतः सत्यवाग् वृणी ॥

एकदेशातिक्रमो वेदस्य किंचिन्नूनस्याव्ययनम् । निभृतः शांतः ।

“एकां शाखां सकल्पां वा षट्क्रमं गैरधीत्य वा । षट्क्रमनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित् ॥

“जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते । विद्यया चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ १५

“वेदवेदांगतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः । शेषं श्रोत्रियवत्प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः ॥

“अंतर्वर्तगुणोपेतयज्ञस्वाध्याययंत्रितः । भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जिरेद्रियः ॥

“लौकिकं वैदिकं चैव सर्वं ज्ञानमवाप्य च । आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः” ॥

लौकिकमर्थार्जिनादिकम् ॥

“ऊर्ध्वरेताः तपस्वर्यो नियताशी न संशयः । शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसंधो भवेद्विषः” ॥ २०

“निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः । ध्यानार्थो निष्क्रियो दांतस्तुल्यमृत्कांचनो मुनिः” ॥

यमः—“शीलं संवासतो ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः । प्रज्ञा संकथना ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते” ॥

बोधायनः—“वेदानां किंचिदधीत्य ब्राह्मण एकां शाखामधीत्य श्रोत्रिय अंगाध्याय्यनूचानः” ॥

कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः” ॥ इति ।

दक्षः—“समं द्विगुणसाहस्रमनंतं च यथाक्रमम् । दाने फलविशेषः स्याद्विंसायामेवमेव हि ॥ २५

^३“सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । प्रार्थीते शतसाहस्रमनंतं वेदपारगे” ॥

गौतमोऽपि (५।१८)—“समद्विगुणसाहस्रानंत्यानि फलान्यब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः” इति ।

“सांगं सकल्पं सरहस्यं च यो वेदमधीरते स वेदपारगः” इति हरदक्षः ।

“अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता ऋषिः शातातपोऽब्रवीत् । आशो राजभृतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रीयो ॥

“तृतीयो बहुयाज्यः स्याच्चतुर्थो ग्रामयाजकः । पंचमस्तु भृतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य च ॥ ३०

“अनादित्यां तु यं पूर्वा सादित्यां चैव पश्चिमामानोपासीत द्विजः संध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः” ॥ इति ।

संवर्त्तस्तु—

“उत्पन्निप्रलयो चैव भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स भवेद्वेदपारगः” ॥ इति ।

बृहस्पतिः “श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्ये द्विगुणं तथा । आत्मजे शतसाहस्रमनंतं त्वग्निहोत्रिणि” ॥

दध्यासः—“प्रथमं तु गुरोर्दानं दध्यात् श्रेष्ठमनुक्रमात् । ततोऽन्येषां च विप्राणां दध्यात्पात्रानुसारतः” ॥ ३५

१ वसिष्ठ धर्मसूत्रे अ. २६।१७-१८ । २ क्ष-व्रत । ३ मनुस्मृ-३।८५ । ४-क्ष तत्त्वेषा ।

७-स्म. म. क. ।

‘अथैकभविकं दानं कर्मयोगरतात्मना । शतजन्मद्रवं दानं गोषु ज्ञेयं महाफलम् ॥
“द्विगुणं च तदेकैकं तथा वै वर्णसंकरे । शूद्रे चतुर्गुणं प्रोक्तं विशि चाष्टगुणं भवेत् ॥
“क्षत्रिये षोडशशगुणं ब्रह्मबंधौ तदेव तु । द्वात्रिंशाद्वि कृतं दानं वेदाध्यथनतपरे ॥
“शतध्नं तद्विनिर्दिष्टं प्राधीते लक्षसंमितम् । अनंतं च तदेवोक्तं ब्राह्मणे वेदपारगे” ॥

अथापात्रनिरूपणं । शातातपः ।

५

“नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषौ । यच्च वाणिज्यके दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
“देवार्चनरतो विप्रो वित्तार्थी वत्सरत्रयम् । स वै देवलको नाम हव्यकन्येषु गर्हितः” ॥ इति ।

स्मृतिसंग्रहे—

“देवार्चनपरो यो हि परार्थं वित्तकांक्षया । चतुर्वेदधरो विप्रः स चंडालसमो भवेत् ॥
“कर्मदेवलकाः केचित्कल्पदेवलकाः परे । शुद्धदेवलकाः केचिविधा देवलकाः स्मृताः ॥ १०
“अर्थार्थी कालनिर्देशी यो देवं पूजयेत्सदा । कर्मदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥
“पांचरात्रविधानज्ञो दीक्षाविरहितोऽर्चकः । चतुर्वेदाधिकारोऽपि कल्पदेवलकः स्मृतः ॥
“आगमोक्तिविधानज्ञो रुद्रकाल्युपजीवकः । शुद्धदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥
“आर्षेयोक्तविधाने तु देवलत्वं न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिकेनैव पूजयेत्” इति ॥
यमः— “समर्धं धनमादाय महार्धं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम यश्च वृध्योपजीवति ॥ १५
“यस्तु निंदन्परगुणान्प्रशंसत्यात्मनो गुणान् । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

“पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् । असत्सु विनियुंजीत तस्मै देयं न किंचन ॥

“संचयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समं ततः । धर्मार्थं नोपयुद्धके च न तं तस्करमर्चयेत्” ॥

व्यासः— “परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम् । आरूढपतिते चैव अन्यथार्थधनैश्च यत् ॥ २०

“व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा । गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतम्भे ग्रामयाजके ॥

“वेदविक्रियके चैव यस्य चोपपतिर्गहे । न वार्यपि प्रयच्छेत्तु नास्तिके हैतुके तथा ॥

“न पाषंडेषु सर्वेषु नवेदविदि धर्मवित्” ॥ पराशरः—

“युक्तिछलेन सर्वत्र यः शास्त्रविहितेष्वपि । संशयं कुरुते सोऽयं हैतुको नास्तिकाधमः” ॥

प्रजापतिः

२५

“स्वधर्मस्य परित्यागी पाषंडीत्युच्यते बुधैः । तत्संग्रुत्तसमः स्यात् तावुभावपि पापिनौ ॥

“ये तु सामान्यभावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम् । ते वै पाषंडिनो ज्ञेया नरकाहा नराधमाः” ॥

नारदः— “षट्स्य पुत्रहीनस्य दंभाचाररतस्य च । नक्षत्रपाठकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम्” ॥

विष्णुधर्मोन्तरे— “परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम् । आरूढपतिते चैव त्वन्यथार्थधनैश्च यत् ।

“व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा । गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतम्भे ग्रामयाजके ॥ ३०

“वेदविक्रियके चैव यस्य चोपपतिर्गहे” ॥

वृद्धमनुः— “खीभिर्जितेषु यत् दत्तं व्यालग्राहे तथैव च । ब्रह्मबंधुषु यद्वत्तं यद्वत्तं वृष्टिपतौ ॥

“परिचारकेषु यद्वत्तं वृथादानानि षोडश” ॥ वृष्टिपतिलक्षणमाह दक्षः—

“पितृगृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृष्टिपति ज्ञेया तत्परिवृष्टिपतिः” ॥

देवलः—

“वंध्या च वृषली जेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली जेया कुमारी या रजस्वला” ॥ इति ।

व्यासः—

“पंगवंधविरा मूका व्याविनोऽपहताश्च ये । भर्तव्यास्ते तु सततं न तु देयः प्रतिग्रहः ॥

५ “यस्त्वसद्भ्यो ददातीह सद्ग्रह्यं धर्मनाशनम् । स पूर्वभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ॥

“यतीनां कांचनं दत्वा तांचूलं ब्रह्मचारिणः । चोरणामभयं दत्वा दाता तु नरकं ब्रजेत्” ॥

मनुः—

“अनर्हते यद्दाति न ददाति यद्दर्हते । अर्हानर्हपरिज्ञानात् धनाद्वर्मच्च हीयते” ॥

चमः—

१० “अवैतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीवनाम् । नैषां प्रतिग्रहो देयो न शिला तारयेच्छिलाम् ॥

“अपविद्वाभिहोत्रस्य गुरोर्विप्रियकारिणः । द्रविणं नैव दातव्यं सततं पापकर्मणः ॥

“न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषलाध्यापका द्विजाः । शूद्रस्याध्यापनाद्विप्रः पतत्यत्र न संशयः” ॥

वृषलस्वरूपमाह पराशरः—

“अग्निकार्यपरिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः । वेदं च येऽनधीयानास्ते सर्वे वृषलाः स्मृताः ॥

१५ “उपारुदंति दानानि गौ रथः कांचनं क्षितिः । अश्रोत्रियस्य विप्रस्य करं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥

“राजधानी यथा शून्या यथा कूपश्च निर्जलः । यथाहुतमनग्नौ तु तथा दत्तं द्विजब्रुवे” ॥

अपात्रे दातुर्देषमाह व्यासः—

“दुर्विप्रा गणिका वैश्या विट्चारणकारवः । सततं यं प्रशंसंति तं विद्यात्पुरुषाधमम् ॥

“ये च ज्येष्ठिष्ठकाश्चौरागः कुण्डगोलाश्च याचकाः । सौनिका यं प्रशंसंति तं विद्यात् पुरुषाधमम् ॥

२० “उत्कोचजीविनो भ्रष्टा वैश्यापतिविद्विषकाः । गायका यं प्रशंसंति तं विद्यात्पुरुषाधमम्” ॥ इति ।

आपस्तंवः— “अन्नदाने न कर्तव्यं पात्रवेक्षणमण्वपि । अन्नं सर्वत्र दातव्यं धर्मकामेण वै द्विजाः ॥

“दीनांधकुपणादिभ्यो वाग्विहीनेषु यत्था । विकलेषु तथाऽन्येषु जडे बधिरपंगुषु ॥

“गेवृत्तेषु च यद्दत्तं तत्स्याद्वहुफलं धनम् ॥

“विवाहमेखलावंधप्रतिष्ठादिषु कर्मसु । आपन्नेषु तु यद्दत्तमक्षय्यं तदुदाहृतम्” ॥ देवपित्र्यव्यति-

२५ रिक्तविषयम् । तत्र शुचिमन्मंत्रवतः सर्वकृत्येषु भौजयेम “कृतान्नमितरेषु” इति गौतमवचनम्

अथ द्रव्यास्त्वयदानांगमुच्यते— (५।२०) ॥

“यद्वदिष्टं विशिष्टं च न्यायग्रासं च यद्भवेत् । तत्तद्विषयते देयमित्येतदानलक्षणम् ॥

“तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुद्धं शवलमेव च । कृष्णं तु तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः ॥

“श्रुतश्चार्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्यथागतम् । धनं सप्तविधं शुद्धमुदयो यस्य तद्विधः ॥

३० कन्यागतमार्षविवाहे यद्गृहीतं गोमिथुनादि । उदयः फलं ददात्यैस्य शुद्धमित्यर्थः ॥

“कुसीदकृषिवाणिज्यशिल्पशुल्कानुवृत्तिः । कृतोपकारादासं च शबलं समुदाहृतम्” ॥

शुल्कमाकरणादिभ्यो द्रव्यागमः । अनुवृत्तिः सेवा ।

“पाइर्वक्यांतचौर्यार्थिप्रतिरूपकसाहसैः । व्याजेनोपार्जितं यत्तत्सर्वेषां कृष्णमुच्यते ॥

पार्श्वकोपार्जितमुत्कोचादिलब्धं तध्वपार्जितं परपीडालब्धं प्रतिरूपकर्मणि प्रतिरूपादैः प्रति-

३५ रूपकरणं साहसं स्वप्रमाणयथांगिकारेण पश्यतो हरत्वादिकम् । व्याजो डंभतपःप्रभृति ।

“शुक्लेन वर्तेन कृतं पुण्यं बहुफलं भवेत् । शबलं मध्यमफलं कृष्णं हीनफलं धनम् ॥

“शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याद्वयान्वितः । तीर्थं पात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समथृते ॥

“राक्षसेन च भावेन वित्तेन शवलेन च । यैद्वयाद्वानमार्थिभ्यो मानुषत्वे तद्धृते ॥

“तमोवृत्तस्य यो द्वयात्कृष्णवित्तेन मानवः । तिर्यक्त्वे तत्कलं प्रेत्य समश्वाति नराधिपः ॥

“स्वेकुटुंबाविरोधेन देयं दारस्तुताहते । नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यत्मे प्रतिश्रुतम् ॥ ५

“तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं तु धर्मार्थमनित्यं जीवनं यतः ॥”

वित्तं पंचधा विभज्य भागद्वयं धर्माय परिकल्पयेत् ।

“एकां गां दशगुर्द्वयाद्वयाद्वाइशं गोशाति । शतं सहस्रगुर्द्वयात्सर्वतुल्यफलाः स्मृताः ॥

“कुटुंबं पीडयित्वा तु ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षये चान्नं ब्राह्मणो भूतिमिच्छता ॥

“सौदायिकं क्रमायातं स्वयं प्राप्तं च यद्भवेत् । स्त्रिज्ञातिस्वाम्यनुज्ञाते इतं सिद्धिमवाप्नुयात्” ॥ १०

सौदायिकं विवाहलब्धं तद्वार्ययाऽनुज्ञातम् क्रमायातं ज्ञातिमिरनुज्ञातम् । भूत्येन सता युद्धे लब्धं स्वाम्यनुज्ञातम् ।

“यच्च वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तद्वनं क्रणसंयुक्तमिह लोके परत्र च ॥

“सप्तधा तान्नरो हन्याद्वर्तमानांश्च सप्त च । अतिक्रांतान्सप्त हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम् ॥

“संशृत्य यो न यच्छेत् याचित्वा यश्च नेच्छति । उभावन्नतकावेतौ वृषा पापमवाप्नुतः ॥ १५

“ब्राह्मणस्य तु यद्द्रव्यं सान्वयस्यैव नास्ति सः । सकुल्ये तस्य निनयेत्तद्भावेऽस्य वंधुषु ॥

“यदा तु न कुलस्य स्यान्न च संबंधिबांधवाः । द्वयात्सजातिशिष्येभ्यस्तद्भावेऽप्सु निक्षिपेत् ॥

“यज्ञोपकरणं द्रव्यं ब्राह्मणेषु महाफलम् । युद्धोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विजपुंगवाः ॥

“पुण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पोपयोगि च । यस्योपयोगि यद् द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत् ॥

“येन येन च भावेन यस्य वृत्तिरुदाहता । तत्र तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ॥ २०

“मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नानि तु कांक्षिणा । अक्षय्यं फलमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति” ॥

व्यासः—

“कृष्णाजिनं... चैततथा विद्यां कमङ्गलुम् । धीरः पुण्यमवाप्नोति दत्त्वैतान् ब्रह्मचारिणाम् ॥

“वस्त्रं शश्यासनं धान्यं भस्म वेश्म परिच्छदम् । गृहस्थाय तु यद्वितं श्रेयो बहुफलं सदा ॥

“यो द्वयाद्यतये भिक्षां पात्रं दत्तं तथैव च । कृत्स्नां यां पृथिवीं द्वयात्तेन तुल्यं न तत्कलम् ॥ २५

“बाले कीडनकान्दत्वा मृष्टमल्लं तथैव च । फलं मनोहरं चापि अग्निष्टोमफलं भवेत् ॥

“प्रार्थितं बालकानां च दातव्यं स्यात्प्रयत्नतः । बालानां प्रार्थितं दत्वा नाकलोके महीयते ॥

“बालकाः पूजनीयाः स्युर्घर्मकामेच्छुभिर्नैः । तेषां भोज्यप्रदानेन गोदानफलमाप्नुयात् ॥

“तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत् । गंधंगलतांबूलं रक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ॥

“स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्तृगेहेषु नान्यथा ।

३०

“द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । न स तत्कलमाप्नोति तथार्थस्य पुरागमात् ॥

“अपहृत्य परस्यार्थं दानं यस्तु प्रयच्छति । स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्कलम् ॥

“परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसत्कृतम् । यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तत्सर्वमवतिष्ठते” ॥

परिभुक्तं गृहीतोपयोगं वस्त्रादि । अपर्याप्तं स्वकार्याक्षमम् ॥

“सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दाराश्च तद्वनम् । अन्वाहितं तु निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति ।

‘आपत्स्वपि न देयानि नववस्त्रादि पंडितैः । यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चितीयते नरः’॥
सामान्यमनेकस्वामिकम् । याचितं संव्यवहारार्थमयाचितं त्वानीतम् । वस्त्रालंकारादिन्यासं गृह-
स्वामिनेऽदर्शयित्वा तत्परोक्षमेव च गृहस्वामिनेऽर्पणीयमिति । गृहजनहस्ते स्थापितं द्रव्यमाधिः
प्रसिद्धम् । दाराः कलंत्रं तद्वनं दारधनम् ।

५ “अध्यगन्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि आतृमावृपितृप्राप्तं स्त्रीधनं घट्टिधं स्मृतम्”(१।११४)॥
अध्यग्नि अग्निसाक्षिकं यत्त्वियै दत्तम् । अध्यावाहनिकं विवाहकालेऽपि दत्तम् । प्रीतिकर्मणि स्त्री-
पुंसंवंधेन भावितं चासादिभ्यः प्राप्तं वा । अन्वाहितं यदेकस्य हस्ते स्वामिनि देहीति निमित्तान्नि-
क्षेपः गृहस्वामिसमक्षं स्थापितं द्रव्यम् । “न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा न तु स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रति-
गृहीयाद्वा ” ॥

० “बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा हेता दातारं तारयन्ति हि ॥
“ एका ह्येकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथंचन । विवशां रोहिणीं रक्ष्यां विवत्सां शृंगभीषणीम् ॥
“ क्षीणक्षीणशरीरां गां दत्त्वा दोषमवाप्नुयात् ।

“न व्यंगां रोहिणीं वंध्यां न क्षत्रहतवत्सलाम् । न वामनां वेहद्वर्भा दद्याद्विप्राय गां नरः”॥
वेहद्वर्भा गर्भोपघातिनीम् ।

५ “न चोषरां न निर्दधां महीं दद्यात्कर्थंचन । न स्मशानपरीता च न च पापनिषेविताम् ” ॥
पापा हिंसा प्राणिनाम् ।

“न नकारादिकूलनिकटा भूमिर्देया कदाचन । न च दद्याद्विजश्रेष्ठो या चतुःसंधिसंस्थिता ॥
“ दुःखं ददाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुःखं स विद्वति । तस्मान्न कस्यचिद्दुःखं दातव्यं दुःखभीरुणा ॥
“ सुवर्णं रजतं ताङ्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति । न तत्फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्तते ” ॥
० परिवर्तते धर्मविपरीतं जनयतीत्यर्थः ।

“ न शूद्राय हविर्द्यात्सर्पिः क्षीरं तिलं मधु । न शूद्रः प्रतिगृहीयात्तेषामन्यं निवेदयेत् ” ॥
तेषामिति क्षीरादीनां क्रयार्थमन्यद्रव्यं निवेदयेत्यर्थः । ‘कृसरं पायसापूपदधिमधुकृष्णाजिनानि
शूद्रेभ्यो न दद्यात् ’ ।

“ यया क्रयाऽपि वा वृत्या निजकर्मत्ययन्सदा । पितरौ विभृयात्सम्यक् साध्वीं भार्या शिशूनपि ॥
५ “ मोहाद्वा वृत्तेहतोर्वा धर्मलोभाच्छठाच्च वा । पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥
“ अनाथौ पितरौ पुत्रं साध्वीं भार्या च वाऽत्मजाम् । शक्तस्य त्यजतो मोहाद्वातिरूर्ध्वा न विद्यते ॥
“ गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः । शूद्राणां प्रतिगृहीयान्न च भुक्ते स्वयं ततः ” ॥

अथ प्रतिग्रहो निरूप्यते । मनुः (१।१२)—

“ सिलोऽमप्याददीत विप्रो जीवन्यतस्ततः । प्रतिग्रहात्सिलं श्रेयस्ततो ह्युच्छः प्रशस्यते ॥
० “ सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च (१।१५) ॥
“ प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् । प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रणश्यति (४।१८६) ॥
प्रतिग्रहविधिज्ञो विद्यायुक्तश्च प्रतिग्रहसमर्थः । अयावदर्था पुनः पुनः प्रवृत्तिः प्रसंगः ।
स एव (१।१०३)

“ नाध्यापनावाजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणामनलार्कसमा हि ते ” ॥ इति ।
अगर्हितप्रतिग्राहदप्यप्रतिग्रहः श्रेयानित्याह याज्ञवल्क्यः (आ. २।३)—

१ वासिष्ठे अ. १५३-५ । २ क्ष-हेम । ३ क्ष-त ।

“प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् । ये लोका दानशीलानां स तानाम्नोति पुष्कलान्”॥ इति ।
व्यासः—

“द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः । अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथंचन॥

“प्रतिग्रहसुचिर्न स्याद्यात्रार्थं तु समाहरेत् । स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन्वाक्षणो यात्यधोगतिम् ॥

“अभ्युष्णात्सघृताद्ब्रादच्छिद्राच्चैव वाससः । अपरप्रेष्यभावाच्च भूय इच्छन् पतत्यधः” ॥ ५

नारदः—

“धनमूलाः कियाः सर्वा अतस्तस्यार्जनं मतम् । वर्धनं रक्षणं भोग इति तस्य विधिः क्रमात्” ॥

तत्परंस्त्रिविधं ज्ञेयमित्यादिपूर्वोक्तमवगंतव्यम् ॥ सप्तर्षिसंवादे—

“धर्मार्थः संचयो यस्य द्रव्याणां स प्रशस्यते । तपसंचय एवासौ विशिष्टो द्रव्यसंचयात् ॥

“यथा यथाऽनुगृह्णाति ब्राह्मणोऽसत्प्रतिग्रहम् । तथा तथाऽस्य संतोषात् ब्रह्मतेजोऽभिवर्धते ॥ १०

“आकिंचन्न्यं च राज्यं च तुलायां समतोलयत् । आकिंचनन्त्वमधिकं राज्यादपि जितात्मनः” ॥

“यो राज्ञः प्रतिगृह्यैव शोचितव्ये प्रहृष्यति । स वै संयाति मूढात्मा नरकानेकविंशतिम्”॥

स्मृत्यंतरे—

“तीर्थे पापं न कुर्वीत विशेषाच्च प्रतिग्रहम् । दुर्जनं पातकं तीर्थं दुर्जनाच्च प्रतिग्रहः” ॥

मनुः (४।८४)—

१५

“न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः । सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीविनाम् ॥

“अपि पापकृतो राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति साधवः । पृथिवीं नान्यदिच्छंति पावनं ह्येतदुक्तमम्”॥
अक्षत्रियजातस्य राज्ञः द्रव्यं न प्रतिगृह्णीयात् । सूना हिंसा । चक्रं तैलयंत्रं तद्वान् ध्वजवान्
सुराकारि । वेशः वेशकर्म । एषु तारतम्यमाह स एव (४।८५)—

“दशसूना समश्वकी दशचक्रिसमो ध्वजी । दशध्वजिसमा वेश्या दशवेश्या समो नृपः” ॥ २०

राजन्यप्रसूतेरपि लुब्धस्य प्रतिग्रहे दोषमाह स एव (४।८७, ९१)—

“यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः । स पर्यायेण यातीमान् नरकानेकविंशतिम् ॥

“एतद्विदित्वा विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । न राज्ञः प्रतिगृह्णति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः” ॥

याज्ञयल्क्यः (आ. १४१)— (४।९१)

“प्रतिग्रहे सूनि चक्री ध्वजिवेश्या नराधिपाः । अष्टादशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाक्रमम्” ॥ २५
स एव (आ. १३०)—

“राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदभिच्छेद्वनं क्षुधा । डम्भेतुकपाषणिडवकवृत्तीश्च वर्जयेत्” ॥

कात्यायनः—

“उपन्यस्तेन यद्विषयं विद्यया पणपूर्वकम् । शिष्यादात्मिज्यतः प्रश्नासंदिग्धप्रश्ननिर्णयात् ॥

“विज्ञानशंसनाद्वादाद्विषयं प्राध्ययनाच्च यत् । धनमेवंविधं सर्वं विजेयं धर्मसाधनम् ॥

३०

“अयाचितसिलोच्छेश्च शिष्यदत्तैः क्रमागतैः । जीवेत्कर्मविशुद्धेभ्यः प्रतिगृह्यापि वा धनम् ॥

“याचितेनापि वाऽर्तेन दैन्यं हित्वा शमस्थितः । स्तोकादानेन वा नित्यं प्रतिगेहमतंद्रितः ॥

“दधिक्षीरघृतादीनां लेवणस्य पशोस्तथा । विक्रयिभ्योऽपि नादद्यादश्वविक्रयिणस्तथा ॥

“कौसीदकात्तथा भोक्तुः श्राद्धस्य सततं तथा” ॥ कौसीदिको वार्धुषिकः ।

“न ग्रामयाजकेभ्यश्च नागम्यागाज्जिनस्तथा । वणिगम्यश्च तथा शूद्राद्विसृष्टाम्नेर्व चाहरेत्” ॥
मनुः (११।१६)—

“तथेव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्चता । अश्वस्तनविधानेनाहर्तव्यं हीनकर्मणः” ॥
अयहमुपोष्यान्यत्रालभे चतुर्थादिने तद्विनक्षात्रपर्याप्तं शूद्रतो गृह्णीयादित्यर्थः स एव
५ “गृह्णन्गोभूहिरण्यादि तथा नैव विचारयेत् । कृतान्नं तु गृहीतं तु बहुशः सुपरीक्षितात्” ॥
वृहस्पतिस्मृतौ—

“वृद्धो च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्” ॥
अपि कार्यशतमित्यपि पाठांतरम् । हारीतः—“विदितात्प्रतिगृह्णीयाद्वृहकर्मप्रसिद्धये” इति ।
अंगिराः—

१ “यत्तु राशीकृतं धान्यं खले क्षेत्रेऽथ वा भवेत् । शूद्रादपि गृहीतव्यमित्यांगिरसभाषणम्” इति ।
व्यासः—

“कुटुंवार्थे तु सच्छूद्राद् प्रतिग्राह्यमयाचितम् । क्रत्वर्थमात्मने चैव न हि याचेत् कर्हिचित्” ॥

“वृत्तिसंकोचमन्विच्छेष्टेहेत धनविस्तरे । धनलोभप्रवृत्तिस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते” ॥ इति ।
चस्तुविंशतिमते—

१५ “सीदिंश्चेत्प्रतिगृह्णीयाद्वाह्नणेभ्यस्ततो वृपात् । ततस्तु वैश्यशूद्रेभ्यः शंखस्य वचनं तथा” ॥

“आमं जांसं मधु धृतं धान्यं झीरं तथौषधम् । गुडतक्ररसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः” ॥
याज्ञवल्क्यः (आ. २१६)—

“देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभूत्यार्थमेव च । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् आत्मवृत्त्यर्थमेव च” ॥

अनापद्यधार्मिकराजप्रतिग्रहं निन्दति स एव याज्ञवल्क्यः (आ. १४०)—

२० “न गजः प्रतिगृह्णीयात् लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः” । इति । स्कान्दे—

“मरुदेशे निरुदके ब्रह्मरक्षस्त्वमागतः । राजप्रतिग्रहात्पुष्टिः पुनर्जन्म न विदति” ॥ इति ।
ब्रह्मांडपुराणे—

“अनापद्यपि धर्मेण याज्यतः शिष्यतस्तथा । गृह्णन्प्रतिग्रहे विप्रो न धर्मात्परिहीयते” ॥ इति ।
आपद्विषये मनुराह (१०।१०२)—

२५ “सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्वाह्नणस्त्वनयं गतः । पवित्रं दुष्यतीत्येतद्वर्मतो नोपपद्यते” ॥
अनयं गतः आपदं गतः ।

“जीवितात्ययमापद्वो योऽन्नमत्ति यतस्ततः । आकाशमिव पंकेन न स दोषेण लिप्यते (१०४)” ॥

“अजीर्णतः सुतं हंतुमुपासर्पद्वभुक्षितः । न चालिप्यत दोषेण क्षुत्रप्रतीकारमाचरन् (१०५)” ॥

“श्वर्णासमिच्छुञ्चात्तु धर्मधर्मविचक्षणः । प्राणानां रक्षणार्थाय वामदेवो न लिप्तवान् (१०६)” ॥

३० “भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो निर्जने वने । ब्रह्मीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तैक्षणो महातपाः (१०७)” ॥

“क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रश्च जाघनीमाचंडालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः” ॥ इति (१०८)

अनापद्यपि प्रतिग्राह्याण्याह मनुः (४२५०)—

“एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम्” ॥
अभयदक्षिणा अभयदानम् ॥

^१ क्षकखग--वृत्तेस्तीक्ष्णैर्महातपाः ।

“आहतामुद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रवेदिताम् । मेने प्रजापतिर्भोज्यामपि दुष्कृतकारिणः”॥ (२५१)
भिक्षामन्नम्

“न तस्य पितरोऽश्रांति दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामध्यवमन्यते” (२५२)॥

तस्य तदीयां तां भिक्षां अवमन्यते प्रत्याख्याति । अन्यदप्यभ्युदितं प्रतिग्राह्यमाह स एव—(४१२५३)

“शश्यां गृहान्कुशान्गंधानपः पुष्पं मणिं दधि । धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत्”॥ इति।

आपस्तंवः (११८१)—“मध्वामं मार्गं मांसं भूमिर्मूलफलानि रक्षा गव्यूतिर्निवेशनं युग्यघासश्वोग्रतः प्रतिग्राह्याणि” इति । आमं तंडुलादि । मार्गमांसं मृगमांसं । भूमिः शालेयादिक्षेत्रं । रक्षा अभयदानं । गव्यूतिर्गोमार्गः । निवेशनं गृहम् । युग्यो बलीवर्दस्तस्य घासो भक्षणं पलालादि । एतान्यनापदि उग्रोऽपि ग्राह्याणि । उग्रः वैश्याच्छूद्रायां जातः पापकर्मा वा । १० ततोऽपीत्यर्थः । स एव (११८७-८)—“नात्यंतमन्वस्येद्वृत्तिं प्राप्य विरमेत्” इति । अत्यंतं नावसीदिवथाकथंचिज्जीवेत् । यदा तु विहिता वृत्तिर्लभ्यते तदा निषिद्धाया वृत्तिर्विमोदित्यर्थः । विशेषवचनम्

“गुर्वर्थमतिथीनां वा भृत्यानां वा विशेषतः । शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयान्न तु भुक्ते स्वयं ततः ॥

“प्रतिग्राह्यं परिक्षेत पुरस्ताद्विं प्रतिग्रहे । अन्नस्य तु विशेषेण महान्नं न प्रतिग्रहः” १५

“दुष्कृतं निस्तु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत् प्रतिगृह्णीयाच्चौदोदकयवस्मूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशश्यासनावस्थयानपयोदधिधानाशकरीप्रियं गुस्तकमार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषाम् । पितृदेवगुरुभृत्यभरणोऽप्यन्यत् । वृत्तिश्चेन्नांतरेण शूद्रात्” इति । स्वकर्मसु वर्णाश्रमप्रयुक्तेषु ये प्रशस्तास्तेषामेव गृहे ब्राह्मणो भुंजीतैषामेव सकाशात्प्रतिगृह्णीयाच्च । एधोदकानि तु सर्वेषामप्रशस्तानामपि सकाशाद् ग्राह्याणि । २० शकरी मत्स्यविशेषः । पितृभरणं आद्वकरणम् । देवभरणमग्निहोत्रादि । गुरवः पित्रादयः । भृत्याः पुत्रदारादयः । तेषां भरणं भक्तादिदानम् । एतेषु निमित्तेष्वन्यदप्रणोद्यं सर्वं सर्वतः प्रतिग्राह्यमंतरेण जीवनं न निर्वर्तते तदा शूद्रादपि प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः । “शूद्रेभ्योऽपि समादद्याच्छुद्वेभ्य इति मे मतिः” इति आश्वलायनः—

“यया क्याऽपि वा वृत्त्या निजकर्मात्यजन् सदा । पितरौ विभृयात्सम्यक् साध्वीं भार्या शिशूनपि ॥ २५

“मोहाद्वा वृत्तिहेतोर्वा धर्मलोभाच्छठाच्च वा । पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूद्धर्वा न विद्यते ॥

“अनाथौ पितरौ वृद्धौ साध्वीं भार्या तथात्मजान् । शकस्य त्यजतो मोहात् गतिरूद्धर्वा न विद्यते ॥

“गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः । शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयात् न च भुङ्क्ते स्वयं ततः ॥

“शूद्रेभ्योऽपि समादद्यात् शुद्वेभ्य इति मे मतिः” । इति । याज्ञवल्क्यः (आ. २१५)—

“अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकारिणः । अन्यत्र कुलटाषंठपतितेभ्यस्तथा द्विषः” ॥ ३०

हारीतः—

“चिकित्सकस्य मृगयोर्वैश्यायाः कितवस्य च । षट्सूतकयोश्चैव उद्यतामपि वर्जयेत्” ॥

अत्र मनुः (४१२५४-२५५)—

“गुरुनभृत्यांश्वोज्जिहीर्ष्यन्नर्चिष्यन् देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु वृप्यात्स्वयं ततः ॥

“गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विष्टन्यृहीयात्साधुतः सदा” ॥
तैर्विना गुरुर्विना स्वयं न प्रतिगृहीयात् । द्रव्यनिरपेक्षेषु गुरुष्वित्यर्थः । हेमाद्रौ—

“असत्प्रतिग्रहः प्रोक्तः कालतो देशतस्था । स्वरूपतो जातितश्च कर्मतश्चेति पंचधा” ॥
कालो ग्रहणादिः । देशः कुरुक्षेत्रादिः । स्वरूपं मेषीकृष्णाजिनादिकम् । जातिः शूद्रादिः । कर्म
पतनीयवृत्तिः । तत्रैव—

“मेषीं च महिषीमाज्यं गामप्युभयतोमुखीम् । कारणं कालपुरुषं पुरुषं च तिलाचलम्॥

“अजाविकं तथाश्वं च मरणे चायमासिकम् । दुर्दानान्याहुरेतानि; प्रतिगृह्णति ये द्विजाः ॥

“न तेषां वदनं पश्येद्दृश्वा चक्षुर्निर्मीलयेत् ॥

“कृष्णाजिनं च महिषं मेषीं चोभयतोमुखीम् । दासीं च प्रतिगृह्णानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

१० “प्रेतान्नं प्रेतशश्यां च नग्नप्रच्छादनं भजन् । उत्कांतिं कालरूपं च न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

“बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति” ॥ आतुरं मुमूर्षुः ।

“सर्वालंकारवत्त्वाणि प्रतिगृह्य मृतस्य तु । नरकान्न निवृत्ते तं धानां तिलमयं तथा ॥

“कालं च महिषीमाज्यमेकोद्दिष्टमृतुन्नये । दाता प्रतिगृहीतारं पश्येच्चेत्पुण्यनाशनम्” इति ॥

“आविकं त्वंधिकं वस्त्रं तूलं तूलपटीं तथा । काञ्चनं शिविकां गाश्च भूमिं धान्यं धनं स्त्रियः ॥

१५ “दासीं दासं गृहं यानं रसद्रव्यं तथा पशून् । प्रतिगृह्य यतिश्वैतान्पतितो नात्र संशयः” ॥

जावालिः—

“यतिहस्तगतं द्रव्यं गृहीयाज्ञानतो यदि । अधः स नयते मूढः कुलानामेकविंशतिम्” ॥

याज्ञवल्क्यः (आचारे २०२)—

“विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च” ॥

२० मनुः (४१८७)—

“न द्रव्याणामविजाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादिवसीदन्नपि क्षुधा” ॥

यत्किंचित्प्रतिगृहीयात्सर्वमुक्तानस्त्वांगीरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृहीयादिति विधिः ॥

द्रव्यप्रतिग्रहविधिः ॥

विशेषतो हिरण्यादिकमविदुषा न प्रतिग्राह्यमित्याह स एव मनुः (४१८८-१८९)

२५ “हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासास्तिलान्धृतम् । अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दासवत् ॥

“हिरण्यमायुरक्षं च भूर्गैश्चाप्योषतस्तनुम् । अश्वश्वक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः” ॥
औषतः दहतः । दाहश्वात्र रोगः ॥

“अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहस्त्रिद्विजः । अंभस्यशम्पूर्वेनेव दात्रैव सह मज्जाति (१९०) ॥

“तस्मादविद्वान्विभियाद्यस्मात्कस्मात्प्रतिग्रहात् । अल्यकेनाप्यविद्वान् हि पंके गौरिव सीदति ॥

३० “वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं वृणानि च । वृणं च गोभ्यो गृह्णार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्” ॥
(८३४०) । तथैव चेति मुद्रितपाठः

“चणकवीहिंगोद्यमयवानां मुहूर्माषयोः । अनिषिद्धो ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकोध्वनिर्जितैः” ॥

आपस्तंबः (१२८३-५) “शम्योषा युग्यधासो न स्वामिनः प्रतिषेधयन्ति । अतिव्यवहारो
व्यृद्धो भवति सर्वत्रानुमतिपूर्वं इति हारीतः” । शम्योषाः कोशधान्यानि माषमुद्गादयः ॥

गौतमः (१२१२५)— “ गोगन्यर्थे तृणमेधान्वीरुद्दनस्पतनिं च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरवृत्तानाम् ” इति ।

मनुः (८१३४२)—

“ द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्विक्षूद्वे च मूलके । आदानः परक्षेत्रान्न हस्तच्छेदमर्हति ” ॥
द्विजेभ्योऽन्यो दण्ड्य एव ।

“ तृणं वा यदि वा काष्ठं मूलं वा यदि वा फलम् । अनापृष्टं तु गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति ” ॥
इति स्मृतेः । संवर्तदक्षौ—

“ यस्तु जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः । सर्वरत्नामिमां पृथ्वीं प्रतिगृह्णन्न लिप्यते ” ॥

व्यासः—

“ प्रतिगृह्य द्विजो नित्यं दुग्धा गौरिव गच्छति । पुनराप्यायते धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ १०

“ एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ” इति ॥ मनुः (१०१११)—

“ जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं नु त्यागेन तपसैव च ” ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरे—

“ ग्राहं प्राणप्रदानं तु चंडालात्पुल्कसादपि । जीवन्सर्वमवाप्नोति जीवन्कर्म करोति च ॥

“ शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ” ॥ इति प्रतिग्रहविधिः ॥ १५

अथ ब्राह्मणस्य वृत्त्यन्तराण्याह मनुः (४१२-६)—

“ क्रतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन च । सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥

“ क्रतमुच्छसिलं प्रोक्तममृतं स्यादयाचितम् । मृतं तु याचितं प्रोक्तं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥

“ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते । सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ” ॥

पूर्वपूर्ववृत्त्युपायालभे परः पर आस्थेयः । एवं वृत्त्युपायान्नियम्योपेयमपि नियम इति । २०

“ कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव च । द्व्यैहिको वाऽपि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ (७)

“ चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां ग्रहमेधिनाम् । ज्यायान्परः परो ज्ञेयो लोकजो धर्मवित्तमः ” ॥ (८)

कुसूलात् किंचिन्न्यूना धान्याधारी कुंभी । द्वयोरन्होरैहिकमिह भोग्यं वस्तु यस्य स द्व्यैहिकः ।

श्वो भोज्यं वस्तु श्वस्तनं तद्यस्य नास्ति स अश्वस्तनिकः । चतुर्णा कुसूलधान्यादीनां एव

तावदुपेयपरिमाणतश्चातुर्विद्यां ग्रहमेधिनामुक्तम् । उपायपरिमाणतोऽप्याह स एव (४१९)— २५

“ षट्कर्मको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसूत्रेण जीवति ” ॥

एषां मध्ये एकः षट्कर्मा भवति । षट्कर्मान्नियतैर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैस्त्रैवर्णिकनियतैः

प्रमृतसत्यानृतकुसीदैश्चार्थसंचये प्रवर्तत इत्यर्थः । त्रिभिर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैः द्वाभ्यां याजना-

ध्यापनाभ्यां ‘प्रतिग्रहः प्रत्यकरः’ (अ. ८-१०५) इति निंदितत्त्वात्प्रतिग्रहो विवर्जनीय इत्यर्थः ॥

ब्रह्मसूत्रेण अध्यापनेन विहितयाऽपि वृत्त्या हिंसारहितया तदशक्तौ हिंसाबाहुल्यरहितया वा ३०

जीवेदित्याह स एव (४१२-३)—

“ अद्रोहणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदे ॥

“ यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगहितैः । अक्षेषेन शरीरस्य कुर्वति धनसंचयम् ” ॥ इति ।

लौकिकवैदिककर्मणामवश्यकर्तव्यानां निवृत्तिर्यात्रा । स एव (४११-१२)—

“ न लोकवृत्तं वर्तेते वृत्तिहेतोः कथंचन । अजिम्हामशाठं शुद्धां जीवेद्राह्मणजीविकाम् ॥

“ संतोषं परमास्थाय सुखार्थीं संयतो भवेत् । संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आन्वरे १२८)—

“कुसूलकुम्भीधान्यो वा व्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा। जीवेद्राऽपि सिलोछेन श्रेयानेषां परः परः”॥इति।

५ एतच्चातिसंयतत्त्वं यायावरं प्रति उच्यते । न ब्राह्मणमात्राभिप्रायेण । तथा सति “त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्विजः” (या. व. आ. १२४) इत्यादिभिर्विरोधः स्यात् । तथा च द्विविध्यमुक्तं देवलेन “द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च । तयोर्यायावरः प्रवरो याजनाध्यापनप्रतिग्रहरिकथचयवर्जनात्षट्कर्माधिष्ठितः । प्रेष्यचतुष्पदग्रहग्रामधनादियुक्तो लोकानुवृत्तिः शालीनः” इति । व्यासः—

१० “द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः । अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम् ॥

“कुसीदं कृषिवागिज्यं प्रकुर्वतास्वयंकुतम् । आपत्कल्पः स्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते ॥

“असाधकस्तु यं प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः । शिलोङ्घे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ॥

“अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवापदि । अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षं तु याचितम्” ॥ इति ।

शांडिल्यः—

१५ “अयाचितोपपन्नेषु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे । अमृतं तद्विद्वेवास्तस्मात्तन्नैव निरुदित् ” ॥ इति ।

अथापदवृत्तिः ॥ तत्र मनुः (८।८१-८२)

“अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनंतरः ॥

“उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्गवेत् । कृषिगोरक्ष्यमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्”॥

व्यासः—

२० “क्षत्रवृत्तिं परामाहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः । तस्मात्क्षत्रेण वर्तेत वर्तनेनापदि द्विजः ॥

“तेन चैवाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिं कृषिं यजेत्”॥ इति । याज्ञवल्क्यः (प्रायश्चित्ते ३५)-

“क्षत्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाऽप्यापदि द्विजः । निस्तीर्यतामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि”॥

आपन्निस्तरणानंतरं स्वमार्गं वर्तेतेत्यर्थः । गौतमः (७।६-७)—“तदलाभे क्षत्रियवृत्तिस्तदलाभे वैश्यवृत्तिः” ॥ इति । मनुः (८।७९)—

२५ “शस्त्रात्मभृत्वं क्षत्रस्य वणिकृपशुकृषीर्विशः । आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः”॥

देवलः—

“यागाध्ययनदानात्मप्रजारक्षाभयादि च । दंडनीतिर्धनुर्वेदः क्षत्रियस्यानुवृत्तये ॥

“शौर्यं तेजो धृतिर्धातृर्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

“स्वाध्यायादीनि कर्माणि कुसीदं पशुपालनम्। कृषिक्रिया च वाणिज्यं वैश्यकर्मण्यमूनि च”॥ इति ।

३० “वरं स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्टितात् । परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः”॥ इति ।

इत्यादीनि मन्वादिवचनानि आपदि विगुणस्यापि स्वधर्मस्य याजनादेः संभवे वेदितव्यानि ।

असंभवे त्वापदि क्षत्रियादिवृत्तिः । इयं हि हिंसाप्राया कलौ वर्जनीया ।

“आततायिद्विजाग्न्याणं धर्मयुद्धेन हिंसनम् । आपदवृत्तिद्विजाग्न्याणामश्वस्तनिकता तथा”॥ इति ।

कलौ निषिद्धत्वात् । “क्षत्रवृत्त्या वैश्यवृत्तिः प्रशस्ता स्यात् कलौ युगे” इत्याश्वलायनः ।

आपस्तंवः (१२०।१०-११)—“ अविहिता ब्राह्मणस्य वाणिज्या आपदि व्यवहरेत् पण्यानामपण्यानि व्युदस्यन् ” इति । क्रयश्च विक्रयश्च वाणिज्या । अपण्यानि व्युदस्य-न्वर्जयन्पण्यानि व्यवहरेत् विक्रीणीयाद्वेत्यर्थः । कृत्स्नाया वैश्यवृत्तेरुपलक्षणमिदम् । अपण्यानि स्वयमाह (१२०।१२-१६; २१।१-४)—“ मनुष्यान् रसान् रागान्गंधानन्नं चर्म गवां वशां श्लेष्मोदके तोक्मविकिष्टे पिप्पलिमरीचे धान्यं मांसमायुधं सुकृताशां च । तिलतंडुलांस्त्वेव ५ धान्यस्य विशेषेण न विक्रीणायात् । अविहितश्चैतेषां मिथो विनिमयोऽन्नेन चान्नस्य मनुष्याणां च मनुष्यै रसानां च रसगंधानां च गंधैर्विद्यया च विद्यानामक्रीतपणैर्व्यवहरेत् । मुञ्जबल्वजैर्मूलफलै-स्तृणकाष्ठैरविकृतैर्नात्यंतमन्ववस्थेद्वृत्तिं प्राप्य विरमेत् ”॥ इति । मनुष्या दासादयः । रसा गुड-लवणादयः क्षीरादयो वा । रागाः कुसुंभादयः । गंधांश्चनादयः । गवां मध्ये वशा वंध्या । गौश्लेष्म-विश्लिष्टचर्मादिसंधानहेतुभूतं जतुप्रभृति तोक्मानि ईषदंकुरितानि व्रीह्यादीनि । किष्टवं सुराप्रकृतिकं १० द्रव्यम् । सुकृतं पुण्यं तस्य फलं सुकृताशाम् । धान्यानां मध्ये तिलतंडुलानेव विशेषतो न विक्रीणीयादन्येषां विकल्पः विनिमयः । परिवर्तनं येषां विक्रयः प्रतिषिद्धस्तेषां परस्परेण विनिमयोऽप्यविहितः प्रतिषिद्धस्तेष्वेव केषांचिद्भादीनां विद्यान्तानां विनिमयो भवत्येव । अक्रीतानि स्वयमुत्पादितानि अरण्यादाहतानि तैर्व्यवहरेत् । मुञ्जबल्वजास्तृणविशेषाः । तृणविकारो रज्वादिभावः । काष्ठानां विकारः । स्थूणादिभावः न पुनरत्यंतमवसीदेत्प्रतिषिद्धानामपि विक्रयवि-१५ निमयाभ्यां जीवेदित्यर्थः । अत्र मनुः (८।८६-८९)—

“ सर्वान्नसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह । अश्मनो लवणं चैव पश्वो ये च मानुषाः ॥

“ सर्वं च तांतवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ।

“आपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गंधांश्च सर्वशः । क्षीरं क्षारं दाधि धृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।

“आरण्यांश्च पशून्सर्वान् दंष्ट्रिणश्च वयांसि च । मध्यं नीलं च लाक्षांश्च सर्वाश्रैकशकान्पशून् ॥ २०

“त्रपुसीसे तथा लोहं रजतं चैव सर्वशः । बालांश्चर्म तथाऽस्थीनि वसास्नायूनि रोचनाम् ”॥ इति ।

यत्तु “काममुत्पाद्य कृष्णां तु स्वयमेव कृषीवलः । विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ”॥

(८।९०) इति मानववचनं तद्विनिमयाभिप्रायमिति व्याख्यातारः । स्वयमुत्पादिततिलविक्रये न दोष इत्यन्ये । वासिष्ठः (२।३७-३९) “ रसा रसैः समतो हीनतो वा तिलतंडुलपक्वान्नविहिता मनुष्याश्च परिवर्तनीयाः ” इति । मनुः (८।९२-९३)—

“सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । उद्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

“ इतरेषां त्वपण्यानां विक्रयादिह कामतः । ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं निगच्छति ॥

“ एका गौर्न प्रतिग्राह्या द्वितीया न कथंचन । सा चेद्विक्रयमापन्ना दहत्या सप्तमं कुलम् ॥

“ गवां विक्रयकारी तु गवि रोमाणि यानि तु । तावद्वर्षसहस्राणि पंकेष्वेवावसीदति ॥

“ दानाभ्यं जनहोमेभ्यो यदन्यत्कुरुते तिलैः । क्रिमिभूतश्च विष्टायां कर्मणा तेन पापकृत् ॥ ३०

“ क्रीताः प्रतिगृहीताश्च न विक्रेयास्तिलाः स्पृताः ” । बोधायनः (२।१५३)—

“ पितृन्वा एष विक्रीणीते यस्तिलान्विक्रीणीते । ब्राह्मणान्वा एष विक्रीणीते यस्तंडुलान्विक्रीणीते ” इति । पराशरः (२।८)—

“तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः समाः । विप्रस्यैवं विधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः॥” इति । विक्रेया विनिमेयाः । यावद्दिः प्रस्थैस्तिला दत्तास्तावद्दिरेव धान्यांतरमुतपादेयं नाधिकमित्यर्थः । तिलन्यायो रसेऽपि घृतादौ योजनीयः । गौतमोऽपि (७८-२३)— “तस्यापण्यं गंधरसः कृतान्नतिलशाणक्षौ माजिनानि । रक्तनिर्णिके वाससी । क्षीरं सविकारं मूलफलपुष्पैषधमधु-
५ प मांसवृणोदकापण्यानि । पश्चवश्च हिंसासंयोगे । पुरुषवशा कुमारीवेहतश्च नित्यम् । भूमि-
व्रीहियवाजाव्यश्ववृषभधेन्वन्दुहश्चैके । नियमस्तु । रसानां रसैः । पशुनां च । न कृतान्नलवणयोः ।
तिलानां च । समेन तु पकस्य संप्रत्यर्थे । सर्वथा तु वृत्तिरशक्तावशूद्रेण । तदप्येके प्राणसंशये” इति ।
तस्य वैश्यवृत्तेर्वात्मणस्यापण्यमविक्रेयं रक्तं लाक्षादिविकृतं निर्णिकं रजकादिधौतं ते
वाससी अपण्ये अपश्च विषादि पशवो गवादयः ते चाप्यपण्या हिंसासंयोगे सौनिकादौ
१० वेहक्षभः पुरुषादयोऽपि नित्यं हिंसासंयोगादन्यत्रापि रसानां रसैरेव विनियमः कर्तव्यस्त-
यथा तंडुलं दत्त्वा वृत्तं ग्राहमिति । लवणस्य कृतान्नस्य न केनचिदपि विनियमः कर्तव्यः ।
तिलानां च धान्यैर्विनाऽन्यैर्विनिमयो न कर्तव्यः । क्षुधितस्य संप्रति इदानीमेव बुभुक्षायां
समेनामेन पकस्य विनिमयः प्रस्थतडुलं दत्त्वा तावता पक ओदनो विनिमेयः । अशक्तः सर्वथा
प्रतिषिद्धानामपि विक्रयविनिमयाभ्यां जीवेन्न शूद्रकर्मणा तदपि प्राणसंशये एके मन्यन्ते ।
१५ शौद्रमपि कर्माच्छिष्टभक्षणादिकम् । इत्यर्थः तथा च व्यासः—

“धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः । तानि ग्रन्तां किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम्” ॥

शातातपः—

“सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥

“आममांसमुरासोमलाक्षालवणसर्पिषाम् । विक्रये चाप्यपण्यानां द्विजश्चांद्रायणं चरेत्” ॥ इति ॥

२० पराशरः (१३७)— “षट्कर्मनिरतो विग्रः कृषिकर्म च कारयेत्” । इति

“हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् । भूमिं भूमिशयांश्चैव हंति काष्ठैरयोमुखैः” ॥ इति
मनुवचनं (१०।८३-८४) स्वयंकृताभिप्रायम् । तथा च गौतमः ॥ १०।५ “कृषि-
वाणिज्ये चास्त्रयंकृते” इति मनुवृहस्पतिः स्वयंकर्तृकां तां कृषिमंगीचकार

“कृसीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वात स्वयं कृतम् । आपत्काले स्वयं कुर्यान्नैनसा युज्यते द्विजः” ॥
२५ इति । वाढं कारयितुमप्यशक्तस्य तत्कर्तृत्वमापत्काल इति विशेषितत्वात् युगांतरेषु
कारितत्वमापद्वर्मः । कलो कारयितुत्वं मुख्यवर्मः कर्तृत्वमापद्वर्मः प्राधान्येन कलियुगधर्मप्रति-
पादने प्रवृत्तेन पराशरेण (२।१-२)

“अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगं । संप्रवक्ष्यामि” इत्युपकर्म्य “कृषिकर्म च कारयेत्”
इति आचारत्वेनाभिधानात्कारयित्वच्च मुख्यं “आपत्काले स्वयं कुर्यात्” इति स्मृतेः कर्तृत्व-
१० मापद्वर्म इति माधवीये ।

“अत्यापदि स्वपित्रोस्तु पालनाय स्वयं यदि । यः करोति कृषिं सोऽपि हलायं न स्पृशेद्विजः” ॥

“शावं निर्वापि चेद्यश्च यश्च स्याद्वलकृद्विजः । घोरं तमसि मज्जांति ते विप्रा नामधारकाः” ॥

इत्याश्वलायनयाज्ञवल्क्यौ (प्रा. ३६-४०)

“ कलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधाम् । तिलैदनरसक्षारान् दधि क्षीरं वृतं जलम् ॥

“ शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधु लाक्षा च वर्हिषः । मृच्चर्मपुष्पकुतपकेशतकविषक्षितीः ॥

कुतपः कंबलश्चमरिः

“ कौशेयं तैललवणमांसैकशफसीसकान् । शाकाद्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥

“ वैश्यवृत्याऽपि जीवन्नो विक्रिणीत कदाचन । धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥ ५

“ लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये । यवो दधि च मद्यं च हीनवर्णकराणि तु ॥

“ कृषिः शिल्पं भूतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः । सेवानूपो भैक्षचर्यमापत्तौ जीवनानि तु” (४२) ॥

आपत्तौ जीवनानीतिविशेषणादनापदवस्थाया इयं सेवावृत्तिरनेन नाभ्यनुज्ञायते । यथा अनापदि वैश्यवृत्तिः स्वयंकृता कृषिविर्प्रक्षत्रिययोरम्यनुज्ञायते एवं शिल्पादीनि अभ्यनुज्ञायते । विद्या भूतकाध्यापकद्वारा । कुसीदं वृद्ध्यर्थं द्रव्यप्रयोगः । तत्स्वयं कृतमभ्यनुज्ञायते । शकटं धान्यादिवहन- १०

द्वारा । गिरिस्तद्गतमूलं धनादिद्वारेण जीवनहेतुः । अनूपं प्रचुरतृणवृक्षजलप्रायप्रदेशः । एतान्यापत्तौ जीवनानीत्यर्थः । कृषौ वर्जनीयान्योजयंश्च बलीवर्दानाह श्लोकद्वयेन पराशारः (२।४-५)

“ क्षुधितं तृषितं शांतं बलीर्वदं न योजयेत् । हीनांगं व्याधितं कूर्बं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥

“ स्थिरांगं नीरुजं दृतं सुनर्दं षट्वर्जितम् । वाहयेद्विवसस्यार्थं पश्चात्सनानं समाचरेत् ” ॥

स्नापयेदित्यर्थः । हारीतः—

१५

“ अष्टागवं धर्म्यहलं षड्वं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं वृशंसानां द्विगवं ब्रह्मघातिनाम् ॥

“ बालानां दमनं चैव वाहनं च न शस्यते । वृद्धानां दुर्बलानां च प्रजापतिवचो यथा ” ॥

प्राण्युपधातदोषापनयनाय यथाशक्ति जपादिकं विधत्ते पराशारः (२।६)-

“ जप्यं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् । एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्स्नातकान् भोजयेद्विजः ” ॥ इति ।

पुनः प्रतिकारं वकुं कृषौ पापाधिक्यं दर्शयति स एव (२।९)

२०

“ ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ।

“ संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् । अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली ” ॥ इति ।

स एव (२।१३) “ विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

“ यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः । स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघं तं विनिर्दिशेत् ”

चंद्रिकायां

२५

“ अदत्वा कर्षको गेहं^२ यस्तु धान्यं प्रवेशयेत् । तस्य तृष्णाभिभूतस्य कूरं पापं ब्रवीम्यहम् ॥

“ दिव्यं वर्षसहस्रं तु दुरात्मा कृषिकारकः । मरुदेशे भवेद् वृक्षः सपुष्पकलवर्जितः ॥

“ तस्यांते मानुषो भूत्वा कदाचित्कालपर्यये । दरिद्रो व्याधितो मूर्खः कुलहीनश्च जायते ॥

“ भूमिं भित्त्वौषधिं छित्वा कृमिकीटपिपीलिकाः । पुनंति खलयज्ञेन कर्षका नात्र संशयः ॥” इति ।

कर्षकस्यायं खलयज्ञो नित्यकाम्य इति वचनद्वयबलादवसीयते । अकरणे प्रत्यवायात्तस्य ३०

नित्यत्वाच्छेदनादिपापनिवर्तकत्वात्काम्यत्वम् । नारदः:

“ आपत्स्त्वपि हि कष्टासु ब्राह्मणस्य न वार्धुषम् । भ्रूणहत्यां च तुलया वार्धुष्यं समतोलयत् ।

“ अतिष्ठत् भ्रूणहा कोद्यां वार्धुषिः समकम्पत् ” ॥ इति अत्र मनुः—(८।१४१; १०।९५)

“अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते । जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः” ॥
अनयं आपदम् ।

याज्ञवल्क्यः (२।३७)—

“अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सवंधके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिश्वतुः पञ्चकमन्यथा” ॥

५ अन्यथा अवंधके । **पराशरः (२।७)—**

“स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितेः । निर्वपेत्पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षाश्च कारयेत्” ॥

बोधायनः (१।५।८५)—

“वेदः कृषिविनाशाय कृषिवेदविनाशिनी । शक्तिमानुभयं कुर्यादिशक्तश्च कृषिं त्यजेत्” ॥ इति ॥

“विप्राणां दासवृत्तिस्तु वर्ज्या यत्नेन सर्वदा” इत्याश्वलायनः ।

१० **अथ क्षत्रियधर्माः ॥ मनुः (१०।७७-७८)—**

“त्रयो धर्मां निर्वत्तेन ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति । अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः” ॥

“वैश्यं प्रति तथेवेते निवर्त्तरात्रिति स्थितिः” ॥ **याज्ञवल्क्यः (आचारे ११९)**

“प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् । कुसीदं कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतेः” इति ।

अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो विशेषवर्मानाह याज्ञवल्क्यः (आ. ३०९-३११)

१५ “महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः । विनीतः सत्वसंपन्नः कुलीनः सत्यवाकशुचिः” ॥

“अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानकुद्रो पुरुषस्तथा । धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्” ॥

“स्वरं ध्रगोत्तमन्विक्यां दण्डनीत्यां तथैव च । विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रयां चैव नराधिपः” ॥

“ब्राह्मणेषु क्षमी स्त्रिग्येष्वजिम्हः क्रोधनोऽरिपुः । स्याद्राजा भूत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥

(३३४)

२० “पुण्यात्पङ्गभागमाद्ज्ञे न्यायेन परिपालयन् । सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् (३३५)” ॥

“चाटतस्करुद्वृत्तमहासाहसिकादिभिः । पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैस्तु विशेषतः (३३६)” ॥

“साधून्संमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् । उत्कोच्चर्जीवने द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् (३३७)” ॥

प्रमाकर इति पाठांतरं । उत्कोचपरिधानाय द्रव्यग्रहणरूपकर्म ।

“सद्गानमानसत्कारान् श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ।

२५ “उपायाः साम दानं च भेदो दंडस्तथैव च । सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्धेयुर्दृढस्त्वगतिका गतिः (३४६)” ॥

“संधिं च विग्रहं यानमासनं संशयं तथा । द्वैधीभावं गुणनेतान्यथावत् परिकल्पयेत् (३४७)” ॥

संधिद्वयवस्थाकरणम् । विग्रहोऽपकारः । यानं परंप्रति यात्रा । आसनमुपेक्षा । संश्रयो बलवदा-
श्रयणम् । स्ववलस्य द्विधाकरणं द्वैधीभावः ॥

मनुः (१।३०१-३१९)

३० “कृतं त्रेता युगं चैव द्वापारं कलिंगेव च । राज्ञो विज्ञानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥

“कलिः प्रसुतो भवति सजाग्रहापरं युगम् । कर्मस्वभ्युदितस्त्रेता विचारस्तु कृतं युगम् ॥

“इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वर्णस्य च । चंद्रास्याग्नेः पृथिव्यां च तेजोवृत्तं नृपश्वरेत् ।

“वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेऽद्विप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिंद्रवतं चरन् ॥

“अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । तथा हरेत्करं राष्ट्रात्सम्यगर्कवतं हि तत् ॥

“ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेताद्वि मारुतम् ॥
 “ यथा यमः प्रियद्रेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा राजा नियन्तव्याः प्रजास्तद्वि यमव्रतम् ॥
 “ व्रह्णेन यथा पाशैर्बध्यते वारुण्णरः । तथा पापान् निगृहीयाद् व्रतमेतद्वि वारुणम् ॥
 “ परिपूर्णं यथा चंद्रं दृष्टा हृष्यन्ति मानवाः । तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चांद्रव्रतिको नृपः ॥
 “ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्थात्पापकर्मसु । दुष्टसामंतहिंसश्च तदाशेयं वर्तं स्मृतम् ॥ ५
 “ यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् । तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥
 “ एतेरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतंद्रितः । स्तेनान्नराजा निगृहीयात् स्वराष्ट्रे पर एव वा ॥
 “ परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान् न प्रकोपयेत् । ते ह्येनं कुपिता हन्त्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥
 “ यान्समाश्रित्य तिष्ठन्ति देवा लोकाश्च सर्वदा । ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः॥
 “ अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् । प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्देवतं महत् ॥ १०
 “ एवं यद्यप्यनिषेषु वर्तते सर्वकर्मसु । सर्वथा ब्राह्मणः पूज्यः परमं दैवतं हि सः ॥
 “ यदधीते यद्यजते यद्दाति यदर्चति । तस्य षड्भागभागाजा सम्यक् भवति रक्षणात् (८।३०६)॥
 “ अरक्षितारं राजानं चलिष्डभागहारिणम् । तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् (३०९) ” ॥
 बोधायनः (१५।१०२)—

“ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ” ॥ इति । १५
 तस्माद्राजा ब्राह्मणस्वं नादीत परमं ह्येतद्विं यद्ब्राह्मणस्वमिति । “ सर्वतोधुरं पुरोहितं
 वृणुयात्तस्य शासने वर्तते संग्रामे न निवर्तेत ” इति च (१।५।७—९) । गौतमः (१०।७—८)
 “ रक्षणं सर्वभूतानाम् । न्याययदंडत्वम् । विभूयाद्ब्राह्मणाऽच्छ्रोत्रियान् । निरुत्साहांश्च ब्राह्मणानकरां-
 श्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये । भये विशेषण । चर्या च रथधनुभ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च । न
 दोषो हिंसायामाहवे । अन्यत्र व्यश्वसारथ्येनायुधकृतांजलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षा- २०
 रुठट्टतगोब्राह्मणवादिभ्यः” इति । सर्वरक्षणं शास्त्राविरुद्धश्च दंडश्च राजो धर्मः । अधीतवेदान्ब्राह्मणा-
 नन्नादिदानेन विभूयाजीवनार्थमुन्साहं कर्त्तमसमर्थन् ब्राह्मणानपि विभूयात् । ये पूर्वदत्ता अकरा
 अग्रहारा ब्राह्मणादिभ्यः तांश्च यथापूर्वं विभूयादुपकुर्वाणानर्धायानान् ब्रह्मचारिण्यश्च विभूयातायोग
 उपायः । जये पराभिभवनिमित्ते भये सति विशेषण योगः कार्यः । युद्धे अवस्थायामपलायनं च ।
 चर्या चरणं रथहस्त्यादिकमारुद्धो धनुर्वाणादिहस्तश्चरेत् । युद्धे शत्रूणां हिंसायां न दोषः । व्यश्वेति २५
 विशब्दस्त्रिभिः संबध्यते व्यश्वो विसारथिव्यायुध इति । स्थलमुन्नतप्रदेशः । दृतो वार्ताहरः । गौरस्मि
 ब्राह्मणोऽस्मीति ये वदन्ति ते गोब्राह्मणवादिनः । एतेभ्योऽन्यत्र हिंसायां न दोषः । एतेषु दोष
 इत्यर्थः । स एव— (१०।४।३—४४) “ निध्यधिगमो राजधनम् । न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य राजा
 सर्वस्येष्ट ब्राह्मणवर्जम् ” इति च । व्यासः (१।१।१)—

“ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्नेन सदा नापहरेत्ततः ” ॥ इति । ३०
 आपस्तंबः (२।२।५।१५; २।६।१—४)—“ क्षेमकृद्राजा यस्य विषये ग्रामेऽरण्ये वा तस्करमयं
 न विद्यते । भूत्यानामनुपरोधेन क्षेत्रं वित्तं च ददत् ब्राह्मणेभ्यो यथार्हमनंतांलोकानभिजयति ।
 ब्राह्मणस्वान्यपजिगिषिमाणो राजा यो हन्त्यते तमाहुरात्मयूपो यज्ञोऽनन्तदक्षिण इति ” । आहुर्धर्मज्ञाः ।
 “ एतेन राजा ब्राह्मणद्रव्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽन्येऽपि शूरा व्याख्याताः ।
 प्रयोजने युध्यमानास्तनुत्यजो ग्रामेषु नगरेषु चेति ” । ब्राह्मणस्वानि चोरादिभिरप्हृतानि अप- ३५

जिर्गीषमाणो व्राह्मणेभ्यो दानाय तानपजित्य ग्रहीतुमित्तन्योऽपि राजा युद्धे चोरैः हन्यते तमात्म-
यूपो यज्ञोऽनंतदक्षिण इत्याहुर्धर्मज्ञाः । एतेन राजा व्राह्मणद्रव्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽ-
न्येऽपि शूरा व्यास्याता आत्मयुपा अनंतदक्षिणा यज्ञा इति । मनुः (७।३४) —

“म्रियमाणोऽप्यादर्दीत न राजा श्रोत्रियात्करम् । न च शुद्धाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥

“मोहाद्राजा स्वराहुं यः कर्णयत्यनवेक्ष्या । सोऽचिराद्दृश्यते राज्याज्जीविताच्च सर्वाध्वः”॥

इति (७।११२) । पराशरः (१।५३।१।५७, ५९) —

“अव्रता ह्यनवीयाना यत्र भेष्यच्चग द्विजाः । तं ग्राहं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

“क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन्त्वस्त्रपाणिः प्रदंडवान् । निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेन पालयेत् ॥

“पुष्पं पुष्पं विचिन्नुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् । मालाकार इवाऽर्जुमेन यथांगारकारकः (३।३७)॥

१० “द्वाविमो पुरुषो लोके सूर्यमंडलभेदिनोः । परिवाङ् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः (३८) ॥

“यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेदितः । अक्षयान् लभते लोकान्यदि क्लीबं न भाषते (३८)॥

“यस्तु भेष्यशु सन्येषु विद्रवत्सु समततः । परित्राता यदा गच्छेत्स तु क्रतुफलं लभेत् (४०) ॥

“यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शशुद्धर्यस्त्रिभिः । देवकन्यास्तु तं वीरं हराति रमयन्ति च (४१) ॥

“देवांगनासहस्राणि शूरमायोध्यनं हतम् । त्वरमाणाः प्रधावान्ति मम भर्ता ममेति च (४२) ॥

५ “यं यज्ञसंघेस्तपसा च विप्राः स्वर्गेभिर्णो दाऽत्र यथेव यांति ।

“तथेव यान्त्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यंजति (४४) ॥

“ललाटदेशो रुधिरं स्वेद्यवस्याहवे तुं प्रविशेच्च वक्त्रम् ।

“तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टव् ” (४३) ॥ विष्णुपुराणे —

“हृष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमतान् लोकान्वर्णसंस्थाकरो वृपः”॥ इति।

११ इति क्षत्रियधर्मः । अथ वैश्यधर्मः । मनुः (१।९०) —

“पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवे च । वणिकपथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ” ॥

वणिकपथं वाणिज्यार्थं स्थलछलजलयात्रा । कुसीदं वार्दुष्यम् । अकल्पयदित्यनुवर्तते । हारीतः—

“गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्यादेश्यो यथाविधिदानं दयं यथाशक्त्या व्राह्मणानां च भोजनम्”॥ इति।
पराशरः (१।३०) —

“लोभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् । कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहता ”॥

मनुः (१।३०) ।

“वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दागपरिग्रहम् । वार्तायां नित्ययुक्तः स्वात्पशूनां चेष्य रक्षणो (३२६)॥

“मणिमृक्ताप्रवालानां लोहानां तांतवस्य च । गंधानां च रसानां च विद्यादर्थवलादलम् (३२९) ॥

“वीजानमुत्तिविच्च स्यात्कर्त्रवीजवृणन्य च । बानयोगांश्च जानेत्याजुलायोगांश्च सर्वतः (३३०) ॥

“सागसारं च खांडानां दशानां च गुणगुणम् । लाभालाभं च घण्डाना पशूनां च विर्वधनम् (३३१) ॥

“भृत्यानां च भृतिं विद्याद्वापाश्च विविधा वृणाम् । द्रव्याणां स्वानयंत्रं च क्रयविक्रयमेव च (३३२) ॥

“धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिषेवत्वन्मुक्तमम् । द्रव्याच्च सर्वभृतानां दानमेव प्रवत्ततः (३३३) ”॥ इति।

१२ इति वैश्यधर्मः । अथ शूद्रधर्मः ॥ पराशरः ॥ (१।३१) ॥

“शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते । अन्यथा कुरुते किंचित्तद्वेत्तस्य निष्फलम् ”॥

द्विजशुश्रूषया जीवनासंभवे स एवाह (१।३२) —

“लवणं मधु तेलं च दृष्टि तकं घृतं पयः । न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम्”॥ इति ।
सर्वेषु लवणादिषु विक्रयं कुर्यात् । आपद्यपि वज्यनाह (१३३-३४)—

“विक्रीणन् मद्यसांनानि ह्यभक्षस्य च भक्षणम् । कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥

“कपिलाक्षीरपानेन व्राह्मणीगमनेन च । वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्वांडालतां व्रजेत् ॥

“विकर्म कुरुते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः भवन्त्यल्पायुषास्ते वै निरर्थं यात्यसंशयः (२।१६)”॥ इति । ५
मनुः (१३३४।३३५)—

“शुश्रूपैव तु शूद्रस्य धर्मो निश्रेयसः परम् ॥

“शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषृष्टुर्वर्गनहंकृतः । व्राह्मणाद्यश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ”॥

“अशकुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् । पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुकर्मभिः (१०९९)॥

“यैः कर्मभिः सुचरितैः शुश्रूष्यंते द्विजातयः । तानि कारुकर्माणि शिल्पानि विविधानि च (१००)॥ १०

“शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेदिति । धनेन वाऽप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिर्जीविषेत् (१२१)॥

“स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः । जातव्राह्मणशब्दस्य साँ ह्यस्य कृतकृत्यता (१२२)॥

“विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यद्योऽन्यत्र कुरुते तद्वत्यस्य निष्फलम् (१२३)॥

“न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति नाधर्मात्प्रतिषेधनम् (१२४)॥

“धर्मेष्वस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः । मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च (१२५)॥ १५

“यथा यथा हि सद्वत्तमातिष्ठत्यनैसूयकः । तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिंदितः (१२८)॥

“शक्तनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः । शूद्रो हि धनमासाद्य व्राह्मणानेव वाधते (१२९)॥

“उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च । पुलाकाश्वैव धान्यानां जीर्णश्वैव परिछिदाः” (१२५)॥ इति

उच्छिष्टं भोजनपात्रे भुक्तशिष्टभेतद्वासविषयम् । नाव्राह्मणायोच्छिष्टं प्रयच्छेदित्येतत्तु अदासविषयम् ।

गृहस्थशूद्रविषयमित्यन्ये । तथा च द्यावः—

२०

“उच्छिष्टमन्नं दातव्यं शूद्रायै गृहमेधिने । गृहस्थाय तु दातव्यमनुच्छिष्टं दिने दिने ”॥ इति ।

देवलः—

“शौद्रोऽयं धर्मां द्विजातिशुश्रूषा पापवर्ज्यं कलत्रादिपोषणं कर्षणं पशुपालनं भारोद्वहन-
पण्यव्यवहारश्चित्रकर्म नृत्यगीतवीणामृदंगवादनानि ”॥ इति । याज्ञवल्क्यः (आ. १२०।१२१)—

“शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन् वणिगमवेत् । शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेह्विजातिहितमाचरन् ॥ २५

“भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियारतः । नमस्कारेण मंत्रेण पंचयज्ञान्न हापयेत् ”॥

गौतमः (१०५१-५८; ६०-६७)—

“शूद्रश्वतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालन-
मेवैकं श्राद्धकर्त्त्वं भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः । परिचर्या चोत्तरेषां तेभ्यो वृत्तिं लिप्सेत् । जीर्णान्युपान-

त्त्ववासः कूर्चादीन्युच्छिष्टाशानं शिल्पवृत्तिश्च यं चायमाश्रयेत् भर्तव्यस्तेन पुण्यक्षीणोऽपि । तेन ३०

चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः । पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके” इति ।

एकजातिः । उपनयनमितरेषां द्वितीयजन्म तस्य तन्नास्ति प्राकृतनेषु गृह्यकार आह-

“शूद्रस्यापि निषेकपूर्णस्वनसीमंतोन्नयनजातकर्मनामकरणोपनिष्क्रमणान्नप्राशनचोलान्यमंत्रकाणि
यथाकालमुपदिष्टानि” इति । “आचमनस्थाने पाणिपादप्रक्षालनमेव भवति नान्य आचमनकल्प

इत्येके ॥ मनुस्तु लक्ष्मन्वृतान्विच्छिति (५।१३८)—“ स्त्री शूद्रोऽपि सङ्कृत ” इति । नित्यस्तानविद्येऽप्युद्याना आह—” सच्छृङ् ग्नायाद्सच्छृङ् ग्नः पाणिपादौ प्रक्षालयेत् ” इति । आद्वकर्मनावास्यादौ आनश्चाद्वदं सन्त्रवन्यं कर्तव्यम् । स्वदारवृत्तिर्वास्य भवति नाश्रमान्तरेषु प्राहिगिति । कृच्च वृस्यादि । जीर्णन्युपयुक्तानि उपानदादीनि परिचरते दासाय देयानि । यमसौ पूर्वमात्रितः कर्मण्यकरेत् क्षीणोऽसमर्थोऽपि तनासौ भर्तव्यः । तेन च शूद्रेण उत्तरो वृत्तिक्षीणो भर्तव्यः । तदर्थं उन्नपोषणार्थं अस्य शूद्रस्य निचयः स्यात् । अस्य वैश्वदेवादिषु देवतापदं चतुर्थ्यते भनत्ता द्यात्रा ननो नन इत्येवंत्त्वयो मंत्रोऽनुज्ञातो धर्मज्ञैः । अपर आह—

“ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महादेवगिन्य एव च । ननः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः ” ॥

अयं मंत्रो नमस्कारवृत्तेन विवक्षितः । स पितृयेषु कर्मसु भवति । पक्षगुणकेषु गार्द्येषु ॥

० पाकयज्ञशब्दः प्रसिद्धः । यथाहापस्तंवः—“ लौकिकानां पाकयज्ञशब्दः ” इति । तैः पाकयज्ञैः शूद्रोऽपि स्वयं यजेत्तत्यर्थः । आपस्तंवः (१।१३—८)—“ अशूद्राणामकुष्टकर्मणामुपायनमुपनयनं विद्याध्ययनमङ्गयाधेयं कलत्रन्ति च कर्मणि । शुश्रूषा शूद्रस्येतरेषां वर्णानाम् । पूर्वस्मिन्पूर्वस्मिन्वेण निःश्रेयसं भूयः ” इति । मनुः—

“ येनाग्निनावरो वर्णो व्राह्मणस्यापगच्छन्यात् । तदंगं तस्य च्छेतव्यं तन्मनोरनुशासनम् ॥

० “ न शूद्राय मतिं द्यान्नोऽच्छिष्ठन हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेऽद्वर्मन चास्य व्रतमादिशेत् (५।८०) ॥

“ यस्तस्य धर्म व्याच्छ योऽस्येवादिशिति व्रतमासोऽसंवृतं नाम तमस्तेनैव सह गच्छति (८१) ” ॥ इति । उच्छिष्ठं भक्षितशेषम् । हविष्कृतं पुरोद्धात्रादि । न शूद्राय मतिं द्यात् । न चास्योपदिशेऽद्वर्मसित्यादि निषेधः । शूद्रानुपयाग्निवेदिकाग्निहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः । “ श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा व्राह्मणमग्रतः ” इति इतिहासपुराणादिअवणस्य व्राह्मणमुखेन शूद्रस्यापि विहितत्वात् । किंच स्मृत्युक्तं शूद्राणामपि उपेत्तु ग्रतिपेधाभावो वाच्यः । अन्यथा “ शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजानिस्तस्यापि सत्यमकोऽधः शोचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमेवैके । श्राद्धकर्म । भूत्यभरणं स्वदर्वृतिः परिचर्या चानेषान् ” इत्यादिगौतमादिवर्मोक्तानां स्मृत्युक्ताशौचामश्राद्धादिनां चापेद्याभावे तद्विषयताहवाधर्मणामनुष्टानात् तद्वचनानामननुष्टानलक्षणमेव । गौतमः (१२।१—२)—“ शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगमोच्यो येनोपहन्यादार्यक्षयनिगमनं लिंगोऽद्वारः स्वहरणं च । गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपृणमुदाहरणं जिव्हाच्छेदो धारणे शरीरमेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रसुर्दृढ्यः ” इति । वाचा परपयाऽभिसंधाय निर्भर्तस्य दण्डपारुष्येण चाभिहत्य दण्डेन परुषं ताडियित्वा स्थितः शूद्रो येनाङ्गेनापगच्छन्यात् तदंगं मोच्यः वियोजनीयः । वाचा निर्भर्त्सने जिव्हाच्छेदो भूजादिना ताढने हस्तादिच्छेदः । आर्यस्त्रैवर्णिकाः तेषां स्त्रियो शूद्रो यद्यभिग्छेत्तदा तस्य लिंगोऽद्वारणं कर्तव्यं सर्वस्वहरणं स शूद्रस्तासां गोप्ता रक्षिता यदि भवति तदा वधः प्रमाणमधिको दंडः । अथ हेति वाक्यालंकारे । अस्य शूद्रस्य वेदमुपशृण्वतः उपसृत्य वृद्धिपूर्वं शृण्वतः श्रोत्रे त्रपुण जतुना च द्रवीकृतेन प्रतिपूरयितव्ये । उदाहरणे वेदोच्चारणे तस्य जिव्हा च्छेदा । हृदयेनावधारणे परश्वादिना शरीरं भेद्यम् । शूद्रश्चेदासनादिषु द्विजातिभिः साम्यं प्रेप्स्यति तत्तुल्यभावं ततोऽसां दंड्यः । दंडश्चापस्तंवेन दर्शितः (२।२७।१५)—“ वाचि

पथि शाय्योयामासने समीभवतो दंडस्ताडनम्” इति । वृत्त्यर्थं शूद्रं सेवमानस्य ब्राह्मणस्य निष्कृतिमाहापस्तंबः (१२७।११) — “यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्णं ब्राह्मणः सेवमानः । चतुर्थकाल उद्काभ्यवायी त्रिभिर्वर्षस्तदपहंति पापम्” इति । पराशरः (१२।३२) — “शूद्रान्वं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण च सहासनम् । शूद्रात् ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत्”॥ इति ।

नारदः

“शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं तु भोजनम्”॥ इति । इति शूद्रकर्म । अथ ब्राह्मणानां श्रैष्टव्यम् । आपस्तंबः (१३।४—५) — “चत्वारो वर्णा ब्राह्मणश्चत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान्”॥ इति । भूषः (१९।३—९५) — “उत्तमांगोद्भवात् ज्यैष्ठचाद्वक्षणश्चैव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः”॥

“तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्पस्तप्त्वादितोऽसृजत । हव्यकव्यादिवाद्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ १०

“यस्यास्येन सदाऽश्रुंति हव्यानि त्रिदिवौक्षसः । कव्यानि चैव पितरः किंभूतमाधिकं ततः ॥

“उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती । स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते (९८)॥

“ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये” (९९)॥

इत्यादि । “न शूद्राय मतिं इद्यान्नं चास्योपदिशेद्वर्द्धम्” (४।८१) इत्यादिनिषेधः शूद्रानुपयोगिवैदिकाग्निहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः । “श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः” इति १५। इतिहासपुराणादिश्रवणस्य ब्राह्मणमुखेन शूद्रविषयेऽपि विहितत्त्वात् । किंच स्मृत्युक्तशूद्रधर्माणामपि उपदेशप्रतिषेधाभावो वाच्यः । अन्यथा “शूद्रश्वतुर्थो वर्ण एकजातिः । तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाच्चमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्म भूत्यभरणं स्वदारवृत्तिः तुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषाम्” (१५।१—५७) इत्यादिगौतमादि धर्मोक्तानां स्मृत्युक्तशौचाद्वादीनां च उपदेशाभावे तद्विषयताद्वशधर्माणामननुष्टानात्तद्वचनानामननुष्टानलक्षणमप्राप्य- २० मापद्यते तस्माच्छूद्रानुष्टानानुपयोगिधर्मविषय एव निषेधः । न तु चातुर्वर्णयगृहस्थसाधारणधर्माणामहिंसास्तेयादिरूपाणां प्रातिस्विकशौचामश्राद्धद्विजशुश्रूषादिधर्माणामपि । न च स्वानुष्टानानुपयोगिधर्मश्रवणे कस्याप्यप्रसक्तेः प्रतिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् । धर्मः श्रुतो वा दृष्टो वेति धर्मात्र श्रवणे फलाभिधानात्स्वधर्म इति विशेषाभावाच्छूद्रव्यतिरिक्तानां त्रैवर्णिकानां यथा सर्ववर्णधर्मश्रवणे अधिकारः सन्न्यासद्यतिरिक्तानां यथा सर्वश्रमसाधारणयमेऽपि अधिकारः त्रैवर्णिक-

स्त्रीणां पुरुषधर्मे पुरुषाणां च स्त्रीधर्मे यथाधिकारः तथा शूद्रस्यापि प्रसक्ते तद्विषये प्रतिषेधस्यार्थवत्वात् ।

“सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् । ज्यैष्ठयेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽहंति (१००)”॥

“स्वमेव ब्राह्मणो भुक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । अनुशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुजते हीतरेजनाः (१०१)”॥

इति स्तुतिः । स्तेयादिषु पतनदंडप्रायश्चित्तोपदेशात् । याज्ञवल्क्यः (आ. १९८) — ३०

“तपस्तप्त्वाऽसृजद्वक्षा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये । तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च”॥

शातातपः—

“जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । माताऽसौ सर्वभूतानां वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः”॥

“नास्त्येषां पजनीयोऽन्यस्त्रिषु लोकेष कश्चन । वेदविद्याविशेषेण पजयन्तः परस्परम्”॥

“अन्योन्यगुरुं विप्रा अन्योन्यानिधयः स्मृताः । अन्योन्यमुपकुर्वणास्तारयंति तरन्ति च ॥

“योहि यां देवता निष्ठामानविद्युमाहिते । सर्वोपायप्रयत्नेन संतोषयतु स द्विजान् ॥

“देवता दिव्यस्मृतेषु क्रचित्काचित्प्रतीष्टिता । ब्राह्मणो देवताः सर्वास्तस्मात्संपूजयेत्सदा” ॥

श्रुतिरिदि— “ब्राह्मणोऽवै नर्वा देवता” इति “यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि

५ ब्राह्मण इसंतीति” च । मनुः (१९३-१७)—

“भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां ब्रुद्धिजीविनः । ब्रुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥

“ब्राह्मणेषु तु विद्वांसो विद्वत्सु कृतवृद्धयः । कृतब्रुद्धेषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः” ॥ इति ।

विद्वांसो वेदविदिः । कृतवृद्धयः परिचितवेदार्थकर्त्तारश्चोदितधर्मकृतः । ब्रह्मवेदिनः परमात्मवेदिनः ।

‘कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः’ इति देवता ब्रह्मविद्विष्टि कर्म कर्तव्यमिति सूचितम् । इति ब्राह्मणश्रेष्ठवृद्धम् ।

१० अथ जातिविवेकः । तत्र मनुः (१०१५-६)—

“सर्ववर्णेषु तुल्यानु पर्त्तिष्वक्षतयोनिषु । आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एवते ॥

“स्त्रीव्यवन्तरजातासु द्विजैस्तपदितान्सुतान् । सट्टशानेव तानाहुर्मातृदोषविवर्जितान्” ॥

देवलः—

“तेषां सर्वर्णजाः श्रेष्ठास्तेष्योऽन्वगनुलोमजाः । अंतराला बहिर्वर्णाः पतिताः प्रतिलोमजाः” ॥

१५ मनुः—“अवरासूनमाज्जाताश्वानुलोमा इति स्मृताः ।

“मृपायां विप्रतो जातः सर्वो ब्राह्मणो भवेत् । आयुर्वेदार्थवेदधनुर्वेदान्सदा पठेत् ॥

“गजाश्वारोहणं तस्य सर्वर्णस्य विधीयते । अस्यामनेन चौर्येण जातो नक्षत्रजीविकः ॥

“विप्रस्य विषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोद्देयोः । वैश्यस्य वर्ण एकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः” ॥

(१०) याज्ञवल्क्यः (आ. ९१-९२)—

२० “विप्रान्मूर्धावसिन्को हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् । अंबष्टः शूद्रां निषादो जातः पारशरोऽपि वा ॥

“वैश्याशूद्रोऽस्तु गजन्यान्माहीष्योर्योऽसुतौ स्मृतौ । वैश्यानुकरणः शूद्रां विनास्वेष विधिः स्मृतः” ॥

एष सर्वर्णमूर्धावसिन्कादिसंज्ञाविधिः विनासु ऊटासु स्मृतः । यत्तु “ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः

क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायां वैश्य एव वैश्येन शूद्रायां शूद्र” इति शंखस्मरणम्—

तत्क्षत्रियादिजातिप्राप्त्यर्थं न तु सर्वर्णादिसंज्ञानिराकरणार्थम् । अतश्च मूर्धावसिन्कादीनां

२५ क्षत्रियादेश्चर्त्तरेव दंडाजिनोपवीतादिभिरुपनयनादि कार्यमिति विज्ञानेश्वरः (पृ. २६ मं. २२) ॥

मनुरापि (१०१८)—

“ब्राह्मणादैश्यकन्यायामंवष्टो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव एव वा ॥

“क्षत्रियादैश्यकन्यायां माहिष्यांवष्ट इत्यसौ । आयुर्वेदमयाष्टांगं पठेदेष स्ववृत्तये ॥

“अस्यामनेन चौर्येण जातश्वाश्विक उच्यते । अश्वानां विक्रियस्तेषां शुश्रूषा वृत्तिरस्य तु ॥

“वैश्यतः शूद्रकन्यायामुग्रको नाम जायते । मेषाविविक्यश्वास्य वृत्तिः कम्बलविक्रियः” ॥

“अन्तःपुराणि वा रक्षेन्वपाणामाज्ञया सदा । चौर्येण कटकारः स्यात्कटविक्रियकर्मवान् ॥

“क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां कृगचारविहारवान् । क्षत्रशूद्रवपुर्जतुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ (९)

“ब्राह्मणादैश्यकन्यायां निषादो नाम जायते । मंत्रोषधाक्रियां कुर्यान्नित्यं शालिक्यकर्म च ॥

“चौर्येण कटकारः स्यादूर्ध्वं नापित एव सः । नाभ्युर्ध्ववपनं वृत्ति कुंभानां करणं मृदा ॥

“ ब्राह्मणाच्छूद्रकन्याया जातः पारशवस्तथा । भद्रकाल्यर्चनं तस्य नृत्तं वादं च वृत्तये ॥

“ अस्यां वै चोरसंगत्या निषादो जायते सुतः । जीवेद्भेन गानेन मृगणां हिंसयाऽपि वा ॥

“ क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां जातो दौषंत उच्यते । वनौकसां संग्रहणं मत्स्यानां ग्रहणं तथा ॥

“ खड्गादिशस्त्रकरणं दौषंतस्य तदुच्यते ॥

“ अस्यामनेन चौर्येण शूलिको जायते नरः । नित्यं शूलधरश्चैव राजां दंड्यांस्तु दंडयेत् ॥ ५

“ माहेष्यात्करणायां तु रथकारस्तु जायते । अथ पर्यायनामानि तक्षशिल्पी च वर्धकी ॥

“ लोहकारः कर्मकारः विद्यते यजनं तथा । उपवीतं विधानेन कुर्यादाधानमप्यसौ ॥

“ वास्तुशास्त्रमधीयानः प्रासादप्रतिमादिकम् । यज्ञशात्रान्दिजातीनां हैमान्याभरणानि च ॥

“ कुष्युपस्करणं लेख्यं कर्माण्यस्योदितानि च ” । शंखः—

“ रथकारस्तस्येज्याधानोपनयनसंस्कारकियाश्च प्रतिष्ठा रथसूत्रवास्तुविद्याध्ययनवृत्तिता च ” इति । १०

इत्यनुलोमजातिः ॥ अथ कुण्डगोलकादिजातिः । मनुः—

“ ब्राह्मण्यां सधवायां तु जारजातः स कुंडकः । विधवायां गोलकः स्यादेतो आद्वे वहिष्कृतो ॥

“ वृपायां क्षत्रियाज्जातश्चौर्याद्वैज इति स्मृतः । नाभिषेकः पट्टधरो राजके रंजयेत्प्रजाः ॥

“ वैश्यायां वैश्यतश्चौर्यान्मणिकारश्च जायते । मुक्तानां वेधनं शंखलवनं गत्वरंजनम् ॥

“ अस्यैव मणिकारस्य त्रीणि कर्माणि वृत्तये ॥

“ शूद्रायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो माणवको भवेत् । अश्वानां त्रृणदानेन वर्त्येदेष नित्यशः ” ॥ १५

अथ प्रतिलोमजातिनिरूपणम् । प्रातिलोमानाह याज्ञवल्क्यः (आ. ९३—९४)—

“ ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा । शूद्राज्जातस्तु चंडालः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

“ क्षत्रिया वागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च । शूद्रादायोगवं वैश्याज्जनयामास वै सुतम् ” ॥

मनुः (१०।११)—

२०

“ क्षत्रियादिप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः । प्रतिलोमेषु च श्रेष्ठो विष्णोरभ्यर्चनं तथा ॥

“ धर्मविवोधनं तस्य सारथ्यं कटविक्रियः । नित्यं दिजवदाधार इति सूतस्य वृत्तयः ॥

“ वृपायां वैश्यतो जातः कथितो मागधश्च सः । वृपप्रशंसनं कुर्यात्तिविणाश्च वादयेत् ॥

“ अस्यामनेन चौर्येण पुलिंदो नाम जन्मतः । हिंसया दुष्टस्त्वानामरण्ये वर्त्येदयम् ॥

“ तैलपिण्याकलवणविक्रियेणैव वर्तयेत् । अभोज्यान्नः स्वयं शूद्रैरस्पृश्योऽपि भवत्युत ॥ २५

“ ग्रामादिष्वपराह्नेषु प्रविशन् दंडमर्हति ॥

“ वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ । शूद्रादायोगवक्षता चंडालश्चाधमो नृणाम् ॥

“ वैश्यराजन्यविप्रासु जायंते वर्णसंकरः ।

“ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां ब्राह्मं तु प्रसूयते । यथा ब्राह्मंतरो ब्राह्मं चातुर्वर्णे प्रसूयते ॥

“ आयोगवश्च क्षत्ता च चंडालश्चाधमो नृणाम् । प्रतिलोम्येन जायंते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥

३०

“ वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु । प्रतीपमेव जायंते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ (१७)

“ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुलकसः । (१८) उग्रात्तु जातः क्षत्तायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥

“ चंडालश्वपचानां तु वहिग्रीमात्प्रतिश्रयः । चैत्यद्वुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥

“ वसेयुरेते अज्ञाता वार्ताया च स्वकर्मभिः । वासांसि मृतचेलानि भिन्नभांडं च भांजनम् ॥ ३५

“ काष्ठायसस्त्वलंकारः परिविज्या च नित्यशः । न तैः समयमन्विष्टेत्पुरुषो धर्माचरन् ॥
 “ वर्णपेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्थं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥
 “ अनार्यता निष्टुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥
 “ पितुर्वा भजते शीलं मातुर्वेभयमेव वा । न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां विमुच्यति ॥
 ५ “ स्वस्वजातेहिं यत्कर्म कथितं तेन वर्तयेत् । अन्यथा वर्तमाने हि सत्यं पतति जातितः” ॥
 याज्ञवल्क्यः (आ. ९५) — “ असत्संतस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ” । असंतः प्रतिलोमजाः सन्तश्चानुलोमजा ज्ञातव्या इत्यर्थः । अनुलोमप्रतिलोमजातीनामनन्तत्वेन वक्तुमशक्यत्वादत्र न हित्यते । इति प्रतिलोमजातिः

पुनः सावर्ण्यप्राप्तौ कारणमाह याज्ञवल्क्यः (आ. ९६)—

१० “ जात्युक्तपूर्णे युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा । व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ” ॥
 जातयो मूर्धावसिक्ताद्यास्तासामुक्तपूर्णे ब्राह्मणत्वाद्विजातिप्राप्तिः । युगे जन्मनि । सप्तमे पञ्चमे अष्टि द्वादशत्पूर्णे वा द्वोद्वय्या । व्यवस्थितश्चायं विकल्पः । ब्राह्मणेन शूद्रायामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढा दुहितं कांचिज्जनयति । साऽपि ब्राह्मणेनोढा अन्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणं जनयति । ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अंबष्टी । साऽप्येतेन प्रकारेण पञ्चमी षष्ठं ब्राह्मणं १५ जनयति । मूर्धावसिक्ताऽप्यनेन प्रकारेण चतुर्थी पञ्चमं ब्राह्मणं जनयति । एवमुग्रा क्षत्रियोढा माहिष्या च यथाक्रमं षष्ठपञ्चकं च क्षत्रियं जनयति । तथा करणी वैश्योढा पञ्चमं वैश्यं जनयति । एवं ब्राह्मणादिनां क्षत्रियादिहीनवृत्त्या क्षत्रियादिहीनजातिर्भवतीत्याह “ व्यत्यये कर्मणाऽपि ” इति । कर्मणां व्यत्यये वृत्त्यर्थानां कर्मणां विपर्यासे सति यद्याप-द्विमोक्षेऽपि तां दृक्तिं न परित्यजन्ति तदा सप्तमे षष्ठे पञ्चमे वा जन्मनि साम्यं यस्य हीनस्य २० कर्मणा जीवति तत्समानजातित्वं भवति । तद्यथाः । ब्राह्मणः शूद्रवृत्त्या जीवस्तामपरित्यजन्यदि पुत्रमुत्पादयति सोऽपि तथैव वृत्त्या जीवन्पुत्रान्तरभित्येवं परंपरया सप्तमे जन्मनि शूद्रमेव जनयति । एवं वैश्यवृत्त्या जीवन्पुष्टो वैश्यं क्षत्रियवृत्त्या जीवत् पञ्चमे क्षत्रियमिति पूर्ववच्चाधरोत्तरमधरे चोत्तरे चाधरोत्तरम् । यथा मूर्धावसिक्तायां क्षत्रियवैश्यशूद्रैरुत्पादिता अंबष्टायां वैश्यशूद्राभ्यां निषादां शूद्रेण उत्पादिता अपरे प्रतिलोमजा तथामूर्धावसिक्तां षष्ठनिषादादिषु ब्राह्मणोत्पादितां २५ माहिष्योव्ययोर्ब्राह्मणेन क्षत्रियेण च उत्पादिता करण्यां ब्राह्मणेन क्षत्रियेण वैश्येन च उत्पादिता उत्तरं अनुलोमजा एवमध्येत्तरं पूर्ववत्संकरवत्सदसत् सदिति बोद्धव्यमित्यर्थः ॥
 मनुः (१०२०)—

“ द्विजातयः सवर्णासु जनयन्यवतान्मुतान् । तान्सावित्रीपरिष्ठान् व्रात्यानित्यभिनिर्दिशत् ” ॥
 वैधायनोऽपि

३० “ त्रिवृवर्णेषु साऽवैश्यादवतान् जनयेत्तु यान् तान्सावित्रीपरिष्ठान् व्रात्यान् इत्याहुर्मनीषिण ” ॥ इति ।
 अथ गम्भाधानादि । याज्ञवल्क्यः (आ. १०)— “ ब्रह्मक्षत्रियाविटृशूद्रा वर्णस्त्वाद्याद्ययो द्विजाः । निषेकादिशमशानांतस्तेषां वै मंत्रतः क्रिया : ” ॥ निषेको गम्भाधानम् । तत्र मनुः (२१२६)— “ देवदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यद्विजन्मनाम् । कार्यः शशीगसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ” ॥
 अंगिरा: “ चित्रकर्म यथानेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः । ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः ” ॥
 ३५ मनुः (२१२७)—

“ गर्भीर्मैर्जातिकर्मचौलमौजीनिबंधनैः । वैजिकं गर्भिकं चैनो द्विजानामपसुज्यते” ॥
 बीजं शुक्रशोणितम् । तद्वेषजनितं वैजिकम् । अशुचिगर्भनिवासजनितं गर्भिकम् ॥
 तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. १३)—“ एवमेनः शमं याति वीजगर्भसमुद्भवम् ” ॥ इति ।
 संस्काराश्च गौतमेन दर्शिताः (८।१४-२४)—“ गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनजातकर्मनाम-
 करणान्नप्राशनचौलोपयनम् । चत्वारि वेदव्रतानि । स्नानं सहवर्मचारिणीसंयोगः । पंचानां यज्ञा- ५
 नामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्धं श्रावण्याश्रायणीचैत्याश्रवयुजीति
 सप्त पाकयज्ञसंस्थाः । अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासा वाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूपशु-
 बंधसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्ठोमोऽत्यग्निष्ठोम उवश्यः षोडशो वाजपेयातिरात्रा-
 सीर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः । इत्येते चत्वारिंशत्संस्कारा अष्टावात्मगुणाः । दया सर्वभूतेषु
 क्षांतिरनुसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहा ” इति ॥ वेदव्रतानि प्राजापत्यादीनि । १०
 स्नानं समावर्त्तनम् । सहवर्मचारिणीसंयोगो विवाहः । पंचानां देवयज्ञादीनामहरहरनुष्ठानं पंचेतै
 पृथकसंस्काराः एतेषां वक्ष्यमाणानामष्टकादीनामनुष्ठानमित्यर्थः । अष्टकादयः पूर्वं व्याख्याताः ।
 भनुनोपनिष्कामणाख्यं कर्माप्युक्तम् (२।३४)—“ चतुर्थं मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं
 गृहात् ” इति । तदिह नादृतं चत्वारिंशदग्रहणादेतावतः संस्कारास्तेनान्यानि श्रौतानि स्मार्तानि
 च कर्माणि न संस्कारेष्वंतर्भवन्ति । दयादीनां लक्षणमाह बृहस्पतिः— १५

“ परे वा बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा । आपदो रक्षणं यत्तु दयैषा परि कीर्तिता ॥
 “ बाह्ये चाभ्यंतरे चैव दुःख उत्पादिते परैः । न प्रकुर्वति नो हंति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥
 “ यो धर्ममर्थं कामं वा लभते मोक्षमेव वा । न द्वेष्यात्तं सदा प्राज्ञः साऽनसूया स्मृता बुधैः ॥
 “ अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्वाप्यनिंदितैः । स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तिम् ॥
 “ यदारंभे भवेत्पीडा नित्यमत्यंतमात्मनः । तद्वर्जयेद्वर्ममपि सोऽनायासः प्रकीर्तिः ॥ २०
 “ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्विंशतिर्मुखिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
 “ स्तोकादपि हि दातव्यं मुदितेनांतरात्मना । अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत् स्मृतम् ॥
 “ यथोत्पन्नैस्तु संतोषः कर्तव्यः स्वार्जितैर्धनैः । परार्थं नाभिलाषेत साऽस्पृहा परिकीर्तता ” ॥ इति ।
 यस्य चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टावात्मगुणाश्च स ब्रह्मणः सायुज्यमाप्नोतीत्याह शंखः—

“ संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरुत्तरैरपि संस्कृतः । नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्रह्मलौकिकम् ॥ २५

“ ब्राह्मं पदमवाप्नोति तस्मान्न च्यवते पुनः” ॥ इति गर्भाधानादयः पूर्वं संस्काराः उत्तरे
 त्वष्टकादयः । तथा हारीतः—“ द्विविध एव संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिसमाव-
 तान्ते ब्राह्मः । पाकयज्ञहविर्यज्ञसौम्याश्वेति दैवाः । ब्राह्मण संस्कारेण संस्कृतं क्रषीणां समानानां
 सायुज्यं गच्छति दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सलोकतां सायुज्यं गच्छति” इति । एतच्च
 आत्मगुणहीनसंस्काराभिप्रायेण । अत एव गौतमः—(८।२५) “ यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा न ३०
 चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छति ” इति । अतश्च यस्यैते चत्वारिंशत्सं-
 स्कारा अष्टावात्मगुणाश्च तस्यैवेदं ब्रह्मणः सायुज्यप्राप्निलक्षणं फलमिति मंतव्यम् । अत्र च
 गर्भाधानादय उपनयनपर्यंता एव संस्काराः सर्वेषां त्रिजातीनां नियताः । न पुनः स्नानादयः । तथात्वे
 ‘यमिच्छेत् कर्तुं तमाविशेत्’ ‘यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्’ इत्यादिभिर्विरोधः स्यात् ॥

अथ गर्भाधानम् । तत्र मनुः (३।४५-४९)—

“ कतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । पर्ववर्जं वजेच्चैनां तद्रतो रतिकाम्यया ” ॥

“ कतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतुर्मिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥

“ तासामाद्यश्वतस्तु निंदितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

५ “ युग्मासु पुत्रा जायन्ते लियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥

“ अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ” ॥

बृहस्पतिः—

“ कतुकालाभिगमनं पुंसां कार्यं प्रयत्नतः । सदैव वा पर्ववर्ज्यं स्त्रीणामभिमतं हि तत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ८१)—

१० “ यथाकामी भवेद्वाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ” ॥

भार्येच्छानतिक्रमेण प्रवृत्तिरिति यथाकामी स्त्रीणां वरमिद्रदत्तमनुस्मरन् । यथा (तै. स. २।५।१) “ सद्वीषः साद्मुपासीददस्यै ब्रह्महत्याहै दृतीयं प्रतिगृहितेति । ता अब्रुवन्वरं वृणा-

मह ऋत्वियात्यजां विंदामहैं कामभाविजनितोः संभवामेति तस्माद्विवियास्त्रियः प्रजां विंदते काम-
माविजनतोः संभवंति वारे वृत्तं ह्यासां दृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन् सा मलवद्वासा अभवत् ”

१५ इति । स्त्रीषः सादं स्त्रीसमूहम् ऋत्वियादिति कतुः प्राप्तोऽस्येति ऋत्वियमार्त्तवमुच्यते । छंदसि
घसिति घस् । तस्येयः । आविजनिनोः । विजननं प्रसवः । भावलक्षणे स्थे णिति जने स्तोसुन्प्रत्ययः ।

संभवः संयोगः । प्रथमसंयोगे गर्भो भवतीति यद्यपि द्वितीयादिप्रवृत्तिरप्रजार्था तथापि कामानुरूपमा-
प्रसवात्संभवाम । गर्भश्च सुखं वर्धतामिति वारे वरणकाले आसामभिवतं हि ब्रह्महत्यायै षष्ठ्यर्थे

चतुर्थीं प्रत्यगृह्णन्नित्यिः मलवद्वासाः रजस्वला । वासोयहणं वाससि रजस्पर्शात् प्रभृत्यप्रायत्यम-

२० स्तीति सूचनार्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. ७९)—

“ षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् । ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्वतस्तश्च वर्जयेत् ” ॥

निशाग्रहणं दिवसप्रतिषेधार्थम् । अत एव शंखलिखितौ— “ नार्तवे दिवा मैथुनं वजेदल्पनीर्याश्च दिवा प्रसूयन्तेऽप्यायुषश्वेति ” । युग्मास्विति बहुवचनं समुच्चयार्थम् । तेनैकस्मिन्नप्यृतावप्रतिषिद्धासु युग्मासु सर्वासु रात्रिषु गच्छेदेवं गच्छन्ब्रह्मचार्येव भवति । अतश्च “ अत्र

२५ ब्रह्मचर्यं चोदितं तत्र गच्छतोऽपि न ब्रह्मचर्यस्वलनप्रयुक्ते दोषोऽस्तीति ” विज्ञानेश्वरः
(पु. २० पं. १-३) । पर्वण्याद्याश्व तत्र च वर्जयेदिति । तथाच श्रुतिः “ नामावास्यायां च
पौर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्युपेयान्निरिद्रियः स्यात् ” ॥ इति । “ तस्मान्मलवद्वाससा न संवदेत
न सहासीतेति । यां मलवद्वाससः संभवंति यस्ततो जायतेऽसौ अभिशस्त ” इति च ।

युग्मास्वप्युत्तरं तर्वंशिष्ठचमाहापस्तंदः (३।९।१)— “ चतुर्थीप्रभृत्या षोडशमुक्तरामुक्तरां युग्मां
३० प्रजानिःश्रेयसमृतुगमन इत्युपदिशांति ” इति । एतच्चतुर्थेऽहिं गमनं रजोनिवृत्तौ द्रष्टव्यम् ।

एतदेवाभिप्रेत्य कात्यायनः—

“ रजस्वलां चतुर्थेऽहिं स्नानाच्छुद्धिनवाप्नुयात् ” इति । हारीतश्च— “ चतुर्थेऽहिं स्नाताया

युग्मासु च ” इति । तदाह गोभिलः— “ यदर्तुमती भवत्युपरतशोणिता तदा संभवकालः ” इति ॥

पराशरः— (७।१७-१९)

“ स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति । कुर्याद्जोनिवृत्तौ तु देवपित्र्यादि कर्म च ॥
 “ साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते । रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणे चैव हि ॥
 “ प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी । वृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति” ॥ इति ।
 चंडाल्यादिगमने यावत् प्रत्यवायः तावत् रजस्वलागमनेऽपि । श्रुतिरपि—“ तिस्रो रात्रीव्रतं
 चरेत्” इति ॥ एवं चतुर्थदिनवज्यत्वस्मरणं रजोनुवृत्तिविवयं अल्पायुर्धनवर्जितपुत्रोऽद्वाभिप्रायं ५
 वा । तथा व्यासः—

“ रात्रौ चतुर्थ्या पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः । पंचम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥
 “ सप्तम्यामप्रजा योषिद्धृम्यामीश्वरः सुतः । नवम्यां सुभगा दारा दशम्यां च परः पुमान् ॥
 “ एकादश्यामधम्या स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता लोकवर्णसंकरकारिणी ॥
 “ धर्मविच्चक्रृतज्ञः स्यादात्मवेत्ता टट्टवतः । प्रजायंते चतुर्दश्यां गुणोर्धैर्जगतीपतिः ॥ १०
 “ राजपत्नी महाभोगा राजवंशगताऽथवा । जायते पंचदश्यां तु बहुपुत्रा पतिव्रता ॥
 “ विद्यालक्षणसंपन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आश्रयः सर्वभूतानां षोडशे जायते पुमान्” ॥ इति ।
 याज्ञवल्क्यः (आ. ८०)—

“ एवं गच्छन्नित्रयं क्षामां मधामूरुं च वर्जयेत् । स्वस्थ इन्दौ संकृत्युत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ” ॥
 स्वस्थ इन्दौ चंद्रबले सति मधामूले विहाय क्षामां कृशां सकृद्गच्छन् लक्षण्यं लक्षणयुक्तं च १५
 पुत्रं जनयेदित्यर्थः । बृहस्पतिः—

“ स्त्रियाः शुक्रेऽधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोधिको भवेत् । तस्माच्छुक्रविवृद्ध्यर्थं वृद्ध्यं स्त्रिगं च भक्षयेत् ॥
 “ लघ्वाहारां स्त्रियां कुर्यादेवं संजनयेत्सुतम् ” । वृष्यं वीर्यवर्धनं द्रव्यम् ॥ मनुः (३।४९)—
 “ पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः । समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ” ॥
 अपुमान् नपुंसकः । पुंस्त्रियौ वा यमलौ यदि तदा वीजविभागः । तदाह यमः— २०
 “ यदि संयोगकाले तु पुरुषो रागमोहितः । द्विधा समुत्सृजेच्छुक्रं यमकं तत्र जायते ” ॥ इति ।
 क्षीणे निःसारे अल्पे च विपर्ययः गर्भाग्रहणम् । स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया इत्यत्र रजसीत्यध्याहारः ।
 अथवा शुक्रशब्दस्यैव रजोवाचकत्वं चेत्यवगंतव्यम् । सायणीये—

“ षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा
 शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वागः शशांकार्यसितेंदुजानाम् ॥ २५
 “ विष्णुः प्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये ।
 पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्र मध्यमफला विफलाः स्युरन्त्याः ” ॥
 विष्णुः श्रवणम् । प्रजेशो रोहिणी । रविर्हस्तः । मित्रः अनुराधा । समीरः स्वाती । पौष्णो
 रेवती । वरुणः शतभिषक् । वसु धनिष्ठा । शीतकरः मृगशिराः । आदित्याः पुनर्वसू ।

“ वृषभमिथुनकर्कसिंहकन्या तुलघटचापश्चापाः शुभा भवन्ति । ३०
 यदि शुभबलकारिणोऽनुकूला निधनविशुद्धिकरा निषेककार्ये ” ॥
 निधनमष्टमस्थानम् । ऋतुयौगपद्ये तु गमनक्रममाह देवलः—
 “ यौगपद्ये तु तीर्थानां विप्रादिकमशो वजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोऽपि वा ॥
 तीर्थस्रतः । पराशारः (४।१४)—

“ क्रतुस्नातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ ” ।
बोधायनः—

“ क्रतुस्नातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन् रेतासि शेरते ” ॥ इति ।
संनिधिग्रहणादसंनिधौ अशक्तौ च न दोषः । तथा देवलः—

५ “ स्वयं दारान् क्रतुस्नातान् स्वस्थश्चेनोपगच्छति । भ्रूणहत्यामवाप्नोति गर्भं प्राप्तं विनाश्य सः ॥

“ त्रीणि वर्षाण्यृतिमतीं यो भार्या नोपगच्छति । स तुल्यं भ्रूणहत्याया दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥

“ क्रतौ नोपैति यो भार्याभवतौ यश्च गच्छति । तुल्यमाहुस्तयोः पापमयोनौ यश्च सिंचति ” ॥

अनृतुगमनप्रतिषेधः स्त्रिया इच्छाभावे वेदितव्यः । अन्यथा “ यथाकामी भवेत् ” इत्यादि-
वचनविरोधः स्यात् । तथा च गौतमः (५।१-२)—“ क्रतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ”

१० इति । आपस्तंवः । (२।२०।२२)—“ भोक्ता च धर्माविप्रतिषिद्धानभोगान् ” इति । श्रूयते च

“ स्वीरक्षणम् अप्रमत्तारक्षत तन्तुमेतममावां क्षेत्रे परबीजानि वाप्सुः ” इति । महाभारतेऽपि—

“ अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम् । रतिपुत्रफला दारा शीलवृत्तफलं श्रुतिम् ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ अनृतावृत्तुकाले वा दिवारात्रे तथापि वा । प्रोषितस्तु स्त्रियं गच्छेत्प्रायश्चित्तीयते न च ” ॥

१५ क्रतुकालातिकमदोषापवादमाह व्यासः—

“ व्याधितो बंधनस्थो वा प्रवासेष्वथं पर्वसु । क्रतुकालेषु नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ” ॥

भ्रूणहतिशब्दस्तुतीयांतः । बोधायनः—

“ यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये गच्छति मैथुनम् । तस्येह निष्कृतिर्नास्तीत्येवमाह प्रजापतिः ” ॥ इति ।

व्यासः—

२० “ परदारान्न गच्छेत्तु मनसाऽपि कथंचन । परदाररतिः पुंसामुभयत्रापि भीतिदा ॥

“ इति भत्वा स्वदरेषु क्रतुमत्सु ब्रुधो ब्रजेत् ” । अजातपुत्रस्यैवात्र्तुगमननियमः ।
तथा कूर्मपुराणे (उत्तरार्थं १५।११)—“ क्रतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ”
इति । वसिष्ठोपि (१७।१-२)—

“ क्रणमस्मिन्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ” ॥ इति ।

२५ “ जायमानो वै ब्रह्मणस्त्रिभिर्क्षणवा जायते ब्रह्मचर्यणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष
वा अनृणो यः पुत्री यज्ञवा ब्रह्मचारिवासी प्रजयाहि मनुष्यः पूर्णः ” ॥

“ संतानगहितो जंतुरिह लोके परत्र च । न पूयते वृथा जन्म कुलं तस्य विनश्यति ॥

“ अनन्ताः पुत्रिणो लोका नायुत्रस्य लोकोऽस्ति, प्रजामनुप्रजायसे, तदुतेमर्त्यमृतम् ”
इत्याद्याः श्रुतिस्मृतयः एकेनापि पुत्रं चरितार्थाः । तथा च मनुः (१।१०५)—

३० “ उद्येष्टेनैव तु पुत्रेण पुत्रीभवति नानवः । पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ” ॥ इति ।

“ दशास्यां पुत्रानाधेहि ” ॥ “ एषृत्या वहवः पुत्रा यद्यकोऽपि गयां ब्रजेत् ” इत्याद्यास्त्वनेकपुत्र-
प्रशंसापगः । एवं च वहुपुत्रेच्छायां सत्यां जातपुत्रस्य क्रतुगमनातिक्रमे न दोषः । अत एव
मनुः (१।१०७)—

“ यस्मिन्बृणं संनयति येन चानंत्यमश्रुते । स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ” ॥ इति ।

३५ आनुशासनिके तु—

“ कल्पसं गुरुशुश्रूषा हन्यान्मानो महदशः । अपुत्रत्वं ब्रयः पुत्रा कुर्वति दश धेनवः”॥ इति ।
सायणीये—

“ गर्भाधानक्षमारभ्य नक्षत्रे जननं भवेत् । नवमे दशमे वापि द्वादशे वाऽथ निश्चितम् ॥

“ आधानक्षम समारभ्य प्रसवो द्वादशे यतः । विज्ञाय शुभनक्षत्रं तद्रूपत्वं विशेषतः ॥

“ दारप्रियैरलंकारैरलंकृत्य प्रसन्नधीः । प्रियासमीपे शयनं संविशेत्प्रहरदूयम्”॥ अपरार्के— ५

“ न स्वपेद्येषु देशेषु तेषु देशेषु चाप्यथा । दीक्षितां वर्जयेद्यत्नात्कृत्वा आद्वं च मानवः”॥

दीक्षितोऽनुमतदीक्षः । यस्मिन्प्रदेशे स्त्री स्वपिति तत्र न स्वपेत् । वर्जयेन्मैयुनामिति शेषः । द्यासः—

“ नास्नातां तु स्त्रियं गच्छेदातुरां न रजस्त्रिलाम् । नोपयाद्वर्भिणीं नारीं दीर्घशायुर्जिजीविषुः ॥

“ नानिष्टां न प्रकुपितां न सशक्तां न रोगिणीम् । नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् ॥

“ शुत्क्षामां नातिभृक्तां वा स्वयं चेतैर्गुणैर्युतः । स्नातः स्त्रांगंधधृक्प्रीतो व्यवायं पुरुषो ब्रजेत् ”॥ १०

शांडिल्यः—

“ न गच्छेद्वर्भिणीं भार्या मलिनां सिंतमूर्ध्वजां । रजस्वलां रोगवतीं नायोगौ न बुभुक्षितः ॥

“ सुवस्त्रवेषधरया स्नातया शुद्धचित्तया । अरोगया द्रियितया स्वयमेवंविधं स्वपेत् ॥

“ धातुक्षयो रोगवृद्धिरश्चिः सत्कर्मविपूवः । सौभाग्यायुर्यशो नाशः पुंसां स्त्रीस्वतिसंगिनाम् ”॥

संबर्तः—

१५

‘रजस्वलां च यो गच्छेत् गर्भिणीमष्टमासिकीम्। तस्य पापविशुद्धयर्थमतिकृच्छ्रुं विशोधनाम्”॥ इति।

भारद्वाजः—

“ भार्यासंभोगसमये पुष्पकालं विनान्यदा । उपवीतमृतौ कुर्यान्निर्वातमनुन्तौ तथा”॥ मनुः—

“ उपवीती स्त्रियं गच्छेद्वतुकाले तु वै बुधः । निर्वीतमनुतौ कुर्यात्तदोषस्य निवृत्तये ॥

“ मुक्तवसना योषिद्मुक्तवसनः पुमान् । संविशेतामुभौ मुक्तवसनो कलिराविशेत् ”॥ संवि- २०

शेदित्युक्त्या रतिकाले मुक्तवसनत्वमादृतमासीत् । अमुक्तवसनत्वं निद्राकाल इति ।

“ क्रतौ तु गर्भशंकित्वात्सनानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचमूत्रवदिष्यते” इति ।

गौतमः (१२६)— “ न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलंबेत् ” इति । मिथुनीभूत्वा

स्त्रियमुपगम्य शौचं प्रति न विलंबेत तत्क्षण एव कुर्यात् । अत्र शौचं क्षालनं न तु वस्त्रादीनां

शोधनं “ शुक्रे तिस्रो मृत्तिकाः” इति वचनात् । आपह्यतः (२१२३; २११)— “ उदकोप- २५

स्पर्शनमपि वा लेपान्प्रक्षाल्याचम्य प्रोक्षणमंगानाम् ” इति । उदकोपस्पर्शनं स्नानं तच्च पुंस

एव । अंगानां तु हरिद्राजलप्रोक्षणमिति । स एव (१३२२)— “ मिथुनीभूय च न तया

सर्वा रात्रीं शयीत् ” इति । (२१२०२३)“ स्त्रीवाससैव संनिपातः स्यात् । यावत्संनिपातं च

सह शय्या । ततो नाना” इति । स्त्रीवाससा स्त्रीसंयोगार्थवाससा । संनिपातः संयोगः । कालादर्शे—

“ रजोदृष्टेश्वतुर्थर्याद्या षोडशाहादृतुः स्मृतः । पुत्रोत्पत्तिकरा युग्मा वासराः सप्त शोभनाः ॥ ३०

“ पुत्र्युत्पत्तिकराः षट् च मध्यमाश्वायुजः स्मृताः । अतिप्रशस्ता दिवसा उभयत्रोत्तरोत्तराः ॥

“ राक्षसर्क्षं मखर्क्षं च पञ्च पर्वाणि वर्जयेत् ” इति । रजोदर्शनादारभ्य चतुर्थर्याद्या आषोडशः

त्रयोदशवासराः क्रतुः । गर्भोत्पत्त्यनुग्रहकालो क्रतुः । उभयत्र युग्मास्वयुग्मासु च । राक्षसर्क्षं

मूलनक्षत्रम् तन्त्रे—

१ क्ष-मुक्त । २ क्ष-प्रातपितं । ३ क्ष-सक्तां । ४ क-सिक्त । ५ करखग-तं पृष्ठमागतः
६ द्वया । ७ द्वया त वि । ८ द्वया जौष्ठः ।

“ चतुर्दश्यष्टमी पक्षद्वये दर्शश्च पूर्णिमा । संक्रांतिश्चेति पर्वाणि पञ्च प्राहुर्महर्षयः”॥ इति ।
कूर्मपुराणे (उ. १५।१२)—

“ षष्ठ्यचृष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयेऽहनि”॥ इति ।
इति गर्भाधानम् ।

५ अथ पुंसवनम् । आपस्तंबः—“ पुंसवनं व्यक्ते गर्भे तिष्येण ”॥ इति । पुंसवनमिति कर्मनामधेयम् । येन कर्मणा गर्भिणी पुमांसमेव सूते तत्पुंसवनम् । पुमांसं सूत इत्यर्थवादः । पुंसवनस्य नित्यत्वात् अत्रोवडादेशः छांदसः । आश्वलायनस्तु पुंसवनमिति गुणमेव प्रायुक्ते । तच्च व्यक्तगर्भे । अस्ति गर्भः । इति निश्चिते व्यक्तिश्च तृतीये चतुर्थे वा मासे तिष्येण पुष्यनक्षत्रे कर्तव्यमित्यर्थः । कालादर्शोऽपि—

१० “ तृतीये वा चतुर्थे वा मासि पुंसवनं भवेत् । गर्भव्यक्तौ स्मृतं तच्च लोकसिद्धान्तिया हि सा ॥ तत्पुंसवनं स्मृतं सा गर्भव्यक्तिस्त्रियाः तृतीयचतुर्थमासभवत्वेन लोकसिद्धयेत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. ११)—“ गर्भाधानमृतौ पूंसःसवनं स्पन्दनात्पुरा ” । स्पन्दनाद्वर्भचलनात्पुरा कर्तव्यमित्यर्थः । बृहस्पतिस्तु गर्भस्पंदने पुंसवनमाह—“ गर्भाधानमृतौ कुर्यात्सवनं स्पंदिते शिशौ ” इति । वैजावापः—“ मासि द्वितीये तृतीये वा पुरा स्पंदने ” इति ।

१५ पारस्करोऽपि (१।१४।१२)—“ मासि द्वितीये तृतीये वा यदहः पुनरक्षत्रेण चंद्रमा युक्तः स्यात् ” इति । पुनरक्षत्राणि रत्नकोशोऽभिहितानि—“ हस्तो मूलश्रवणपुनर्वसुमृगशिरस्तथा तिष्यः पुमांसः ” इति । जातूकण्ठः—

“ द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भेऽथवा कार्यं सीमंतेन सहाथ वा ” ॥ धर्मोद्योते ॥ “ तृतीये पुंसवः कृत्वा षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा ।

२० “ सीमंतोन्नयनं कार्यं न कुर्यात्पुंसवं यदि । “ पुंसवं प्राग्विनिर्वर्त्य ततः सीमंतमुन्नयेत् ” ॥ आधानसंस्कारमुख्येन सर्वेषां गर्भाणामयं संस्कार इति प्रथमगर्भ एव पुंसवनमित्येके । ‘ पुमांसं जनयति ’ इत्यापस्तंबवचनं गर्भे गर्भे कर्तव्यतापरमिति पुत्रेषुना प्रतिगर्भं कर्तव्यमित्यन्ये । इति पुंसवनम् ।

अथ सीमंतोन्नयनम् । तत्र वैजावापः—“ अथ सीमंतोन्नयनं मासि चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे २५ वा ” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ११)—“ षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो मास्येते जातकर्म च ” । एते जाते जातकर्मेत्यर्थः । लोकाक्षिः—“ तृतीये गर्भमासे सीमंतोन्नयनं कारयेत् ” इति । कालादर्शो—“ सीमंतोन्नयनं तुरीये मासि षष्ठेऽष्टमे वा ” इति । शंखः “ गर्भस्पंदने सीमंतोन्नयनं यावद्वा प्रसवः ” इति । एतदुक्तकालस्य केनचिन्निमित्तेन प्रतिबन्धे सति द्रष्टव्यम् । तदाह काश्यपः—“ षष्ठे वा सप्तमे मासि सीमंतोन्नयनं भवेत् । अष्टमे नवमे मासि यावद्वा प्रसवो भवेत् ” ॥ इति । ३० एतच्च स्त्रीसंस्कारत्त्वात्सङ्कुदेव कार्यम् । न प्रतिगर्भम् । तथा चापस्तंबः—“ सीमंतोन्नयनं प्रथमे गर्भे चतुर्थे मासि ” इति । सांख्यायनगृह्णेऽपि—“ सप्तमे मासि प्रथमे गर्भे सीमंतोन्नयनम् ” इति । हारीतः—

“ सङ्कृतसंस्कृतसंस्काराः सीमंतेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ” ॥ देवलः—“ सङ्कृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ” इति । केचित्सीमंतोन्नयनं गर्भसंस्कार ३५ इति प्रतिगर्भमावर्त्यान्ति । तथा च विष्णुः—

“ सीमंतोन्नयनं कम तत्त्वीसंस्कार उच्यते । केचिद्गर्भस्य संस्काराद्वभें गर्भे प्रयुंजते ” ॥ इति । एतेषां च पक्षाणां स्वस्वगृह्यानुसारेण व्यवस्था द्रष्टव्या ।

अङ्गुतसीमंतायाः प्रसवे सत्यव्रत आह—

“ स्त्री यदाऽङ्गुतसीमंता प्रसूयेत कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमहति ” ॥

गार्यः—

“ यदि सीमंतः पूर्वं प्रसूयेत कथंचन । तदानीं पटके गर्भे स्थाप्य संस्कारमाचरेत् ॥

“ मृतो देशांतरगतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वाऽपि सपिंडो वा समाचरेत् ” ॥

इति सीमन्तोन्नयनम् । अथ जातकर्म । तत्र विष्णुः—“जातकर्म ततः कुर्यात्पुत्रे जाते यथो-दितम्” । स्वगृह्य इति शेषः । ततः स्नानादनन्तरम् । तथा च संवर्त्तः—“जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ” । जावालिः—“ कुर्यान्नैमित्तिं स्नानं शीताद्विः कार्यमेव च ” । वसिष्ठः— १०

“ पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे र्खेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ” ।

यज्ञेऽवभूतस्नानम् । **व्यासः—**

“ रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः । नैमित्तिं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥

“ ग्रहणोद्वाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिं ज्ञेयं गत्रावपि न दुष्यति ॥

“ पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्या दत्तमक्षयम् ” ॥ रात्रिस्नाने विशेषमाह सांख्यायनः— १५

“ दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसंनिधौ ” ॥

मनुः (२२९)—“ प्राङ्मुखिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ” । संवर्त्तः ॥ “ मंत्रवत्प्राशनं चास्य

हिरण्यमधुसर्पिषाम् ” । वैजावापः—

“ जन्मनोऽनंतरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवादतीतकालं चेदतीते सूतको भवेत् ॥

“ यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्रोति सूतकम् । छिद्यनाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ” ॥ इति । २०

व्यासः—

“ अछिद्यनाभ्यां कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि । आशौचोपरमे कार्यमथवा नियतात्मभिः ” ॥

एतद् द्रव्याभावे वेदितव्यम् । श्राद्धमेतदामद्रव्येण हेम्ना वा कार्यम् । यथाह प्रचेताः—

“ स्त्रीशूद्रस्वप्नचश्वैव जातकर्मणि वाऽप्यथ । आमश्राद्धं तथा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु ” ॥

स्वपचः स्वयंपचः । बोधायनः— २५

“ अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि ” ॥

आदिपुराणे तु जातश्राद्धे पक्षान्ननिषेधो दर्शितः—

“ जातश्राद्धे न दद्यात् पक्षान्नं ब्राह्मणेष्वपि । यस्माच्चांद्रायणाच्छुद्धिस्तेषां भवति नान्यथा ” इति।

बृद्धयाज्ञवल्क्यः—

“ कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासःशाय्यासनादिषु ॥ ३०

“ तत्र सर्वं प्रतिग्राहां कृतान्नं तु विवर्जयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहात् द्विजश्वान्द्रायणं चरेत् ” ॥

सकुल्यानां तु कृतान्नप्रतिग्रहे दोषाभावः “ सूतके तु सकुल्यानां न दोषं मनुरब्रवीत् ” इति

स्मरणात् । तच्च कृतान्नं सकुल्यब्रह्मचरिव्यतिरिक्तविषयम् । अन्नदानं सकुल्येभ्योऽपि दद्यादित्याह

शंखः—“ सर्वेषां सकुल्यानां द्विपदचपुष्पदधान्यहिरण्यादि दद्यात् ” इति । **व्यासः—**

“देवाश्र पितरश्वैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयांति तदहस्तस्मात्पुण्यं पूज्यं च सर्वदा ॥

“तत्र दद्यात्सुवर्णं तु भूमिं गां तुरगं रथम् । छत्रं छागं वस्त्रमाल्ये शयनं चासनं गृहम् ॥

“जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम् । हिरण्यधान्यगोवासश्चित्रान्नगुडसर्पिषाम् ” ॥

पराशरः (१२२)—

५ “खलयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे सृताँै । पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्” ॥

यत्तु “कुमारप्रसवे नाभ्यामच्छिन्नायां गुडतिलहिरण्यगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषः” इति शंख-
स्मरणं यदपि “प्राङ्गनाभिच्छेदनात्संस्कारः पुण्यार्थान्कुर्वन्ति छिन्नायामाशौचम्” इति
हारीतस्मरणं । यदपि “छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते” । इति वैजावापस्मरणं
तत्सर्वं नालछेदात्पूर्वमेव जातकर्मशाद्वं च कर्तव्यमित्येवंपरम् । तदाह सत्यब्रतः—“पुत्र-
जन्मन्या नाभिकर्त्तनात्पुण्यं दानं कृतं जातकर्मशाद्वं कुर्यात्” इति ॥ दानप्रतिग्रहयोस्तु कृत्स्नं
जन्मदिनं प्रशस्तमेव बहुसृतिसंमतत्वात् । तत्र वृद्धमनुः—“जाते कुमारे तदहः कामं कुर्या-
त्प्रतिग्रहम्” । याज्ञवल्क्यः (प्रा. १९)—“तदेहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात्” हर-
दत्तश्च—“जाते कुमारे पितृणामामोदात्पुण्यं तदहः” । आमोदो हर्षः । गौतमः—
“प्राङ्गनाभिवर्धनात्पुण्यं तदहरित्येके” । शंखश्च—“कुमारप्रसवे नाभ्यामच्छिन्नायां गुडति-
लहिरण्यवस्त्रगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषस्तदहरित्येके” इति । संग्रहेऽपि—“पुण्यत्वात्पुत्रजन्माहे
देयं ग्राह्यं सदा पर्ते” इति । जातुकर्ण्यः—

“सृताशौचे समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचे निर्गते कुर्याज्जातकर्म च नाम च ॥

“जननाशौचमुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । जननानंतरं कुर्याज्जातकर्म यथाविधि” ॥ पूर्णसंश्वरे—

“ग्रहणे चैव गंगायां पुत्रस्यैव च जन्मनि । आशौचं नास्ति भुक्तोऽपि स्नानदानादिकं चरेत्” ॥ इति ।

२० प्रजापतिः—

“आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्धयति” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“जाते पुत्रे पिता स्नात्वा रात्रौ संध्ययोग्रहणे वा वृद्धिशाद्वं कृत्वा जातकर्म
कुर्यात् । आशौचांतरमध्ये च कुर्यात्” इति । आशौचांतरमध्ये कुर्यादिति पुत्रजन्मन्याहि-
ताम्नेष्टिः श्रूयते (तै. सं. २।२।५)—

२५ “वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते यदष्टाकपालो भवति गायत्रियैवैनं ब्रह्मवर्चसेन
पुनाति यन्नवक्षपालस्त्रिवृतैवास्मिंस्ते जो दधाति यद्वशकपालो विराजैवास्मिन्नन्नायं दधाति
यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्निद्रियं दधाति यद्वादशकपालो जगत्यैवास्मिन्पशून् दधाति
यस्मिन्नात एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव तेजस्व्यन्नाद इंद्रियावी पशुमानभवति” । यदष्टाकपाल
इत्यादिना द्वादशकपालः श्रूयते । जातस्य पूतत्वादिकमिष्टः फलमिति दर्शयति । यस्मिन्नित्यादिना

३० इयं चेष्टिः काम्या आर्थर्वादिकपुत्रगतब्रह्मवर्चसादिकाननासंवलितस्यैव जन्मनोऽधिकारहेतुत्वा-
भ्युपगमान्नजातेष्टिः प्रवृत्तेश्च जीवत्पुत्रगतपुत्रत्वादिफलरागाधीनत्वात्पुत्रजन्माख्यनिमित्त-
संयोगेन श्रुतापीहेयमिष्टिर्यदीप्त्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेतामावास्यायां पौर्णमास्यां
वेति विधिना आशौचानंतरं पर्वण्येव कर्तव्या जननानंतरमेव संशासनात् जातकर्म कर्तव्यम् ॥

स्मृतिरत्ने—

“ सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मगलशालिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

“ स्वनक्षत्रे च पितरस्तथा देवाः प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात् कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ” ॥

इति जातकर्म । अथ नामकरणम् । तत्र मनुः (२।३०)—

“ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते” ॥
दशम्यां द्वादश्यां तिथौ जन्मदिनाद्वामे द्वादशे वा दिवस इत्यर्थः । पुण्ये मुहूर्ते इत्यन्वयः । ५
यमः—

“ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये नक्षत्रदिवसे मुहूर्ते वा गुणान्विते” ॥

गोभिलः— “ दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात् ” इति । बहूचपरिशेषेऽपि—

“ जननाद्वारात्रे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् ” इति । याह्नवलक्यः (आ. १२)—

“ अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ” ॥ १०
स्मृतिरत्ने— “ ततस्तु नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।

“ यदा पितुरभावः स्याद्योग्यत्वमथापि वा । अन्यो वा कुलवृद्धो वा जातकर्मादि कारयेत् ” ॥

कुर्यादित्यर्थे । शंखोऽपि— “ कुलदेवतानक्षत्राभिसंबंधं पिता कुर्यादन्यो वा कुलवृद्धः ” इति ।

द्यासः— “ नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छ्रुते सूरयः । द्वादश्यामथवा रात्रौ मासे पूर्णे तथापरे ॥

“ अष्टादशेऽहनि तथा वदंत्यन्ये मनीषिणः ” ॥ पारस्करः— (१।१७।१) “ दशम्यामुत्थाप्य १५

ब्राह्मणान्मोजयित्वा पिता नाम करोति ” इति । शङ्खोऽपि— “ दशम्यामुत्थाप्य पिंडविवर्धनं पितृणां तत्र सांनिध्यम् ” इति । उत्थाप्य पूर्वशश्यातः । पिंडविवर्धनं श्राद्धम् । नामस्वरूपमाह मनुः (२।३१)—

“ मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुस्तिम् ” ॥

मंगलबलधननिंदाप्रतिपादकान्येव तेषां क्रमेण नामधेयानि भवतीत्यर्थः ।

स एवोपपदान्यथाह (२।१२)—

“ शर्मवद्वाह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् । वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्य संयुतम् ” ॥

शर्मरक्षापुष्टिप्रेष्यवाचकान्येव तेषां क्रमेण उपपदानीत्यर्थः । एवं चैव नामधेयानि भवति ।

भद्रशर्मा शक्तिपालो धनपुष्टो हीनदास इति । अन्ये तु शर्मादीनामर्थपरत्वं मन्यंते । न तु शब्द-परत्वम् । अस्मिन्मते सुमत्रिः धूतराष्ट्रः निधिपालः पशुसंघ इत्यादीनि भवति । यमोऽप्युत्तरपदे २५
विशेषमाह—

“ शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्म त्राता च भूभुजः । भूतिर्देत्तश्च वैश्यस्य दास्यं शूद्रस्य कारयेत् ” ॥ इति ।

अत्रापि मंगल्यं ब्राह्मणस्येत्यादि मनूक्तः पूर्वपदे नामधेयानि द्रष्टव्यानि ।

एवं च भद्रशर्मा भद्रदेव इति वा ब्राह्मणस्य नामधेयम् । एवमितरेषामप्यूद्घातः । आश्वलायनः—

“ शर्मातं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु । गुप्तदासपदां तस्मादभिधा वैश्यशूद्रयोः ” ॥ ३०
आपस्तंवः (६।१५।८)— “ दशम्यामुत्थितायाऽस्नातायां पुत्रस्य नाम दधाति पिता माता ” इति ।

उत्थितायां सूतिकागृहान्निष्कान्तायां स्नातायाम् । एवं च दशमेऽहनि नामकरणे सूतीगृहा-

निर्गत्य स्नातव्यमित्युक्तं भवति । सूतिकाशुद्धचर्यर्थमेकादशेऽहनि च स्नानं भवति । इतिशब्दश्चार्थं प्रातापितरौ सहितौ नाम धत्त इति । इमर्थं मंत्रवर्णोऽप्याह— (तै. सं. १।५।१०) “ मम नाम प्रथमं

जातवेदः पिता नाता च व॒धृतुर्यज्ञे॑ इति । प्रकारांतरेण नान्नो लक्षणनाहापस्तंबः (६।१५।९-१०) -
 “ब्रह्मरं चतुरक्षरं वा नामपूर्वमाख्यातोत्तरं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं घोषवद्वाद्यन्तरंतस्थमपि वा यस्मिं-
 स्वित्युपसर्गः स्यात्तद्वि॒ प्रतिष्ठितमिति ब्राह्मणम्” इति । द्रव्यवाचकं सुब्रंतं पदं नाम तत्पूर्वं यस्य
 ५ तन्नाम पूर्वमाख्यातं क्रियावाचि क्रिवंतमुत्तरपदं यस्य नामः तदाख्यातोत्तरम् । दीर्घाभिनिष्ठानां
 दीर्घोऽभिनिष्ठानश्चांति यस्य नामः तत्तथोक्तम् । आभिनिष्ठान इति विसर्जनीयस्य पूर्वचार्याणां
 संज्ञा । घोषवान्वर्गान्तर्नीयवृत्त्वर्थो वा वर्ण आदिर्यस्य नामः तद्घोषवदादि । अंतरंतस्थं अंतः
 मध्ये अंतस्था यगलवद्यस्य नामस्तत्तद्वक्षरस्य वार्दा गीर्दा इत्याद्युदाहरणं वा । उदकं
 ददातीति वार्दा॑ः । गीरं ददातीति गीर्दा॑ः । चतुरक्षरस्य हिरण्यदा इत्यादि । अपि वेति ब्रक्षरादि-
 विशेषणोर्बिकृत्यः । यस्मिन्नाम्नि स्वित्ययमुपसर्गः स्यात्तन्नाम प्रतिष्ठितं आयुष्मद्यज्ञादि-
 १० क्रियावच्च भवति । यथा सुजातः सुदर्शन इत्यादि । वैजावापः—“पिता नाम करोतीत्येका-
 शं ब्रह्मरं ब्रह्मरं चतुरक्षरमपि मितं वा घोषवदा ब्रंतरंतस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तमिति
 कुदंतं कुर्यान्नतद्वितांतम्” इति च । वांधायनः विकृत्पांतराण्याह (२।१२८-२९)—
 “क्रत्यणुकं देवताणुकं वा यथा वैषां पूर्वपुरुषाणां नामानि स्युः” इति । अणूकमभिधायकम् ।
 दाह्यतोऽपि—“कुलेदेवताग्नक्षत्राभिसंबन्धं पिता कुर्यात्” इति । स्त्रीणां नामधेयं मनुराह (२।३३)-
 १५ “स्त्रीणां सुखोद्यमक्रं विशप्त्यार्थं मनोहरम् । मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्” ॥ इति ।
 सुखांशं सुखोद्यमान्तर्णक्षमम् । दीर्घवर्णः आकार ईकारो वा । अत एव पारस्करः (१।७।४)—
 “अयुगाक्षरमाकारान्तं स्त्रियाः” इति । शांखोऽपि—“ईकारांतं स्त्रीणामेवं कुते नान्ने शुचि-
 तत्कुलं भवति” इति । आपस्तंबोऽपि (६।१५।११)—“अयुजाक्षरं कुमार्याः” इति । अयुजाक्षरं
 विषमाक्षरम् । अयुजाक्षरमिति छांदसम् । यथा श्रीः यशोदा पार्वतीति । अत्र यथास्वगृह्यं
 २० यथाकुलाचारं वा व्यवस्था । इति नामधेयम् । कर्णवेधः सायणीये दर्शितः—
 “क्रातिके पौष्पमासे वा चेत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्रं पक्षे शुभे दिने ॥
 “शिशोऽजानदंतस्य मातुरुत्संगमपिणः । सौचिको वेधयेत्कर्णो सूच्या द्विगुणसूच्या” ॥ इति ।
 इति कर्णवेधः । अथ निष्क्रमणम् । मनुः (२।३४)—“चतुर्थं मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गुहात्” इति । स्मृतिचान्द्रिकागां (पृ. २१-३१; पृ. २२, पं. १-३)—
 २५ “द्वादशोऽवनि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गुहात् । चतुर्थं मासि कर्तव्यं तथा उन्यषां मतं विभो” ॥
 निष्क्रमणान्तवः कर्तव्यमाह शाङ्कवः—“चतुर्थं मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम्” ।

यमापि—

“ततसृतीयं कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्थनम् । चतुर्थं मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गुहात्” ॥ इति ।
 तथा स्मृतवर्थसारं—“निष्क्रमणं चंद्रसूर्यदेवतादर्शनं च द्वादशोऽवनि त्रृतीये चतुर्थं वा मासि
 ३० कुर्यात्” इति । इति निष्क्रमणम् ॥ अथान्नप्राशनम् । तत्र मनुः (२।३४)—

“षष्ठोऽन्नप्राशनं मासि यच्चेष्टं मंगलं कुले” । यमः—

“ततोऽन्नप्राशनं मासि षष्ठे कार्यं यथाविधि । अष्टमे वाऽपि कर्तव्यं यच्चेष्टं मंगलं कुले” ॥
 लोकाक्षिः—“षष्ठे मासेऽन्नप्राशनं जातेषु दंतेषु वा” इति । शंखः—“संवत्सरात्प्राक्संवत्सर
 इत्येक” इति । आपस्तंबः (५।१८।१)—“अन्मनोऽधिष्ठेष्टे मासि ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽशिष्टो

वाचयित्वा दधिमधुघृतमोदनमिति सःसूज्योत्तरैर्मैत्रैः कुमारं प्राशयेत् ” इति । जन्मनोऽधि
जन्मदिनमागम्य दिवसगणनया षष्ठे मासे । यदाह बृहस्पतिः—

“पंचाशाद्विवसात् त्रिम्बात् पश्चात् त्रिहतषष्टिकात् । अर्वागेवोत्तमा भुक्तिः ” इति । अत्रापि
यथास्वगृह्यं व्यवस्था । मार्कडेयः—

“देवतापुरतस्तस्य धात्युत्संगगतस्य च । अलंकृतस्य द्रातव्यमन्नं पात्रे च कांचने ॥ ५

“मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत्पायसं ततः । कृतप्राशमयोत्संगात् धात्री वालं समुत्सृजेत् ” ॥

अन्नप्राशनानंतरं बालस्य जीविकापरीक्षामाह स एव—

“तस्याग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभांडानि सर्वेणः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येनु लक्षणम् ॥

“प्रथमं यत्सप्तशेषद्वालस्ततो भांडं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भनिष्यति” ॥ इति ।

इत्यश्वप्राशनम् । अथ चूडाकरणम् । तत्र भनुः (२०३५)— १०

“चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽद्वे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्” ।
द्विजातिग्रहणेन शूद्रपर्युदासः । चूडा शिखा । धर्मतः कुलधर्मतः । श्रुतिचोदनादिति श्रूयते हि—
(क्र. सं. ५११२२; तै. सं.)

“यत्र वाणाः संपतंति कुमाग विशिखा इव ” इति । याज्ञवलक्ष्यः (आ. १२)— “षष्ठेऽन्न-
प्राशनं मासे चूडा कार्या यथाकुलम् ” ॥ इति शौककोऽपि—“तृतीये वर्षे चौलं यथाकुल- १५
धर्म वा ” इति । यस्मिन्कुले यदा येन प्रकारेण चूडाकर्म तथा तथैव कार्यमित्यर्थः । यमः—

“ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।

यथाकुलं यथाशाखं चूडा कार्या द्विजातिभिः ” ॥ वैजावापः—“त्रिवर्षे चूडाकरणम् ” इति ।

शंखः—“तृतीये वर्षे चूडाकर्म पंचमे वा ” । इति । लोगाक्षिः—“तृतीयस्य वर्षस्य भूयिष्ठे

गते चूडां कारयते दक्षिणतश्चूडा वासिष्ठानां वामतो भागद्वाजानामुभयतः काइयपानाम् ” ॥ २०

मूकुंडुः—“पंच चूडा आंगीरसो वाजिभेके मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथा कुलधर्मं भवति ” ।

वाजिः केशपंक्तिः । अन्ये तु शिखामात्रं यत्रकश्चन मंगलार्थं कुर्वतीत्यर्थः । आपस्तंबः

(द्व. १६. द. -७)—“यथर्षि शिखा निदधाति । यथा वैषां कुलधर्मः स्यात् ” इति । यथर्षि यावतो

ऋषयः स्वप्रवरं तावतीः शिखा निदधाति । एकार्षेयस्यैका शिखा द्वार्षेयस्य द्वे शिखे इत्यादि ।

अथवा येन प्रकारेण येषां कुलजानां धर्मः प्रवर्तते तथा शिखा कर्तव्येत्यर्थः । अत्र च जन्म- २५

प्रभृतिवर्षसंख्या वेदितव्या । “जन्मनोऽधितृतीये वर्षे चौलं पुनर्वस्त्रोरितिथः । इत्यापस्तंबस्मर-

णात् । (गृ. १६. ३) अधितृतीये अर्धाधिकतृतीये अत्र पुनर्वसुप्रहणं विहितनक्षत्रोपलक्षणार्थम् ।

अत एव व्यासः—

“अश्विनीश्रवणस्वातीचित्रा पुष्यपुर्वसु । धनिष्ठारेवतीज्येष्ठामृगहस्तेषु कारयेत् ॥

“नक्षत्रे तु न कुर्वति यस्मिन्जातो भवेन्नरः । न प्रोष्ठपद्योः कार्यं नैवाग्रेये च भारत ॥ ३०

“तिथिं प्रतिपदं रिक्तां विष्टि चैव विसर्जयेत् । वारं शनैश्चरादित्यभौमानां रात्रिमेव च ” ॥ इति ।

गर्गः—

“पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात् क्षौरं विवर्जयेत् ” ॥

नारदः—

“सूरोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पंचाद्वात्प्रागथोर्धर्वे तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥

“आरभ्याधानमाचौलात्कालातीते तु कर्मणाम् । आज्यव्याहृतिभिर्हृत्वा प्रायश्चित्तं यथाचरेत् ॥
“एतेष्वैकैकलोपे तु पादकृच्छ्रङ्गं समाचरेत् । चौलकेऽर्थं तु सर्वत्र मत्या तु द्विगुणं चरेत्” ॥
इति चौलकर्म । अथ स्त्रीणां जातकर्मादि । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. १३)—

“तूष्णीमेताः क्रिया स्त्रीणां विवाहश्च समंत्रकः” । एता जातकर्मादिचूडाकरणपर्यताः
५ क्रियास्तूष्णीं विना मंत्रेण कार्या इत्यर्थः । मनुरापि (२।६६)—

“अमंत्रका तु कार्येण स्त्रीणामावृद्धेष्वतः । संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्” ॥
आबुत् जातकर्मादिक्रिया । गोभिलस्तु विशेषमाह—“तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणाममंत्रेण तु होमः”
इति । स्त्रीणामप्युक्तकालातिक्रमे प्रायश्चित्तमाह कात्यायनः—

“संस्कारा अतिपद्येरन्स्वकालाच्चेत्कथंचन । हुत्वैतदेवकर्तव्यं यत्तूपनयनादयः” ॥ इति ।
१० एतदेव सर्वप्रायश्चित्तमेव । सर्वप्रायश्चित्तमपि तेनैवोक्तम् । “सर्वप्रायश्चित्तं च पंचभिः प्रत्यृचं
‘त्वन्नो अग्ने’ इति द्वाभ्याम् ‘अयाश्वाग्ने’ ‘येशतम्’ ‘उदुत्तम्’ इति च” इति । स्त्रीणामुपनयनकाला-
तिपत्तौ व्रात्यप्रायश्चित्तं भवत्येवेति चांद्रिकायां (पृ. २४ पं. ७) । स्त्रीणां विवाह एतोपनयन-
मित्याह मनुः (२।६७)—

“वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौ वासो ग्रहार्थोऽग्निपरिक्रिया” ॥ इति ।
१५ तत्र गुरुकुलवासोऽग्निकार्यं चोन्नर्धेनोक्तः । पतिसेवा गुरुशुश्रूषा गृहकृत्यकरणमग्निपरिचर्येत्यर्थः ।
अतश्चात्रापि तत ऊर्ध्वं कामचरादिवर्जनं “प्रागुपनयनात्कामचारवादेत्यादि” (गौतमसू. २।१।२)
च समानम् । यत्तु हारीतेनोक्तं “द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनी-
नामुपनयनमश्रींधनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्या” इति “सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे
कथंचिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः” इति तत्कल्पांतराभिप्रायम् । तथा च यमः—

२० “पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीवंधनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ॥
“पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः ।

“स्वगृहे चैव कन्याया भेष्टचर्या विधीयते । वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेव च” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे—“एते संस्कारा वीजगर्भदोषापनुपत्तये यथास्वाचारं कार्याः स्त्रीणां तूष्णीं स्युर्विं-
वाहस्तु समंत्रकः । स्वकालातिक्रमे व्याहृतिहोमपूर्वं कार्या । एतेषामैकैकलोपे पादकृच्छ्रङ्गं मत्यालोपे
२५ द्विगुणः” इति । इति जातकर्मादि ।

अथाक्षराभ्यासः । मार्कडेयः—

“प्राप्ते तु पंचमे वर्षे ह्यप्रसुते जनार्दने । षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाऽष्टमीम् ॥

“रिक्तां पंचदशीं चैव सौरभौमदिने तथा । एवं सुनिश्चिते काले विद्यारंभं तु कारयेत्” ॥

सायणीये—

३० “उत्तरायणगे सूर्यं कुंभमासं विवर्जयेत् । बालस्य पंचमे वर्षे प्राप्ते भानौ कुलीरगे ॥

“आरभेताक्षरं तत्र शुभकाले यथोदिते ॥

“वारे दिनेशभूगुपुत्रबृहस्पतीनां विद्वानसौ भवति योऽपि विमूढबुद्धिः ॥

“चंद्रे च चंद्रतनये च भृशं च सत्वविघ्नकरोत्यवनिजो विजयो विनाशम् ॥

“दैष्णवादित्यतिष्येदुश्रविष्णास्वातिवारुणाः । मैत्रेण्द्रहस्तचित्राश्च विद्यारंभेषु पूजिताः” ॥

मार्कडेयः—

“ पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥
 “ एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥
 “ प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वारुणाभिमुखं शिशुम् । अध्यापयेत्तु प्रथमं द्विजाशीर्भिः सुपूजितिम् ॥
 “ततः प्रभृत्यनध्यायान्वर्जनीयान् विवर्जयेत् । अष्टमीद्वितयं चैव पक्षान्ते च दिनद्वयम्” ॥ इति । ५
 इत्यक्षराभ्यासः ॥ “ अथानुपनीतधर्माः । अत्रापस्तम्बः (२।१५।१९-२५) — “आऽन्नप्राश-
 नाद्गर्भा नाप्रयता भवन्त्या परिसंवत्सरादित्येके यावता वा दिशो न प्रजानीयुः । ओपनयना-
 दित्यपरम् । अत्र ह्यधिकारः शास्त्रैर्भवति । सा निष्ठा । स्मृतिश्च ” इति । अन्नप्राशनात्प्राक् गर्भा
 बाला अप्रयता न भवन्ति रजस्वलादि स्पर्शेऽपि । यावत्संवत्सरो न परिपूर्यते तावन्नाप्रयता इत्येके
 मन्यन्ते । यावद्वा दिग्विभागज्ञानं नास्ति तावन्नाप्रयताः । उपनयादर्वाङ्गाप्रयता इत्यपि दर्शनम् । १०
 अत्रोपपत्तिरत्र ह्यधिकार इति हि यस्मादत्र ह्युपनयने सति विधिनिषेधशास्त्रैरधिकारो भवति ।
 सा निष्ठा तदुपनयनमवसानमधिकारस्यास्मिन्नर्थे स्मृतिश्वास्तीत्यर्थः । तथा दक्षः—
 “ जातमात्रः शिशुस्तावद्यावद्षट्समा वयाः । सोऽपि गर्भसमो ज्ञेयो गर्भमात्रप्रकाशितः ॥
 “भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथाऽनृते । आस्मिन्काले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥
 “ उपनीते च दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगहितः ” ॥ इति । न चापेय इत्यनेन मध्यादिपाने न दोष १५
 इति शंकनीयम् । ‘वर्जयेत्’ इत्यनुवृत्तौ ‘नित्यं मद्यं ब्राह्मणः’ इति गौतमस्मरणात् (२।२५) ।
 तत्र च नित्यग्रहणमनुपनीतस्यापि प्रतिषेधार्थं न च प्रागुपनयनात्ब्राह्मण्यमेव नास्तीत्यपि
 अंकनीयम्—

“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव ह्युत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः । सर्वोभ्यः सर्वर्णसु जायन्ते हि स जातयः” ॥
 इति हारीतयाज्ञवल्क्याभ्यामुत्पत्तिमात्रेण साजात्यस्याभिधानात् (आ. ९०) “ गर्भष्टमेऽब्दे २०
 कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनमिति ” मनुना (२।३६) ब्राह्मणस्य सत उपनयनविधानाच्च ।
 गौतमः (२।१-१०) — “ प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षोऽहुताद्ब्रह्मचारी यथोपपादितमूत्र-
 पुरीषो भवति । नास्याऽचमनकल्पो विवते । अन्यत्रापमार्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शना-
 दाशौचं । न त्वैवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुञ्ज्यात् । ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयना-
 दुपनयनादिर्नियमः ” । कामचार इच्छाचरणम् । कामवादोऽश्रीलालृतादिभाषणम् । कामभक्षः २५
 पर्युषितादिभक्षणम् । एतेषु प्रागुपनयनात्र दोषः । एतच्च महापातकव्यतिरिक्तविषयं “ स्यात्का-
 मचारवादभक्षोक्तिर्महतः पातकाहृत ” इति स्मरणात् । तत्करणे प्रायश्चित्तं भवत्येव ।
 “ आशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यनष्ठोऽशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥
 “उनैकादशवर्षस्य पंचवर्षात्परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥
 “ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् । राजदंडश्च नास्यातः प्रायश्चित्तं च नेष्यते ” इति ॥ ३०
 अत्र यद्यपि सामान्येन प्रागुपनयनादित्युक्तं तथापि षष्ठाद्वर्षात्प्रागेव कामचारादि द्रष्टव्यम् ।
 ततः परं पित्रादिभिर्वर्णधर्मेषु नियोक्तव्यः । अनियुञ्जानास्तु प्रायश्चित्तिनो दण्ड्याश्वेति
 मिताक्षर्या क्वचित्कामभक्षणस्यापवादमाह । अहुताद्गुतश्चिष्टं चरुपुरोडाशादितदत्तीति । अहुतात्
 न हुताद्यथाऽयमहुतात्स्यात्तथा पित्रा नियुज्येतेत्यर्थः । तथा च यमः—

“ वैश्वदेवं पुरोटाशमग्निमध्याच्च यन्हुतम् । यद्द्वाच्छिष्ठुराकृष्य मात्रा रक्ष्यः प्रयत्नतः” ॥ इति ।
वैश्वदेवं वैश्वदेवशिष्टम् । कामाचारस्यापवादः । ब्रह्मचारीति गर्भाष्टमादावुपनयनातिक्रमेऽपि
स्त्रीपु न प्रसन्नेत न च ब्रह्मचारीत्येतत ब्रह्मचारिधर्मप्राप्त्यर्थमिति शंकनीयम् ।

“ न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिद्दामोऽजीवन्धनात् । वृत्त्या शूद्रसमस्तावद्यावद्वेदे न जायते ”

५ इति वासिष्ठस्मरणात् (२६) । यथोपपादेति मूत्रपुरीषौ यथोपपद्यते तिष्ठतः प्राह्ममुखस्य पथि
कृष्णद्वौ तथेव तां कुर्यात् । नास्येति अस्यानुपनीतस्य कल्पप्रतिषेधात् आचमनमात्रमनुज्ञायते ।

१० तच्च “ स्त्रीशूद्रौ तु सङ्कृत सङ्कृत् ” इति “ स्त्रीशूद्रेण समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ” इति
रूपरणात् । अन्यत्रेति अवमार्जनमुच्छिष्ठलिपस्य हस्तादेः सोदकेन पाणिना शोधनम् । प्रधावनं गुदे
शोधनम् । अबोक्षणं रजस्वलादिस्पृष्टस्य प्रोक्षणम् । यद्यप्यवमार्जनादयः आचमनकल्पेनान्तर्भवंति

१५ तथापि पर्वुदाससुखेन ते विर्धायन्ते । एतत्रितयं षष्ठवर्षात्प्रागिति बालस्य भूतपिशाचादिभ्यो
रभार्थं कुर्यात् । तदाह शातातपः— “ बालानां पंचमवर्षाद्विक्षार्थं शौचं कुर्याच्छुद्ध्यर्थं परतः
स्वयंस्व कुर्यात् ” इति । पञ्चवर्षाद्विर्वं चंडालादिस्पर्शं स्नापयितव्यः । गौतमः (२७)—

२० “ न तदुपस्पर्शनाऽश्वाच्चां ” । षष्ठवर्षात्प्रावचण्डालादिस्पृष्टस्य तस्यानुपनीतस्याशुचित्वं । न तस्योप-
स्पर्शनन स्नानं भुक्तोच्छिष्ठस्य कृतमूत्रपुरीषस्य चोपस्पर्शनेऽपि नाचमनमिति हरदत्तः । स्मृति-

२५ चंद्रिकादां तु विशेषो दर्शितः । आचमनकल्पप्रतिषेधात्स्त्रीशूद्रवदाचमनमात्रमवमार्जनादिकं
चास्ति तावन्मात्रेण तस्य प्रयत्नानदुपस्पर्शनातिपत्रादेशुद्धिर्नास्ति । न तु चण्डालादिस्पृष्टस्य
तस्य म्पर्वेऽपि गौतमवादे चण्डालादेशप्रकृतत्वात् “ पतितचण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टि-
तत्स्पृष्टच्छुपस्पृष्टच्छुपस्पर्शने सचैलम् ” इत्यत्र (अ. १४ सु. २७) वयोविशेषानभिधानाच्चेति न त्वे-
वेनमाग्निहवनबलहरणयोर्नियुञ्ज्यानमनुपनीतमग्निहवने औपासनहोमादौ वैश्वदेवे यद्वलिहरणं

३० तत्र च न नियुञ्जीत तस्य मंत्रविहीनत्वादित्यमिप्रायः । न च मंत्रान्ग्राहयित्वा विनियोग
इत्याह (२८) “ न ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ” इति । स्वधानिनयनं प्रेतकर्म ।
तत्रानुपनीतस्यापि मंत्राध्ययनमविरुद्धमित्यर्थः । मनुरपि (२१७१—१७२)—

३५ “ न ह्यस्मिन्न्युज्यते कर्म किञ्चिद्दामोऽजीवन्धनात् । नाभिव्याहारयेऽव ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थस्तरे— ३६ उपनयनात्प्रागुच्छिष्ठादावप्रयता न स्युः महापातकवर्जे तेषां चण्डालादि-
४० स्वदेवे नचलस्वानं प्राग्नप्राशनाऽभ्युक्षणं प्राङ्गचौलादाचमनं पश्चात्स्नानमित्येके पित्रोः
स्वप्नानिनयनादृते च सन्त्राल न द्रुयुः ” इति । आपस्तंजः (२१५।१६—२५)— “ अन्नप्राशना-
द्वर्मानाश्रयत् । अन्नेन यस्मिन्दत्तुगदित्यक यावता वा दिशो न प्रजानीयुरोपनयनादित्यपरम् ।
अत्र द्यधिकारः शास्त्रेर्भवति मा निष्ठेति पित्रोः स्वधानिनयनादृते च मंत्रान्न त्रुयुरिति ” ॥ वासिष्ठः—

४५ (२९)— “ अन्यत्रोदकर्मस्वधापितृसंसक्तभ्यः ” इति । इत्यनुपनीतधर्माः ॥

५० अथोपजयनम् । तत्र अनुः (२३३)—

५५ “ गर्भाष्टमात्रे कुर्यात ब्राह्मणस्योपनयनम् । गर्भादिकादेशे राजो गर्भात् द्वादशे विशः ” ॥
गर्भाष्टमे गर्भादिरभ्याष्टमे उपनयनस्वदेशपनयनम् । अब्दसेव्यानियमस्यायममिप्रायः । ब्रह्म-
भूतविशां गायत्रीत्रैद्वुभजागतेः छंदोभिः सहजत्वं श्रूयते । (ते. सं. ७।१।४)— “ गायत्री-
छंदो ग्रथंतरः साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या मुखतो ह्यसृज्यतेति ।

त्रिष्टुप्छंदो वृहत्साम राजन्यो मनुष्याणामविः पशूनामिति । जगती छंदो वैरूपः साम वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनाम्” इति च । गायत्र्यादिभिरेतेषामुपनयनं च स्मर्यते (वासिष्ठे ४३)-“गायत्र्या ब्राह्मणमुपनयीत । त्रिष्टुभा राज्यन्यं जगत्या वैश्यम्” इति । ततश्चोपनयनाद्वा अपि स्वस्वच्छंदोक्षरसमसंख्या भावितुमर्हतीति छन्दसां चाक्षरसंख्या श्रूयते (ते. सं. ३।४।१७)-“अष्टाक्षरा गायत्री एकादशाक्षरा त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरा जगती” इति । एकैकपादाभिप्रायेयम् । तथा च श्रुतिः । (तै. सं. २।५।१०।३)-“ चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती ” इति । हारीतः—“ छंदःसु पादाक्षरसमुदायवद्वद्वत्समूहे उपनयनम् ” इति । गायत्र्यादिपादाक्षरसंमितेऽद्व इत्यर्थः । ततश्चाष्टमैकादशद्वादशेष्वेव वर्षेषु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां मुख्यमुपनयनमिति । याज्ञवल्क्यः (आ. १४)--

“गर्भाष्टमेऽष्टमे वाद्वदे ब्राह्मणस्योपनायनम् । राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्” ॥ १-
गर्भाज्जन्मनो वाऽरभ्याष्टमे । विशः वैश्यस्य । सैके एकादशे द्वादश इत्यर्थः । कुलस्थित्या केचि-
दुपनयनमिच्छन्ति । श्रुतिरपि—“अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत” इति । अत्रापस्तम्बः (४।५।०।२-४)-
“ गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भेकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यं वसन्तो ग्रीष्मः शरद्-
तवो वर्णानुपूर्व्येण ” इति । गर्भ अष्टमो एषामिति गर्भाष्टमाः । जननप्रभृति सम
गृह्यन्ते । एवं यद्यपि सप्तस्वप्युपनयनं प्रातं तथापि जन्मादित्रिष्टु चौलान्तसंस्कारं ॥ १-
रवरुद्धत्वाच्चतुर्थेऽप्यक्षराभ्यासाभावेनासामर्थ्यान्ति क्रियते अतोऽत्रोपादेयगता ब्रह्मवसंख्या
कपित्रिजलन्यायेन गर्भष्टसप्तमाष्टमेषु त्रिष्वेवावतिष्ठते । एवं च “ वर्षत्रयं मुख्यकाल ”
इत्यापस्तम्बमातिरित्येक । अन्ये तु गर्भाष्टमेषु एव वर्षे न तु षष्ठसप्तमयोः तयोर्गर्भाष्टमत्वा-
भावाद्वहुवचनं छान्दसमिति वदन्ति । अत्र यथाकुलान्तारव्यवस्था । गौतमः (१।६।८)--
“ उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोर्गम्भौदिसंम्यावर्षीणाम् ” इति । २-
काम्योपनयनमाह स एव (१।७)-“ नवमे पञ्चमे वा काम्यम् ” इति । यदाहांगिराः—
“ब्रह्मवर्चसकामस्य पञ्चमेऽन्द्रेऽग्रजन्मनः । आयुष्कामस्य नवमे कार्यं मौर्जीनिबन्धनम् ” ॥ इति ।
मनुः (२।३७)--

“ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो वलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे” ॥

अंगिराः—

२५

“ षष्ठे तथा द्वादशे च राज्ञो वृद्धिवलायुषोः । इहायुषोस्तु वैश्यस्य ह्यष्टमे च चतुर्दशे ” ॥
ईहा कृष्यादिविषया चेष्टा । स्मृतिरत्ने—

“ सप्तमे चाष्टमे वर्षे नवमे दशमे तथा । एकादशे द्वादशे च ह्युपनीयुर्द्विजातयः ॥

“ ब्रह्मवर्चसमायुष्यं तेजोन्नायं तथैव च । पशूश्च कामयाना वै प्राप्नुवन्ति यथाक्रमम् ” ॥ इति । ३-
बोधायनोऽपि (२।५।५-६)—“ सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं
दशमेऽन्नायकाममेकादश इंद्रियकामं द्वादशे पशुकामं त्रयोदशे मेधाकामं चतुर्दशे पुष्टिकामं
षंचदशे भ्रातृव्यन्तं षोडशे सर्वकामम् ” इति । तथा च भरद्वाजः—“ वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत
ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं वर्षासु रथकारम् ” इति । चन्द्रिकायां—

“ कर्तुर्वसन्तः कुभदोऽग्रजन्मनां ग्रीष्मो नृपाणां च शुराद्विशां च ॥

“ व्रतस्य वंधे यदि वाऽस्तिलानां माधौदयः पञ्च भवन्ति मासाः ” ॥

जयोतिःशास्त्रे च—“माधादिषु तु मौञ्जीबन्धः पञ्चसु शस्यत” इति ॥ धर्मसारसुधानिधौ—

“ विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं वनान्ते व्रतिनं विदध्यात् ॥

“ माधादिषुकान्तकपञ्चमासाः साधारणा वा सकला द्विजानाम् ” ॥ वृद्धवसिष्ठः—

५ “ विप्रस्य क्षात्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे तु विशां कुर्यान्नानध्याये न संक्रमे ॥

“ अनध्यायेऽपि कुर्वति यस्तु नैमित्तिको भवेत् ॥

“ ज्येष्ठे मासि विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि । उपनीतस्य पुत्रस्य जडत्वं मृत्युरेव च ” ॥

वृद्धगार्यः—

“ स्वाध्यायवियुजो धस्त्राः कुष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेस्वलाबन्धने मताः ” ॥

१० धस्त्राः वासराः ॥ व्यासः—

“ विप्रश्वातीतकालश्वेच्छस्ता शुक्ला चतुर्दशी । कुष्णे तु प्रतिपच्चेष्टा प्रायश्चित्तोपनायने ” ॥

अपराके—

“ नष्टे चन्द्रेऽष्टमे शुक्ले निरंशे चैव भास्करे । कर्तव्यं नोपनयनं नानध्याये गलग्रहे ॥

“ राशेः प्रथमभागस्थो निरंशः सूर्य उच्यते । त्रयोदशीचतुष्कं तु सप्तम्यादित्रयं तथा ॥

१५ “ चतुर्थर्येकादशी प्रोक्ता नंव चैतै गलग्रहाः ॥

“ गुरुभूर्गुसुतो धात्रीपुत्रः शशधरात्मजः । स्युरोते क्रग्यजुःसामार्थर्वणामधिपाःक्रमात् ” ॥

धात्रीपुत्रोऽगारकः । शशधरात्मजो ब्रुधः । तद्वासरे तच्छाखीयस्य उपनयनं कर्तव्यमित्यर्थः । तथा सायणीये—

“ गुरोः कवेलोहितस्य अंगिरस्य च वासराः । क्रग्यजुःसामार्थर्वणां शस्ताः स्युर्वतबंधने ” ॥

२० वृद्धगार्योऽपि—“ बुधत्रयेदुवाराणि शस्तानि व्रतबंधने ” । स एव

“ शास्त्राधिपे वालिनिकेन्द्रगते तु मौञ्जीबन्धस्तदीयदिवसेषु सुखाय क्लृप्तः ॥

“ अस्मिन्वलेन राहिते तु पुनर्द्विजानां स्याद्वर्णसंकर इति प्रवदन्ति तज्जाः ॥

“ हस्तत्रये पृथ्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु ॥

“ शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यो द्विजानां व्रतबन्धमौक्षौ ” ॥

२५ द्विजत्वकारणमाह याज्ञवल्क्यः (आ. ३९)—

“ मातुर्यद्गे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् । ब्राह्मणक्षात्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ” ॥

वसिष्ठोऽपि (२१३)—“ मातुर्ग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ” । इति । मनुरापि (२१६९-१७०)—

“ मातुर्ग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने । ब्रुतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिचोदितम् ॥

३० “ तत्र यद्ब्रह्मजननं मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् । तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ” ॥

आचार्यस्य पितृत्वे हेतुमाह स एव (२-१७)—

“ वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते । न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ” ॥

वेदप्रदानात्सर्ववेदस्वरूपसावित्रीप्रदानादुपनयनाख्यम् । जन्मप्रदानादिति यावत् ।

आपस्तम्बः (१११६-१८)—

३५ “ स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छेष्टं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयतः ” ॥ इति ।

अथ गौणकालाः । तत्र मनुः (२१३८)—

१ क—अश्ववेते । २ ख—बुधस्यैव ।

“ आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवैर्तते । आ द्वाविंशात्क्षब्रवन्धोरा चतुर्विंशतेविशः ॥ ” ॥
सावित्री उपनयनम् । क्षत्रवन्धोः क्षत्रियस्य । आकारोऽत्राभिविधिवचनः । मुख्यकल्पसंख्या
द्वैगुण्यानुगुण्यात्तदाह व्यासः—

“ औपनायनिकः कालः परः षोडशवार्षिकः । द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः ॥ ” ॥ इति ॥
परः अन्तिमः । तत ऊर्ध्वं गौणकालोऽपि नास्ति इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. ३७)— ५
“ आ षोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशामौपनायनिकः परः ॥ ” ॥
आपस्तम्बः (११२७)—

“ आ षोडशाद् ब्राह्मणस्यानात्यय आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्य चतुर्विंशाद्वैश्यस्य ” ।
गौतमोऽपि (११३)— “ आषोडशाद् ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री ” इति । मनुः (२३९)—
“ अत ऊर्ध्वं त्रयोऽध्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवत्यार्यविगर्हिताः ॥ ” ॥ १०
अतः षोडशादिभ्यः । असंस्कृतः अनुपनीतः । सावित्रीपतिताः सावित्र्युपदेशहीनाः । व्रात्या:
व्रात्यनामानः । स्व एव (२४०)—

“ नैतैरपूर्वैविधिवदापद्यपि कदाचन । ब्राह्मान् यौनांश्च संबन्धान्नाचरेत् ब्राह्मणैः सह ” ॥ अपूर्वैकृत-
प्रायश्चित्तैः । ब्राह्मान् अध्ययनाध्यापनादीन् । यौनान्कन्यादानप्रतिग्रहादीन् । चन्द्रिकायाम्—
“ व्रात्यस्याकृतचित्तस्य न कार्दमुपनायनम् । अध्यापनं याजनं च विवाहादि विवर्जयेत् ” ॥ १५
यमः— “ समतिक्रान्तकालाश्च पतिताः सर्वं एव ते ॥ ”

“ ब्राह्मणक्षत्रियविशां कालश्वेदत्यगाद्यम् । सावित्रीपतिता व्रात्याः परिहार्याः प्रयत्नतः ॥ ” ॥ इति ॥
बोधानायनोऽपि— “ अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति । नैतानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न
विवाहयेयुः ” । एतानकृतप्रायश्चित्तानिति शेषः । प्रायश्चित्तमपि याज्ञवल्क्येनोक्तम् (आ. ३८)—

“ अत ऊर्ध्वं भवत्येते सर्वधर्मविष्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमाद्वते क्रतोः ॥ ” ॥ २०
व्रात्यस्तोमो व्रात्यानां प्रायश्चित्तार्थः क्रतुः । तं विहायान्यत्र नाधिकारः । तत्र त्वपत्नीकस्यानधीत-
वेदस्याकृताधानस्य वचनादधिकारः । इतिष्वस्तु प्रायश्चित्तान्तरमप्याह (११७६-७९)—
“ पतितसावित्रीक उद्वालकवतं चेतत्राद्वौ भासौ यावकेन वर्तयेन्मासं पयसाऽर्धमासमामिक्षयाऽष्टरात्रं
घृतेन षड्ग्रन्थमयाचितं त्रिसत्रमहोगत्रमुपवसेदश्वमेधावभूतं वा गच्छेद् व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् ”
इति । अस्यार्थः । उद्वालकमुनिना दृष्टं वत्सुद्वालकवतम् । तत्स्वरूपमाह । द्वौ मासावित्यादिना २५
यावको यवकृतं यवाशः । तयैव मासद्वयं वर्तते । अयाचितं तु सर्ववत्साधारणं हविष्यन्तच्च सङ्कृदेव ।
उपवासे तु उदकरथ्यैपि निवृत्तिः । पूर्वम्बभक्षणैव त्रिरात्रविधानादिति । आपस्तम्बः
(११२७-३१)— “ यथा व्रतेषु समर्थः स्याद्यानि वक्ष्यामः । अतिक्रान्ते सावित्र्याः काले कर्तुं त्रैविद्यकं
ब्रह्मचर्यं चरेत् । अथोपनयनम् । ततः संवत्सरमुदकोपस्पर्शनम् । अथाध्याप्यः ” इति । अस्यार्थो हर-
दत्तेनाभिहितः । यथा व्रतेषु समर्थः स्यात्तथैतावान् कालः प्रतीक्ष्यः । पूर्वमैव तु सामर्थ्ये सत्यष्टमवर्षा- ३०
व्यतिक्रमेऽपि प्रायश्चित्तं भवति । एवं षोडशादिभ्य ऊर्ध्वं कियन्तंचित्कालमसमर्थानां पश्चात्सामर्थ्ये
सति प्रायश्चित्तं भवत्येव । तच्च प्रायश्चित्तमाह । अतिक्रान्ते सावित्र्या इति । यः सावित्र्या काल उक्तः
तदतिक्रमे त्रैविद्यकं डयवयवा विद्याः त्रिविद्याः तामधीयते त्रैविद्याः । तेषामिदं त्रैविद्यकमेवंभूतं व्रतं
ब्रह्मचर्यमाग्निपरिचर्यामध्यग्रनं गुरुशुश्रूषा भिति परिभाव्य सकलं ब्रह्मचारिधर्मं चरेत्कियन्तं काल-
मृतुं ‘कालाध्वनोरत्यंतसंयोगे’ ‘द्वितीया । अथोपनयनं एवं चरितव्रतः उपनेतव्यः । ततः संवत्सर- ३५

मुद्दकोपस्पर्जनं नवानं कर्तव्यम् । भूकर्त्य त्रिष्वणस्तानमन्यस्य यथाशक्ति । अथाध्याप्यः । एवं चरितव्रतः पद्माद्याप्य इति । यसु जैमिनिकोत्तर—“ नातिषोडशवर्षमुपनयीत प्रस्त्रस्तवृषणो हेष वृषलीभृत ” इति तद्दृष्टप्रायश्चित्तविषयम् । स्मृत्यर्थसारं—“ उपनयनं गर्भजजन्मतो वाऽष्टमे वर्षे एकादशो द्वादशे वा विप्रादीनां क्रमात्कार्यमा षोडशादा द्वाविंशादा चतुर्विंशाच्च ५ विप्रादीनां क्रमात्कार्यमत ऊर्ध्वं सावित्रीपतिता व्रत्याः स्युस्तेषां चीर्णप्रायश्चित्तानामुपनयनाद्यः स्युः ” इति । इति गौणकालः । अथ यज्ञोपवीतम् । तत्र मनुः (२१४४)—

“ कार्पसिसुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । शाणसूत्रमयं राजो वैश्यस्याविकसूत्रकम् ” ॥ कार्पसाविकारः कार्पसिसु । सूत्रमिति यादत् । ऊर्ध्ववृतं सव्यहस्ततले न्यस्य दक्षिणहस्ततलेन ऊर्ध्ववर्तितम् । आविकसूत्रकमविरोमनिर्मितसूत्रमित्यर्थः । गृह्यपरिशिष्टेऽपि—“ उपवीतमयुगम- १० सरं विषमतंतुकं त्रिवृद्गोपवीतम् ” इति । अयुग्मसरमयुग्मगुणमेकंगुणो विषमतंतुकः त्रितंतुक अन्यथा नवतंतुकत्वव्यादातात् । तदाह देवलः—“ यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतंतुकम् ” इति । श्रुतिरादि “ नवं वै त्रिवृत् ” इति । कात्यायनः—“ त्रिवृद्वर्ध्वं वृतं कार्यं तंतुत्रयमधो वृतम् ” इति । वृहस्पतिः—

“ कार्पसिकं सदा दद्याच्छुच्चिं शेन्न विशेषाधितम् । जीवभर्तुकया नार्या ब्राह्मणया सूत्रकं कृतम् ” ॥ १५ स्मृतिः—

“ च्छेदे विनाशे वा स्नातः कन्यया नोर्मेते शुभम् । विधवादांभरथवा सूत्रं गृह्णीत वै शुचः ” ॥ भाघवीये—

“ यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूतं तु नवतंतुकम् । त्रिवृद्वर्ध्वं वृतं कार्यं तंतुत्रयमधो वृतम् ” ॥ ऊर्ध्ववृतस्य लक्षणमुक्तं चंद्रिकात्याद—

२० “ करेण दक्षिणेनोर्ध्वं गतेन त्रिगुणं कृतम् । वलितं वा त्रिकं सूत्रं त्रिवृद्वर्ध्ववृतं स्मृतम् ” ॥ ऊर्ध्वं गतेन दक्षिणेन करेण यद्वलितं तद्वर्ध्ववृतमित्यर्थः । प्रतितंतु देवताभेदानाह देवलः—

“ ओङ्कारः प्रथमसंतुर्द्वितीयोऽप्निस्तथैव च । तृतीयो नोगदेवत्यश्चतुर्थः सोमदेवतः ॥

“ पञ्चमः पितृदेवत्यः षष्ठ्यश्चैव प्रजापतिः । सप्तमो वायुदेवत्यो धर्मश्चाष्टम एव च ॥

“ नवमः सर्वदेवत्य इत्येता नव देवताः ॥

२५ “ ग्रामान्निष्कम्य संस्काय धण्णवत्यंगुलीषु तत् । तावत्त्रिगुणितं सूत्रं प्रक्षालयाब्लिंगकेस्त्रिभिः ॥

“ देवागर्इथ वा गोडे नवां वा ऽन्यत्र वा शुचौ । साविड्या त्रिविधं कुर्यान्निवसूत्रं तु तद्वेत ॥

“ अथ त्रिवेष्टितव्यं स्यात्पितृणां त्रिपितृं हि तत् । त्रिस्ताद्येत्करतलं देवानां त्रिपितृं हि तत् ॥

“ सद्ये सूतं शुर्वत्वाऽस्मिन् स्थापयेद्वृतिं ब्रुवन् । पत्रं पुष्पं फलं वापि व्याहृतीभिः प्रतिक्षिपेत् ॥

“ अभिमंत्याथ भूर्ग्निं चेति वर्गत्रयं त्रिभिः । हरिब्रह्मेश्वरेभ्यश्च प्रणम्यावाहेयेदिति ॥

३० “ यज्ञोपवीतमित्यादि मंत्रः स्याददधारणे । यज्ञोपवीतमंत्रेण व्याहृत्या वाऽपि धारयेत् ” ॥ गृह्यपरिशिष्टे—“ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तादायुष्यत्रयं प्रति मुंचं शुभं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ” इति धारणे मंत्रोऽभिहितः । बौधायनः—“ यज्ञोपवीतं प्रतिमुंचन्वाचयति यज्ञोपवीतं परमं पवित्राभिति ” । ग्रंथिनियममाह देवलः—“ एकेन ग्रंथिना तंतुः द्विगुणस्त्रिगुणोऽथ वा ” । परिमाणातरमप्याह कात्यायनः—

३५ “ त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ।

१ क-मण । २ क-वसु; स्व-विष्णु । ३ स्व-ते नेव तन्तवः । ४ क-श्वे । ५ क्ष-वादये;

“ पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दिते कटिम् । तद्वार्यमुपवीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रुतम् ”॥
वसिष्ठशातातपौ—

“ नाभेहर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपः क्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ”॥
एतदलभेऽपि परिमाणांतरमाह देवलः—“स्तनादृध्वमधो नाभेन्न कर्तव्यं कदाचन” इति ॥ भृगुः—

“ उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ”॥ ५
देवलः—

“ ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे वहनि वा । तृतीयमुत्तरीयं स्याद्वस्त्राभावे तदिष्यते ”॥
स्मृतिसारे—

“एकवेदस्य चैकं स्यादथवा वेदसंख्यया । वहनि चायुक्तामस्य व्यादिकाम्यं प्रचक्षते ”॥

भरद्वाजः—

१०

“ मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् । इक्षिणं वाहुमुद्धृत्य शिरसैव सह द्विजः ॥

“ गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः । मंत्रोच्चारग्रसाचामेद्वितयं क्रमशः स्मृतम् ॥

“ यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्तं च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयं तु वस्त्राभावे तदिष्यते ॥

“ एकैकमुपवीतं स्यादाद्यन्ताश्रमिणोद्दियोः । दशाईौ वा गृहस्थस्य चत्वारि वनवासिनः ॥

“ विना यज्ञोपवीतेन दिनमेकमपि द्विजः । स्थितः शूद्रत्वसायाति पुनः श्वानो भविष्यति ॥ १५

“ क्रोधाद्वा यदि वा लोभाद् ब्रह्मसूत्रं छिनत्ति यः । स कुर्यात्त्रीणि कुच्छाणि कुच्छमेकमथापि वा ”॥

भृगुः—

“ सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ”॥ इति
नै चानेन सदोपवीतित्वं कर्मकाल एवेति संकोचनीयम् । यतः स एवाह—

“ मंत्रपूतं स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् । नोद्धरेनु ततः प्राज्ञो यदिच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २०

“ कायस्थमेव तत्कार्यमुत्थाप्यं न कदाचन । सकृदुत्तारणात्स्य प्रायाद्वितीयते द्विजः ”॥

दयासः—

“ विना यच्छ्रित्याकर्म विना यज्ञोपवीतकम् । गङ्गसं तद्विज्ञेयं समस्ता निष्फलाः क्रियाः ”॥

अतोऽग्नीन्यनादेः पूर्वमेव यज्ञोपवीतं धार्यमुपनयने । भृगुः—

“ सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् । साविड्या दश कुच्छाऽद्विर्मिताभिस्तुक्षयेत् ॥ २५

“ विच्छिन्नं वाऽयतो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् । उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥

“ उपवीतमलंकारं स्तं चक्रमेव च ”॥ मनुस्तु—धृतयज्ञोपवीतादिविनाशे प्रतिपत्तिमाह(२४८)-

“ मेखलामजिनं दंडमुपवीतं कमंडलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मंत्रतः ”॥ इति ।

पितामहः—

“ य एतन्नाभिजानाति यज्ञसूत्रसमुद्धवम् । वेदोक्तं निष्फलं तस्य स्नानदानजपादिकम् ”॥ ३०

“ ब्राह्मणो यो न जानाति उपवीतस्य संस्थितम् । मोहात्मा वहते भारं पशुगांरिव सर्वदा ”॥ इति ।

उक्तोपवीतालौभेऽपि देवल आह—

“ कार्पासक्षौम्यगोवालशणवल्कतुणोद्धवम् । सदा संभवता धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ”॥ इति ।

तुणोद्धवं कुशनिर्मितम् । तथा च गोभिलः—“यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वस्त्रं कुशशज्जुं च ”॥ इति ।

सूत्रमपि वस्त्राभावे वेदितव्यम् । “ वाससा यज्ञोपवीतार्थान्कुर्यात्तदभावे विवृता सूत्रेण ” इति ३१

ऋब्यशृंगस्मरणात् । “नित्यमुक्तरं वासः कार्यमपि वा सूत्रमेवोपर्वीतार्थे” (२।४।२१-२२)
इत्यापस्तंवेन वाससोऽसंभवे अनुकल्पत्वेन सूत्रस्याभिधानाच्च । हारीतः-

“मुक्तामयोपर्वीतं च चार्मीकरमथापि वा । धार्यं तत्सर्ववर्णानां महादानादिकर्मसु” ॥
स्मृत्यर्थसारे—

- ५ “वस्त्रं यज्ञोपर्वीतार्थं त्रिवृत्सूत्रं च कर्मसु । शुचौ देशे शुचिस्तत्र संहतांगुलिमूलके ॥
“आवेष्टच्य षष्ठणवन्या तु त्रिगुणीकृत्य यत्नतः । अदिलंगेस्तु त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्वं वृतं तु तत् ॥
“अप्रदक्षिणमावृतं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् । अथ प्रदक्षिणावर्तं नवं स्थानवसूत्रकम् ॥
“त्रिरावेष्टच्य द्वट्टं वध्वा हरिव्रह्मेश्वरान्नमेत्” ॥ इति । दोधायनः—“ब्राह्मणकन्यकया
ब्राह्मणविधवया वा शुद्धस्नातया कृताचान्ततया निर्मितं सूत्रं शृहीत्वा प्राचीमुदीचीं वा दिश-
१० मुपनिष्ठकम्य चतुरंगुलमात्रषष्ठिवतिसूत्रपरिमिंडलम्” इति । स एव—
“चतुर्वेदस्य चत्वारि त्रिवेदस्य त्रिकं भवेत् । द्वे स्यातां वै द्विवेदस्य एकमेवैकवेदिनः” ॥ इति ।
कथं संनिवैद्यमुपर्वीतमित्यपेक्षायां अनुराह (२।६।३)—
“उद्धृते दक्षिणं पाणावुपर्वीत्युच्यते द्विजः । सव्ये तु प्राचीनावीति निर्वीती कंठसज्जने” ॥
१५ सूत्रस्य कर्णसज्जने निर्वीतमिति संज्ञा तदस्यास्तीति निर्वीती । निर्वीतस्य मध्ये दक्षिणे
पाणावुद्धृते यः संनिवेशविशेषः तदुपर्वीतं तदस्यास्तीत्युपर्वीती । सव्ये पाणावुद्धृते यः संनिवेश-
विशेषस्तप्तप्राचीनावीतं नाम तदस्यास्तीति प्राचीनावीतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः (सह वै उप-
निषदि)—“दक्षिणत उपर्वीय दक्षिणं वाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपर्वीतमेतदेव विपरीतं
प्राचीनावीतमिति ” । विषयविशेषमुपर्वीतादिना दर्शयति श्रुहिरेव (तै. सं. २।५।१।१)—
“निर्वीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपर्वीतं देवानाम् ” इति । निर्वीतं मनुष्याणां स्वं
२० मनुष्यकार्येषु क्रषितर्पणादिषु प्रशस्तम् । प्राचीनावीतं पितृणां कर्मणि पितृयज्ञादौ प्रशस्तम् ।
यज्ञोपर्वीतं देवानामिति कर्मणि अग्निहोत्रादौ प्रशस्तमित्यर्थः ।

द्यासः—

- ३० “उद्धृत्य दक्षिणं वाहुं सव्यांसे तु समर्पितम् । उपर्वीतं भवेत्त्वित्यं निर्वीतं कंठसज्जितम् ॥
“सव्यं वाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तद्धृतं द्विजैः । प्राचीनावीतमित्याहुः शिरूकर्षणि योजयेत् ॥
२५ “देवागरे गवां गोष्ठं होमं जप्य तथ्व च । स्वाध्याये भाजने नित्ये ब्राह्मणानां च संनिधां ॥
“उपासने गुरुणां च संध्ययोः साधुसंगमे । उपर्वीता भवेत्त्वित्यं द्विवेद्य तन्नातनः” ॥ इति ।
आपस्तंवाणीपि (१।१५।१)—“उपासने गुरुणां वृद्धानामतिवानां होमं जप्यकर्मणि भाजने
आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपर्वीती भ्यात् ” इति । एतेषु कर्षसु यज्ञोपर्वीतविधानात्कालान्तरे
नावद्यंभाव इति कंचिद्वाचक्षते ।
- ३० “कायस्थमेव तत्कार्यमुत्थाप्य न कदाचन । नद्रापवातिनः भाव्यं सदा वद्विशेषेन च ” ॥
इत्यादि वहुस्मृतिविरोधाच्छिष्टान्वारविग्रहाच्च तदनादृणीयामेत्यन्ये ।
उपनयनदीक्षामध्ये उपर्वीतहानौ उपनयनानंतरं दिवस्तुष्टुयमध्ये यज्ञोपर्वीतस्य हानौ

“गाहोषु कर्मस्वपराधवृष्टावब्राह्मणोक्तसु तु निष्ठकृतिः स्यात् ।

“एकाहुतिं व्याहुतीभिश्च हुत्वा स्मार्तेष्वदेश्च इहासुयाम्” ॥ इति न्यायेन सर्वप्रायश्चित्तं

हुत्वा अनाज्ञातवयं च जपं च कृत्वा पुनश्च यज्ञोपवीतं धार्यमित्याहुः ।
इति यज्ञोपवीतनिर्माणादि ॥

अथ दंडधारणम् । अत्र मनुः (२।४५)—

“ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियो बाटखादिरौ । पैप्पलौदुंबरौ वैश्यो दंडानर्हति धर्मतः” ॥
पैप्पलः आश्वत्थः । धर्मतः समानधर्मयोगादित्यर्थः । ब्राह्मणो वैल्वदंडं धर्मतोऽहंति । उभयोरपि ५
ब्रह्मवर्चससंबंधसामान्यात् । ब्रह्मवर्चसाधिकारणं ब्राह्मणः । वैल्वस्तु ब्रह्मवर्चसविकारः ।
“असौ वा आदित्यो यतो जायते ततो बिल्व उद्दिष्टस्य योन्येव ब्रह्मवर्चसमवरुद्धे” इति
श्रुतेः (ते. सं. २।१।८)–“ब्राह्मणः पालाशं चार्हति उभयोर्गायत्रत्वात् । “गायत्रो वै ब्राह्मणः
गायत्रः पर्ण” इति हि श्रूयते—“बाटदंडं क्षत्रियो धर्मतोऽहंति । उभयोरेकवर्णत्वात् तदुक-
मतरेयब्राह्मणे (७।५।५)—“क्षत्रं वा एतद्वन्स्पतीनां न्यग्राधः क्षत्रं गजन्य” इति । खादिरं १०
चार्हति उभयोर्बलिष्ठत्वसामान्यात् । वैश्यः पैप्पलमर्हति । अश्वत्थस्य वैश्योऽजः संबंधात् ।
“मस्तां वा एतदोजो यदश्वत्थः” (ते. सं. २।३।१।५)। “मस्तो वै देवानां विश्व इति हि” श्रूयते
(ते. सं. ५।४।७)॥ औदुंबरं चार्हति उभयोः पशुसंबंधसामान्यात् । पचुयालो वैश्यः प्रसिद्धः ।
पशुविकार उदुंबरः । “देवा वा ऊर्जं व्यभंजन्त तत उदुंबर उद्दिष्टत उक्तं पशवः” इति श्रुतेः
(ते. ब्रा. १।१।३)॥ वैल्वपालाशाविति द्वंदनिर्देशोऽपि विकल्प एव विवक्षितः । यदाह यमः— १५
“विप्रस्य दंडः पालाशो वैल्वो वा धर्मतः स्मृतः । अश्वत्थः क्षत्रियस्याथ खादिर्गोत्राऽपि धर्मतः॥
“औदुंबरोऽथ वैश्यस्य प्लाक्षो वा दंड उच्यते । एतेषामप्यलाभे तु सर्वेषां सर्वयज्ञियाः”॥ इति ।
गौतमोऽपि (१।२।१)—“यज्ञियो वा सर्वेषाम्” इति । आषद्दत्तंदोऽपि (१।२।३।८)—“पालाशो
दंडो ब्राह्मणस्य नैश्यग्रोऽवस्कंधजो वाङ्गमो राजन्यस्य बाद्र औदुंबरे वा वैश्यस्य वाक्षां
दंड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपदशंति” इति॥ इति । वाक्षः यज्ञियार्हवृक्षसंभूतः । स सर्वर्णसाधारणः । २०
मनुः (२।४६-४७)—

“केशांतिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः । ललाटसंमितो राजः स्यात् नासांतिको विश्वः ॥

“ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरवणाः सौम्यदर्शनाः । अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनभिद्विषिताः” ॥ २५

गौतमः (१।२।४-२।५)—“अपीडिता यूपवक्त्राः सशालकाः । मूर्ढललाटनासाग्रप्रमाणाः” इति ।

अपीडिताः वल्लिवैष्टनादिभिः । यूपवक्त्रा यूपवन्नताग्रा इत्यर्थः । व्यासः—

“शिरोललाटनासाग्रप्रमाणा यूपवन्नताः” इति । शंखः—“केशावधिललाटासतुल्याः
प्रोक्ताः क्रमेण ते” इति । वसिष्ठस्तु विशेषमाह (१।१।५-५७)—“ब्राणैसं-
मितो ब्राह्मणस्य । ललाटसंमितः क्षत्रियस्य । केशसंमितो वैश्यस्य” इति ।
कूर्मपुराणे (उ. १।१।१५)—

“धारयेद्वैल्वपालाशो दंडो केशांतिको द्विजः । याज्ञार्हवृक्षजं वाऽथ सौम्यमत्रणमेव च” ॥ इति । ३०
बोधायनः (१।२।१६)—“मूर्ढललाटनासाग्रप्रमाणो याज्ञियस्य वृक्षस्य दंडः” इति ।

इति दण्डनिरुद्धणपम् ॥

अथाजिनानि । तत्र गौतमः (१।१।६)—“कृष्णरुवस्ताजिनानि” इति । कृष्णः
कृष्णसूगः । सूरुः षष्ठतसूगः । बस्तः छागविशेषः । एतेषामजिनानि चर्माणि ब्राह्मणक्षत्रियविश्वां
क्रमेणात्तरीयाणि भवन्ति । मनुरपि (२।४।१)—“काण्डारैवत्रास्तानि चर्माणि ब्राह्मणानि” इति । ३५

आपस्तंवः (१२।१०)—“ अजिनं त्वेवोत्तरं धारयेत् ” इति । उत्तरमुत्तरीयम् ।

पारस्करोऽपि (२।५।१६—१८)—“ ऐषेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं राजन्यस्य । ब्रास्तं गच्यं वा वैश्यस्य । सर्वेषां वा गच्यम् ” इति । बृहस्पतिरपि—

“ ब्राह्मणस्याजिनं कार्ण्णं रौरवं क्षत्रियस्य तु । वस्ताजिनं तु वैश्यस्य सर्वेषां वा गवाजिनम् ”॥ इति ।

७ शंखः—“ कृष्णरुद्रस्ताजिनान्युत्तरीयाणि ” इति । इत्याजिनानि ।

अथ वासांसि । तत्र गौतमः (१।१७—१८)—“ वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः । सर्वेषां कार्पासं चाविकुतम् ” इति । शणविकारः शाणः । क्षुमा अतसी । तद्विकारः क्षौमम् । श्वेतपट्ट इत्यन्ये । कुतपः पार्वतीयाजगेमनिर्मितः कंबलः । कार्पासं च वासः । सर्वेषां तद्विकुतं कृसुंभादिराग-द्रव्यैररक्तमित्यर्थः । स एव (१।१९—२०)—“ काषायमप्येके । वार्ष्ण ब्राह्मणस्य मांजिष्ठ-१० हारिद्रे इतरयोः ” इति । एके आचार्याः । कषायेण रक्तमपि धार्यं मन्यन्ते । तत्र विशेषः । वार्ष्ण ब्राह्मणस्य दृक्षक्षक्षयेण रक्तं वार्ष्णम् । मांजिष्ठया रक्तं हारिद्रम् । ते इतरयोः क्षत्रियवैश्ययोर्वाससी इत्यर्थः । आपस्तंवः (१।२।४०—४१; १।३।१—२)—“ वासः । शाणी-क्षौमाजिनानि । काषायं चैके वस्त्रमूपदिशनिति । मांजिष्ठं राजन्यस्य । हारिद्रं वैश्यस्य ” इति । वस्यते कौपिनमाच्छाद्यते येन तत वासः । व्याकुतं हरइत्तेन । लक्ष्मुरपि (२।४१)—“ वसीरक्षानुपूर्वेण शाणक्षौमाविकानि च ” इति । वासिष्ठः (१।१६।४—६६)—“ शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य कार्पासं मांजिष्ठं क्षौमं क्षत्रियस्य पीतं कौशेयं वैश्यस्य ” इति । अहतस्य लक्षणमाह पञ्चेताः—

“ ईषद्वौतं नवं वस्त्रं सदृशं यन्न धारितम् । अहतं तद्विजीनीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ”॥ इति ।

उपनयने प्रथमतः कौपिनं धार्यं ततोऽहतेन वाससा परिधापनीयमुत्तरीयं च कृष्णाजिनमिति

२० दयवस्था । तथा च यमः—

“ कार्पासं क्षौमकुतपाश्वर्मवल्वजकंबलाः । सर्वं तु धारयेद्द्वुक्लं वासस्तत्परिधानिकम् ”॥ इति । “ नव वामः मद्वः कृतोत्तमुत्तराभ्यामभिर्मत्योन्नगमिस्तिसूभिः परिधाप्य ” इत्यापह्लत्ववचनात् (गृ. सू. ४।१०।१०) । परिहितवल्वपुच्छेनैवाच्छादनीयमिति मंतव्यम् । “ वासश्चतुर्थीमुत्तरायादत्तेन्यत्परिधाप्य ” इति वचनाच्छतुर्थदिनेऽपि विनेव कौपिनं कटिवेष्टितवस्त्रैकदेशनाच्छादनप्रसंगात्समानदृच्छनं ॥ २० कौपिनादुपरि मंत्रतो वद्यनीयमित्येवंशह । तथा सरण्यात्यर्थे रस्त्रितिक्षेप्यहे—“ कौपिनाच्छब्दं कृतयोर्चं क्षमां दक्षिणत उपवेश्य ” इति । तथा च त्रिकांडी—“ तदेवं क्षुमारस्य कौपिनधारण-माच्छब्दं परिदेवतमायोशनं प्राणाहुर्तारित्यदीनि भवेयुः ” इति । भारद्वाजोऽपि—

“ यज्ञोपवीतमजिनं मांजीं दंडं कम्भलुम् । स्वोक्तं वासश्च कौपिनं धारयेत्प्रथमाक्षमी ॥

“ परऽन्तिं मेखला दंडमजिनं चोपवीतक्षम् । धारयेत्तु पुण्यानि त्वदेवद्वाजाणि वा नव ”॥ इति ।

२० परऽन्तिं चतुर्थदिवस इत्यर्थः । तथा च शातातपः—

“ चतुर्थदिनि संप्राप्तं मुस्नातः कृतमंगलः । त्रिभिर्विप्रैः लग्नायुक्तो गुरुर्गच्छेत्सशिष्यकः ॥

“ ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा दिशं नान्यदिशं वज्रेत ।

“ उक्ताशासु ब्रह्मवृक्षो नास्ति चेद्वर्मयोग्यः । यत्र यत्र ब्रह्मवक्षस्तो दिशं वा वज्रेत्तुरुः ॥

“ ब्रह्मवृक्षमथासाद्य द्विजैः पुण्याहवाननम् । वान्गेदुक्षयेन्मूलं मार्जयेहोमयोदकैः ॥

“ वृक्षे चतुर्मुखं यष्टवा नमस्कर्यत्प्रतिक्षणम् ।

“ कौपीनं दंडमजिनमुपवतिं च मेखलाम् । नवानि धागयित्वाऽथ पुण्णानि परित्यजेत् ॥
“ बृक्षार्थं स्थापयेद्वनात्कोपीनाजिनमेखलाः । वासः प्रदद्याद्वुरवे ब्राह्मणम्यस्तु दक्षिणाम् ” ॥ इति ।
एतच्च पालाशकर्म स्मृतिसिद्धं गृह्यभाष्यादौ च लिखितम् । स्मृत्यर्थसारे च—

“ दंडः पलाजन्यग्रोधपिष्ठला यज्ञद्वक्षजाः । ते केशफालनासांतप्रमाणाश्च क्रमात् द्विजैः ॥
“ धार्याः श्लक्षणाः सदा धार्यं कौपीनं कटिसूत्रकम् । कौपीनमहतं धार्यं खंडवासश्च पाश्वर्युक् ” । ५
उपनयनानंतरं त्रिसत्रं क्षारलवणादिवर्जमधःशार्यी ब्रह्मचार्युपनयनवतं चरेच्चतुर्थेऽन्हि
कौपीनदंडाजिनमेखलोपवीतानि पूर्वाणि त्यजेत् । वह्नागां त्यागनियम इति । एवं च प्रथमादिने ।
कौपीनधारणस्य वह्नस्मृतिसिद्धत्वादावश्यकं तत्प्रतीयते । परिहितवस्त्रैकदेशेनाच्छादने प्रमाणं
मृग्यम् । इति वाल्मीकिरूपणम् । अथ मेखला । तत्र मनुः (२१४२-४३)—

“ मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्षणा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतांतवी ॥ १०
“ मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मान्तकबल्वजैः । त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पंचभिरेव वा ” ॥
अनयोरयमर्थः । त्रिवृत्तिगुणा । समा समगुणा । श्लक्षणा परिघर्षणे सुस्पर्शा । मूर्वाविकारो मौर्वी ।
इति ज्यादिजेष्वणम् । मुञ्जालाभ इति मुञ्जाग्रहणं मूर्वाशणतंतोरप्युपलक्षणम् । कुशादयो विप्रा-
दीनां दधासंस्थयम् । अशमन्तकस्तस्विशेषत्वक् । बल्वजः त्रृणविशेषः । त्रिवृत त्रिवृतैकेन धन्धिना
त्रिवृद्धिः त्रिवृद्धान्धिभिः पञ्चत्रिवैपलक्षिता । त्रयाणां वर्णानां ता नियमेनायं ग्रन्थिविकल्पः । १५
नात्र यथासंख्यं वाशद्वेन एकविषयत्वावगमादिति । व्यासोऽपि—

“ मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्षणा कार्या विप्रस्य मेखला । मुञ्जालाभे कुशानां तु ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः ॥
यमः—“ विप्रस्य मेखला मौंजी ज्या मौंजी क्षत्रियस्य तु । शणमूत्री तु वैश्यस्य मेखला धर्मतः स्मृताः ॥
“ एतासामप्यलाभे तु कुशाश्मान्तकबल्वजैः । मेखला त्रिवृता कार्या ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः ” ॥ इति ।
पैठीनस्ति—“ मौंजी मेखलाश्मंतकी च ब्राह्मणस्य । बल्वजी मौर्वी वा राजन्यस्य । शाणी क्षौमी २०
वा वैश्यस्य ” इति । वसिष्ठः (२१५८-६०)—“ मौंजी मेखला ब्राह्मणस्य धनुज्याक्षत्रियस्य
तांतवी वैश्यस्य ” इति । प्रचेताः—“ त्रिगुणं प्रदक्षिणा मेखला ” इति । गौतमः (११५)
“ मौंजी ज्या भौर्वी सौडयो मेखलाः क्रमेण ” इति । बोधायनोऽपि (१२।१३-१४)—“ एषां क्रमेण
मौंजी धनुज्याशाणीति मेखला ” इति । आपस्तंबः (१२।३३)—“ मौंजी मेखला त्रिवृद्ध-
ब्राह्मणस्य शक्तिविषये दक्षिणावृत्तानाम् ” इति । शक्तिविषये शक्तौ सत्यां दक्षिणावृत्तानां २५
मुञ्जानां कर्तव्यम् । कटिसूत्रमपि धार्यमित्याह संवर्त्तः—

“ कटिसूत्रं विना कर्म श्रौतस्मार्तं करोति यः । सर्वं तत्रिष्फलं विद्यात्सोऽपि नग्न इति श्रुतिः ” ॥ इति ।
इदं च ब्रह्मचारिण्यृहस्थसाधारणम् । कटिसूत्रधारणाभावे कर्ममात्रस्य निष्फलत्वाभिधानात्
धृतवस्त्रैऽपि नग्नत्वागमाच्च । इति मेखलानिरूपणम् ॥ अथ भिक्षाचर्या । तत्र मनुः (२।४९)—
“ प्रतिगृह्णेप्सितं दंडमुपस्थाय च भास्करम् । प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्देक्षं यथाविधि ॥ ३०

“ भवत्पूर्वचरेद्देक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ” ॥ भवत्पूर्व
भवतिशब्दपूर्वम् । गौतमः (२।४२)—“ आदिमध्यांतेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णनुपूर्वेण ” इति ।
प्रयुज्यैव दर्शयति बोधायनः—“ भवति भिक्षां देहि ” इति ब्राह्मणो भिक्षेत । “ भिक्षां भवति
देहीति ” राजन्यो ‘देहि भिक्षां भवति’ इति वैश्य उपनयनांगत्वेनोक्तोऽप्ययं भिक्षाचरणविधिः
सार्वत्रिकः प्रत्येतद्यः । उपनयनांगभिक्षायां नियममाह मनुः (२।५०)— ३५

“मातरं वा स्त्रमारं वा मातुर्दा भगिर्णी विजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या वैनं न विमानयेत्” ॥
विमानं प्रत्यास्वानस्य । गौतमः—

“अग्रे भिक्षेत जननीप्रत्यास्वायिनी च या । ब्राह्मणं ताहशं वाऽपि स्त्रियमग्रे तु याचयेत् ॥

“गर्भिणीं नैव याचेत् विधवामांतिमां न च” ॥ कारिकाकारः—

५ “अग्रे भिक्षेत जननीप्रत्यास्वायिनी च या । पश्चात्पितरमन्यांश्च आचार्य बांधवांस्तथा” ॥
वसिष्ठः—“अप्रत्यास्वायिनं पूर्वं स्त्रियं वा तादृशीं पुनः ।

“भिक्षेत भिक्षां प्रथमं भवान् भिक्षां इदात्विति । भवति भिक्षां देहीति स्त्रियं वाऽग्रेऽपि मातरम् ।

“मौजीकर्मविसानांतमामभैङ्गं समाहरेत् । पक्षान्नमाहरेनित्यमासमावर्त्तनाद्वट्टः” ॥ इति
गृह्यतात्पर्यदर्शनेऽप्यामैक्षमुक्तस्य—“त्रीण्यहानि प्रत्यहमामभैक्षमाचरेत् । चतुर्थोऽहनि अन्न-
१० मंसकारेण संस्कृतस्य” इति । ब्रह्मचारिणो नित्यभिक्षामाह व्यासः—

“गृह्योक्तविधिनोपेतं परिवर्त्येत्तरीयकम् । दंडं पात्रं समादाय नमस्कृत्य गुरुं रविम् ॥

“भिक्षार्थं तु ततो मौनी द्विजवेशम् तथा व्रजेत्” ॥ मनुः (२११४३—१४५)—

“वेदयज्ञर्हनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचार्यहरेद्दैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥

“तुषेः कुलं न भिक्षन न ज्ञातिकुलवन्धुषु । अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं परित्यजेत् ॥

“सर्वं वाऽपि चरेऽद्यामं पूर्वोक्तानामसंभवे । नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत्” ॥

१५ याज्ञवल्क्यः (आ. २९—३०)—“ब्राह्मणेषु चरेऽद्दैक्षमनिवेष्वात्मवृत्तये ॥

“आदिमध्यावसानेषु भवच्छुद्देष्पलक्षिता । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्षचर्या यथाक्रमम्” ॥

यनु “सार्ववर्णिकं भैक्षचर्णगमभिशस्तपतितवर्जम्” इति गौतमवचनं (२१४१) यदपि
व्यासवचनं

२० “ब्राह्मणक्षत्रियविशाश्चरेयुभैक्ष्यमन्वहम् । सजार्तायगृहेष्वेव सार्ववणिकमेव वा” ॥ इति तत्र
सर्वशब्दः प्रकृतवर्णत्रयपरः । एतच्च पूर्वोक्तसजार्तायालाभविषयम् । तथा च भविष्यत्पुराणे—

“सर्वं वा विचरेऽद्यामं पूर्वोक्तानामसंभवे । अंत्यवर्जं महावाहो इत्याह भगवान्प्रभुः” । अंत्यः शूद्रः ।

“त्रानुर्वर्णं चरेऽद्दैक्षमलाभे व्रतिको द्विजः” । इत्येतदप्यापद्विषयम् । तथा विष्णुः—

“भवेद्वैद्यगृहेष्वेद क्रियावर्तिष्व साधुषु । चातुर्वर्णं चरेऽद्दैक्षमापत्काल उपस्थिते” ॥

२५ अंगिराः—“आमसदाऽद्वाताम्बद्वृत्तावेक्षनव्रकम्” इति । पराशरः—

“यस्तु वेदसर्वायानः शूद्रान्नमुपभुजने । शूद्रो वेदफलं याति शूद्रत्वं चाधिगच्छति” ॥

एकान्ननिवेष्वात् याज्ञवल्क्यः (आ. ३२)

“ब्रह्मचर्यं विष्टते तेकमक्षमव्याप्तापदि । ब्राह्मणः काममश्चीयात् श्राव्ये व्रतमपीडयन्” ॥

मधुमांसाद्विष्टवार्णणं, भलुरपि (२१९८८)—

३० “भैक्षण वनयेऽस्त्वयं नेकाज्ञानी भवेद् व्रता । भैक्षण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥

“व्रतो वा देवदेवत्ये पितृये कर्मण्यथार्थिवत् । काममभ्यर्थितोऽश्रीयाद् व्रतमस्य न लुप्यते” ॥

अत्रिः—

“शाकभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये यावकाशिनः । सर्वे ते भैक्षभक्षस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥

“तसकांचनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेत् द्वादशवर्षाणि न तद्दैक्षसमं भवेत्” ।

३५ न चात्र श्रवणादनिवतं भिक्षाचरणमिति वाच्यम् । अकरणे मनुना प्रायश्चित्तविधानात् ।

मनुः (२१८७)—

“अकृत्वा भैक्षाचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिवतं चरेत्” इति ॥

यमः—

“आहारमात्रादधिकं न क्वचिद्दैक्षमाचरेत् । युज्यते स्तेयदोषेण कामतोऽधिकमाहरन् ॥

“माधूकरं य आदाय ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । स याति नरकं घोरं भोक्ता भुक्ते च किल्मिषम् ॥

“तस्मान्नावहेरेऽद्वैक्षमतिरिक्तं कदाचन” ॥ रस्तुतिक्षंश्वहे—

५

“ब्रह्मचारी तु भैक्षान्नमुच्छिष्टं न समाचरेत् । अशक्तौ निखनेऽद्भूमावप्सु वाऽपि प्रवेशयेत्” । अकामतोऽधिकाहरणे तस्य प्रतिपत्तिनियमज्ञाहायस्तंबोऽपि (१।३७।४१)–“न चोच्छिष्टं कुर्यात् अशक्तौ भूमो निखनेत् अप्सु वा प्रवेशयेत् । आर्याय वा पर्यवदध्यात् । अंतर्धिने वा शूद्राय” इति । अंतर्धिने आचार्यस्य दासायेत्यर्थः ॥ स्व एव (१।३२।५-२६)–“साध्यं प्रातरमत्रेण भिक्षाचर्यं चरेऽद्वैक्ष-माणोऽन्यत्रापपात्रेभ्योऽद्विजात्तात्त्र स्त्रीणां प्रत्याचक्षणानां समाहितो ब्रह्मचारीष्टं दत्तं हुतं प्रजां १० पश्चून्ब्रह्मवर्चसमव्याधं वृक्ते । तस्मादुह वै ब्रह्मचारिसंघं चरंतं न प्रत्याचक्षीत्” इति । अमत्रेण पात्रेण । न हस्तादिना । भिक्षाप्रत्यारूप्यानं निंदति । स्त्रीणामिति । वृक्ते अच्छिनतीत्यर्थः । एतच्च त्रताध्यायनादियुक्तब्रह्मचारिविषयम् । अत एव वसिष्ठपाराहरौ (३।४) —

“अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं द्विंद्येद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः” ॥

अत्रिः—

१५

“हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणं व्यंजनानि च । भुक्ता ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति” ॥

मनुः (२।५।१) —

“समाहृत्य तु तद्दैक्ष्यं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरुवेऽश्रीयादाचब्यं प्रयतः शुचिः” ॥ गुर्वसंनिधानं तत्पुत्रभार्यादिभ्यो निवेदयेत् । तदाह गौतमः (२।४३)–“असंनिधौ तद्वार्यापुत्रसब्रह्मचारिसभ्यः” इति । सब्रह्मचारी सहाध्यायी । संतः श्रोत्रियाः । तथा चापस्तंबः (१।३।३१-३६)–“तत्समाहृत्योपनिधायाचार्याय प्रवृयात्तेन प्रादिष्टं भुजीत । विप्रवासे गुरोराचार्यकुलाय तैर्विप्रवासेऽन्येभ्योऽपि श्रोत्रियेभ्यः । नात्मप्रयोजनश्वरेत् । भुक्त्वा स्वयममत्रं प्रक्षालयीत” इति । हारीतः–“भैक्षमपेक्षितं पर्यग्निकृतमादित्यदर्शितमनुजातममृतसंमितं प्राहुस्तदश्वन् ब्रह्मचारी ब्रह्मप्रासिद्धिमवाप्नोति” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ३१) —

“कृताग्निकार्यां भुजीत वाग्यतो गुर्वनुजया । आपोशनक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन्” ॥ इति । २५

चंद्रिकायां—“लोहे मृन्मये वा पात्रे भुजीतैतच्च भुक्त्वा स्वयं प्रक्षालयीत” इति ।

वसिष्ठः (६।३) —

“अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः” ॥

आपस्तंबः—

“आहिताग्निरन्दुङ्गंश्व ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्वंत एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्वताम्” ॥ इति । ३०

इति भिक्षाचर्या । अथ संध्यापक्रमः । व्यासः—

“गायत्रीं तु गुरोर्लब्ध्वा सायं संध्यामुपक्रमेत् । कालयोरग्निपूजां च कालयोर्भैक्षमाहरेत् ॥

“निमन्त्रणादिना भुक्त्वा गुर्वर्धं भैक्षमाहरेत्”

“संध्यात्रयं न कर्तव्यं यावन्मौजी निबध्यते । संध्यात्रयं तु कर्तव्यं सायमादि ततः परम्” ॥

प्रचेताः—

३५

“ मौजीवन्धदिने तिष्ठेत्सावित्रीमध्यसन् गुरोः । सूर्येऽस्तशिखरं प्राप्ते सायं संध्यां समभ्यसेत् ॥

“ सावित्रीं प्राप्य गुरुणा मंत्राद्यायाद्यथोदितात् । अभ्यस्योपासयेत्संध्यां सायमादि यथाक्रमम्” ॥

स्मृत्यंतरे—

“ उपायनो हि कर्तव्यं सायं संध्योरूपासनम् । आरभेद्ब्रह्मयज्ञं तु मध्यान्हे तु परेऽहनि ॥

५ “ अनुपाकृतवेदस्य ब्रह्मयज्ञः कथं भवेत् । वेदस्थाने तु गायत्री गद्यतेऽन्यत्समं भवेत् ॥ ” इति ।
जैमिनिस्तु विशेषमाह—

“ यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्यादिकं न च । ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्वे कर्म समाचरेत् ” ॥ इति ।
इति संध्योपक्रमनिष्ठप्रयत्नम् । अथ समिदाधानम् । तत्र याज्ञवल्क्यः (११२५)—

“ अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ” । भनुः (२१८५-१८६)—

१० “ अग्नीधनं भैश्चर्यामधश्ययां गुरोर्हितम् । आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥

“ द्वारादाहत्य समिधः संनिदिध्याद्विहायसि । सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतंद्रितः ” ॥

भूमिष्ठजंतुसंक्रांतिर्मा भूदिति विहायासे इत्युक्तम् । ‘आकाशे’ रज्वादिषु स्थापये-
दित्यर्थः । सुमंतुरपि—“ ब्रह्मचर्यं ततो भैश्यं संध्ययोरग्निकर्म च ” इति । केचित्सायमेवाग्नि-
कार्यमिच्छन्ति । तद्वाहापस्तंबः (१४।१६-१७)—“ सायंप्रातर्यथोपदेशम् । सायमेवाग्नि-

१५ पूजेत्येके ” इति । लौगाक्षिः—“ सायमेवाग्निभिर्धीयते इत्येके ” इति । समिदाहरणे नियममाह
वैजावापः—“ पुरास्तमयाप्रागुद्धीर्चो दिशं गत्वा अहिंस्न्नरण्यात्समिध आहरेत् ” इति ।
आपस्तंबोऽपि (१४।१५)—“ नास्तमिते समिदाहारो गच्छेत् ” इति । व्यासः—

“ पालाश्यः समिधः कार्याः खादिर्यस्तदलाभतः । शमीरोहीतकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ ” ॥
समित्प्रमाणमाह कात्यायनः—

२० “ नांगुष्ठादधिका कार्या समित्स्थूलतया कचित् । न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥

“ प्रादेशान्नाधिका न्यूना तथा न स्यात् विशासिका । नासपर्णा न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता ॥

“ विशीर्णा विकला रहस्या वक्ता सनुषिराः कृज्ञाः । दीर्घाः स्थूला धुणेदुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशिकाः ” ॥

इति । सार्वत्रिकं नियमविशेषमाहापस्तंबः (११५।१२)—“ नाप्रोक्षितमिधनमग्नावादध्यात् ” इति ।
अग्निकर्माकरणे प्रत्यवायमाह हारीतः—

२५ “ पुरा जग्राह वै स्मृत्युर्हित्यन्त्रव्यक्तव्याद्यचारिणम् । अग्निस्तं नोऽस्यामास तस्मात्परिचरेद्वितम् ॥

“ ब्रह्मचार्यं यदा त्वग्रावादध्यात्समिधं न हि । गृह्णीयात्तं लदा वृत्युरादध्यात्समिधस्ततः ” ॥ इति ।

बोधाद्यनोऽपि (१३।५३-५४)—“ ब्रह्म वै स्मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत्तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न
प्रायच्छत्सोऽववीद्यत्तु सद्यमप्यतस्मिन्भाग इति । यामेव रात्रिं समिधं नाहरता इति । तस्माद्ब्रह्म-
चारी यां गत्रिं समिधं नाहरत्यायुष एव तामवद्य वहति । तस्माद्ब्रह्मचारी समिधमाहरेत् ” इति ।

३० ब्रह्मा जगत्कारणं ईश्वरः । प्रजा मारयितुं स्मृत्यवे प्रायच्छद् । ब्रह्मचारिणं न प्रददे । अथ स्मृत्यु-
राह । मद्यं मम एतस्मिन्ब्रह्मचरिण्यादि भागः अंशोऽस्त्वाति । ब्रह्माब्रवीत्सा रात्रिस्तवावसरः
यामेव रात्रिं समिधं नाहरति इति । आयुष इति द्वितीयार्थं षष्ठी । तस्यां रात्रावायुर्गृह्णाती-
त्यर्थः । गौतमः (२।१२)—“ अग्नीन्धनभैश्चरणादीनि सप्तरात्रमकृत्वाज्यहोम ” इति । बृहस्पतिः—

“ अवकीर्णिवतं कुर्यात्सप्तरात्रमसंशयम् ” इति । भनुरपि (२।१८७)—

३५ “ अकृत्वा भैश्चरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिवतं चरेत् ” ॥ इति ।

इति समिदाधाननिरूपणम् । अथ चौलादिजातककर्मादिकालातिपत्तिप्रायश्चित्तम् ।
तत्र कात्यायनः—

“ कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वा तु विद्ध्याङ्गुत्तराणि च ॥

“ लुते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुतं कर्म समाचरेत् ॥

“ गर्भाधानादिचौलांते स्त्रियाले विधिना कृते । प्रत्येकं पादकृच्छ्रं स्यात् द्विगुणं स्याद्नापदि ॥ ५

“ आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य ह्यष्टकाद् व्रतहायने । आज्याहुतीश्च जुहुयादिम् मे वरुणद्वयम् ॥

“ त्वं नः स त्वं नो मंत्रौ द्वौ त्वमग्ने तु प्रजापते । ये ते शतमुडुत्तमं व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥

“ अभ्युदिकं तु तंत्रेण सर्वकर्माण्यनुक्रमात् । उपायनवतं कुर्याच्छूद्रतुल्योऽन्यथा भवेत् ” ॥

ब्राह्मणभोजनसंख्यामाह भास्करः—

“ दश द्वादश वाऽथर्ते प्रत्यृतौ च द्वयं द्वयम् । सीमंते पुंसवे नान्नि भूरि ब्राह्मणभोजनम् ॥ १०

“ ब्राह्मणाश्वैव पंचाशाचौले तृपायने शतद । विवाहे तु यथाशक्ति ह्याधाने शतभोजनम् ॥

“ भोजयित्वा शतं विप्रान्कुर्यादिवोपनायनम् । अशक्तोऽपि यथाशक्ति कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥

“ प्रतिगृह्योपनीत्यर्थमिति तेनाचरेद्यदि । ब्राह्मणत्वफलं सर्वं दातारमधिगच्छति ॥

“ शूद्राच्च प्रतिगृहीयात्स मूढो नरकं व्रजेत् ” ॥ इति च । मातरि रजस्वलायां गर्भिण्यां च
कर्मनिषेधः प्रयोगपारिजाते— १५

“ न विवाहोपनयने गर्भिणी मलिनी प्रसूः । गर्भस्यापि विपत्तिः स्याद्विष्योश्च शिशोस्तथा ” ॥

प्रसूर्माता गर्भिणी वा मलिनी मलवद्वासा वा भवेद्यदि । पुत्रस्य विवाहोपनयने पित्रा न कर्त्तव्ये ।
करणे दोषः । गर्भस्य जायापत्योः सुतस्य च विपत्ति स्यादिति । वरदराजीये—

“ ईडाकरणपूर्वं तु जननी चेद्रजस्वला । न कर्तव्यं चोपनीतिरिति स्मृतिविद्वां मतम् ” ॥

ईडाकरणं नांदीश्राद्धकरणं ततः पूर्वं रजस्वला चेदित्यर्थः । तत्रैव— २०

“ करणे ब्रात्यतां यायात्रा कर्मण्यो भवेद्यदुः । वेदपाठे व्रतादौ च ह्यनर्हो दारकर्मणि ॥

“ उपनीतिश्च कर्तव्या पुनश्च ब्राह्मणैः सह । अनुजां प्राप्य विदुषां पीत्वा च ब्रह्मकूर्चकम् ॥

“ कर्मण्यो जायते वर्णी नात्र कार्या विचारणा ॥

“ बटोर्माता गर्भिणी स्यात्र कुर्याच्छौलकर्म च । पंचमासादधः कुर्यादितं ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥

“ कर्तृभार्या गर्भिणी चेद्रास्तुकर्मोपनायनम् । षण्मासात्परतः सोऽपि न कुर्यादिति शौनकः— २५

“ गर्भिणी यदि पत्नी स्यात्र कुर्यादुपनायनम् । पंचमासादधः कुर्यादित ऊर्ध्वं न कारयेत् ” ॥

उपनयनकर्त्तारमाह व्यासः—

“ वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुंबिनम् । स्वशास्त्रामनालस्यं विप्रमकुद्धमत्वरम् ॥

“ कर्त्तारमीप्सेद्विप्रं वा चतुर्थश्रिमिणं न तु ” ॥ विष्णुः—

“ कुच्छिंत्रयं चोपनेता त्रीन्कुच्छिंश्च परश्चरेत् । सावित्रीमध्यसेन्नित्यं पवित्राणि च संस्मरन् ” ॥ ३०

वृद्धवासिष्ठः—

“ पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपायनेऽधिकाराः स्युः पूर्वभावे परः परः ” ॥

आपस्तंबः (१।१।११-१२)—“ तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चा-
विद्वानिति हि ब्राह्मणम् । तस्मिन्ब्राह्मणविद्वासमुदेतं समाहितं संस्कर्त्तारमीप्सेत् ” इति । यं

माणवकमविद्वानजानानः उपनयते तथा यश्च स्वयमविद्वान्सन्तुपनीयते सोऽपि तमसः सकाशात्तम एव प्रविशति समाहितं विविप्रतिवेष्ववहितमित्यर्थः । बोधायनः—

“ जातकर्मादिसंस्कारे पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः । अभावे स्वकुलीनः स्थाद्वांधवो वा इन्यगोत्रजः ॥

“ आर्यवित्समुद्भूतस्तस्याभावे स्वसूत्रकः । ब्राह्मणः सर्ववर्णानां श्रोत्रियो वा स्ववर्णजः ॥

५ “ गृहस्थः सर्ववर्णपुं श्रेष्ठ इत्यभिधीयते । अभार्यस्त्वधमो ज्ञेय उपकुर्वाणनैषिकौ ॥

“ आचार्यो मध्यमो ज्ञेयो सगोत्रो वतिनावपि । वानप्रस्थयतीनां तु कर्तृत्वं नेष्यते सदा ॥

“ जितेद्रियो जितद्वंद्वस्तपोदानपरायणः । सत्यवादी^१ जितः प्राज्ञो मेधावी नियतः शुचिः ॥

“ निःसंदिग्धः कुलीनश्च श्रौतकर्मणि तत्परः । निश्रहानुग्रहे दक्षः सर्वदोषाविवर्जितः ॥

“ गायत्रीमंत्रकुशल आचार्यः स उदाहृतः । कुलदूये तथोत्सन्ने प्राप्ते गर्भाष्टामे बट्टैः ॥

१० “ मौजीविवेकमर्थं सवशाखाध्यायिनं द्विजम् । स्वगोत्रप्रवरं नो चेदाश्रयेदन्यगोत्रजम् ” ॥ इति । उपनयनकर्त्तुलिख्यपणम् । अथ यज्ञलाभ्युपनयने^२ । संघ्रहे—

“ एकगर्भप्रसूतौ चेदेकवेदिमवाप्य च । एकाचार्यैकलभ्ने च कुर्यान्मौजीवतं यतः ॥

“ चौलोपनयने चैव जातकर्मणि नान्नि च । चतुर्वितोपाकरणे यमलानां समं भवेत् ” ॥

कालादर्शः—

१५ “ ब्राह्मदूये स्वसृयुगे स्वसृभावयुगे तथा । समानाऽपि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च ” ॥

“ पुंयुग्मे स्त्रीयुग्मे स्त्रीपुंयुग्मे च समकाला क्रिया कार्या । मातृभेदेऽपि तथेत्यर्थः । मातृ-भेदे विशेषः स्मर्यते—

“ एकत्रलभ्ने यदि पुत्रयुग्मशुभाय मौजीवतकर्म कुर्यात् ॥

“ आचार्ययुग्मं खलु वेदियुग्मं नांदीमुखान् स्वस्य पितृश्च नित्ये ॥

२० “ पृथगभवावेकलभ्ने तोदरावुपनाथने । आचार्येऽन्यः पिताऽन्यस्तु ब्राता वा पितृसोदरः ” ॥ इति । अथ मूकोन्मत्ताभ्युपनयम् । स्मृतिरत्ने—

“ षट्टांववधिरस्तद्वजडगद्वयंगुणु । कुब्जवामनरोगार्त्तुष्टकांगिविकलांगिषु ॥

“ नत्तोन्मत्तेषु मकेदु यदनस्ये निरिदिये । ध्वस्तयुस्तवेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् ॥

“ मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यावितिकेच्चित्रचक्षते । कर्मस्वैनविकाराच्च पातित्यं नास्ति च द्वयोः ॥

२५ “ तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्दया ” ॥ स्मृत्यंतर्दे—

“ मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यो कर्मस्वनविकारितः । तदपत्यं त संस्कार्यं यज्ञार्हमिति च श्रुतिः ॥

“ ब्राह्मणां द्राह्मणाज्ञाते ब्राह्मणस्तु श्रुतेवंलात । कर्मस्वनविकारोऽपि संस्कारार्ह इति श्रुतिः ॥

“ मूकोन्मत्तादिसंस्कारे त्वाचार्यः सर्वानाचरेत् । सुनुहर्त्त निरीक्षत गायत्रीं स्पृहय वा जपेत् ॥

“ मूकांधादिपु चोद्दाहे कन्धास्त्रीकरणं विना । पाणियतं विना सतपदादिकमणं विना ॥

३० “ विप्रेण कारयेत्सर्वं पंगोः सप्तपदान्दयि ॥

“ केचिदाहुर्दिजाज्ञातो संस्कार्यो कुण्डगोलको । अष्टृते जारजः कुण्डो ष्वते भर्तरि गोलकः ॥

“ द्विजातिप्रतिलोमानां केचिदाहुः पुराणगाः ” ॥ उद्यात्मः—

“ विद्याग्रहणशक्तस्य होमकर्मस्मस्य च । उपायनेऽधिकारोऽस्ति मूकादीनां कृताकृतम् ” ॥ इति ।

आपस्तंवः (११९-१०)—“ उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कारः । सर्वेभ्यो हि वेदेभ्यः

३५ सावित्र्यनूच्यत इति हि ब्राह्मणम् ” ॥ इति । विद्यार्थः प्रयोजनं यस्य स विद्यार्थः । तस्यायं श्रुति-

१ ख-मूर्जितः । २ क्ष-वरः, क-परः । ३ कर्ख-+कर्तारः । ४ क-यौं कर्मस्वनाधिकारतः ।

विहितः संस्कारः । उपनयनं नाम विद्वार्थस्येति वचनान्यूकादर्ने भवति । अनेकवेदाध्यायिनां वेदवतवदुपनयनमपि भेदेन कर्त्तव्यमिति प्राप्ते । उच्यते । सर्वेभ्य इति । ततश्च सावित्र्यनुवचनेन सर्वे वेदा अनूका भवतीत्येकमेवोपयनं सर्वथिष्ठ । आधर्वणस्य तु वेदस्य पृथगुपनयनं कर्त्तव्यम् । तथा च तथैव श्रूयते—“नन्यव लंकृतो भृग्वंविरसोर्विधीयत” इति । पातितानामुपनयनाभावमाहस्तंषः (११६) — “अद्वदाणामदुष्टकर्मणामुपयनम्” इति । ५
“प्रागुपनयनात्कामचारदाद्वद्वः” इति (२११) गौतमवर्ण वर्ण ब्रह्महत्यादिपातकव्यतिरिक्तविषयमिति पूर्वमेवोक्तम् । रूबृत्यर्थस्तरि—“बंडाधादिषु वद्येचितं संस्कारः । मूकोन्मत्तावसंस्कार्याद्वित्येके । कर्मस्वविकारान्यातित्यं लास्ति । तद्दपत्यं संस्कार्यम् । ब्राह्मणां ब्राह्मणोत्पन्नो ब्राह्मण एवेति स्मृतेः । अन्ये न संस्कार्याचित्पाहुः । होमं तावदाचार्यः कुर्यात् । उपनयनं च विधिना आचार्यसमीपनयनं सावित्रीसीमियनयनं सावित्रीशाचनं वा अन्यद्दीर्घं यथाशक्ति कार्यम्” इति । १०
जडवधिरमूकादीनामुपनयनकलो वोधाद्यजादिभिरुक्तः । तत एव ग्राह्यः ।

अथौरसादीनामुपनयननिष्ठपणम् । स्मृतिरत्ने—

“ औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा । कानीनश्च पुनर्भूतो दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः ॥
“दत्तात्मा च सहोदरश्च अपविद्धः सुतस्तथा । एते द्वादशपुत्रश्च संस्कार्याः स्युद्दिंगतात्यः” ॥ इति ।
औरसादीनां लक्षणमाह अनुः (११६६-१७७) — १५
“ स्वे क्षेत्रे संस्कृतो यस्तु स्वयमुत्पादयेद्विद्व यम् । तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्राथमकल्पिकम् ॥
“ यत्स्वप्रजप्रीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य वा । स्वधर्मेण नियुक्तायां तु पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥
“ माता पिता वा दद्यातां यमद्विः पुत्रप्रापदि । तदृशं प्रीतिसंर्युक्तं स ज्ञेयो इत्रिमः सुतः ॥
“ सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् । पुत्रं पुत्रगुणैर्वक्तं स विज्ञेऽस्तु कृत्रिमः ॥
“ उत्पद्येत गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः । स्वगृहे गूढखुत्पन्नो यस्य स्यात्स्य तत्पञ्जः” ॥ २०
“ मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा । यं पुत्रं परिगृहीयाद्यविद्वस्तु स स्मृतः” ॥
“ पितृवेशमनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः । तं कानीनं वदेनाम्ना वोद्दुः कन्यासमुद्दवम् ॥
“ या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती । वोद्दुः स गर्भो भवति लहोद्द इति चोच्यते ॥
“ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सद्वशोऽसद्वशोऽपि वा ॥
“ या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वेच्छयाऽस्तमनः । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ २५
“ मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्याद्कारणात् । आत्मानं संस्पृशेयस्मै स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः” ॥

याज्ञवल्कयोऽपि (व्य. १२८-१३२) —

“ औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स्वगोत्रेणतरेण वा ॥
“ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥
“ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ ३०
“ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतिः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः । दत्तात्मा तु स्वयंदत्तो गर्भे विन्नः सहोदरजः ॥
“ उत्सृष्टो गृहते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः” ॥ इति । अनुः (११८०) —
“ क्षेत्रजादिसुतानेतानेकादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः कियालोपान्मनीषिणः” ॥ इति ।
एतानि गौणपुत्रपरिग्रहसंस्कारवचनानि युगांतरविषयाणि । कलौ तत्परिग्रहस्य निषिद्धत्वात् ॥
“ अनेकधाकृताः पुत्रा क्रषिभिर्ये पुरातनैः । न शक्यन्तेऽधुना योकुं शक्तिहीनैः कलौ द्विजैः” ॥ ३५

इति वचनात् । अत्र क्षेत्रजपुत्रोत्पादनाय सप्रकारं सापवादं च नियोगमुक्त्वा पुनरेव प्रतिषेधति मनुः (१५९-६०)—

“देवरादा सपिंडादा लिया सम्युक् नियुक्तया । प्रजेप्सिताऽधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये ॥

“विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि । एकमुत्पादयेत्युत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥

५ “विधवायां नियोगार्थं निर्वृत्ते तु यथाविधि । गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् (६२) ॥

“नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते कचित् । न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं प्रति (६५) ॥

“अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः । मनुष्याणामपि प्रोक्तो वैने राज्यं प्रशासति (६६) ॥

“सु महीमस्तिर्णं भुञ्जन्नाजर्विप्रवरः पुरा । वर्णनां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः (६७) ॥

“तदा प्रभृति यो मोहात्प्रभीतपत्यार्थे तं विगर्हिति साधवः (६८)” ।

० अत्र मनोरभिश्यायमाह वृहस्पतिः—

“नियोगमुक्त्वा मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु । युग्म्हासादशक्तोऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः ॥

“तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः । द्वापरे च कलौ वृणां शक्तिहानिर्विनिर्मिता ॥

“संकल्पेन कृताः पुत्राः ऋषिभिर्यैः पुरातनैः । न शक्यतेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैररिति ॥

“क्षेत्रजो गर्हितः सद्विस्तथा पौनर्भुवः सुतः । कानीनश्च सहोढश्च गृहजः पुत्रिकासुतः ।

५ “इत्तोऽपविद्धः कीर्तश्च कृत्रिमो दत्रिमस्तथा” ॥ इति । अत्र दत्तनिषेधस्त्वसगोत्राभिप्रायः ।

यद्वाह शौनकः—

“ब्राह्मणानां सपिंडेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावे सगोत्रे वा न चान्यत्र तु कारयेत् ॥

“क्षत्रियाणां सजातौ वा गुरुगोत्रसमोऽपि वा । वैश्यानां वैश्यजातेषु शूद्राणां शूद्रजातिषु ॥

“सर्वेषां चैव वर्णनां ज्ञातिष्वेव न चान्यतः । दौहित्रं भागिनेयं वा शूद्राणां त्वापदो यदि” ॥ इति ।

० सर्वेषां ज्ञातिष्वेव पुत्रपरिग्रहः । दौहित्रं भागिनेयं वा गृह्णीयाच्छूद्राणां त्वापदि

दौहित्रादिग्रहणमित्यर्थः । अत एव कलियुगधर्मान्वदद्भिः “दत्तौरसेतरेषां च पुत्रत्वेन परिग्रहः”

इति दत्तपर्युदासेन न गौणपुत्रपरिग्रहनिषेवः कृतः । अतः सति संभवे सगोत्रादेव दत्तपरिग्रहः कर्तव्यः । तथा च मनुः (११८२)—

“भातृणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान्भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्” ॥

० सति भावृपुत्रे अन्यस्मात्पुत्रपरिग्रहो न कर्तव्य इति भाव इति मानवे व्याख्याने । अत्र

विज्ञानेश्वरोऽपि (पृ.-९० पं. १६-१७)— “यत्तु भातृणामेकजातानामिति भानववचनं

तदपि भ्रातृपुत्रस्य पुत्रीकरणसंभवे अन्येषां पुत्रीकरणनिषेधार्थं न पुनः पुत्रत्वप्रतिपादनाय” इति ।

कालादर्शोऽपि— “अपुत्रो भ्राता भावृपुत्रसंभवे तेनैव पुत्रीकुर्यान्नान्येनोति ‘भ्रातृणामे-

कजातानामिति’ मनुवचनस्यार्थः । अन्यथा ‘पत्नी दुहितर’ इति न्यायस्थासामंजस्य

प्रसंगादिति । यत्तु

“गोत्रांतरप्रविष्टानां दाय आशौचमेव च । ज्ञातित्वं च निवर्त्तते तत्कुले सर्वमिष्यत” ॥ इति यदपि मनुवचनम् (११४१-१४२)—

“उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः । स हरेतैव तद्रिकथं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥

“गोत्ररिक्ते जनयितुर्न हरेदत्रिमः सुतः । गोत्ररिक्तानुगः पिंडो व्यपैति ददतः स्वधाम्” ॥ इति

१ यदपि स्मृत्यंतरम्—

“ गोत्रांतरप्रविष्टास्तु संस्कार्यास्तत्कुले न तु । जननैव पितरो दानेनैव निवर्तितः ॥
“ दत्तस्य परिवेवृत्वमाशौचं दायमेव च । श्रितगोत्रा तु संग्राह्यं श्रौतं स्मार्तं तथैव च ” ॥ इति
एतत्सर्वं स्वगोत्रजालाभविषयम् । तथा च स्मर्यते—

“ वंशजानामभावे तु प्रशस्तो मातृवंशिजः । तदभावे सुतो इत्तो विहितो विधिनेतरः ॥

“ ज्ञातीनां कुलजातानामुत्तमः परिकीर्तिः । मध्यमा मातृकुलजा अधमाः परगोत्रजाः ॥ ५

“ स्वकल्पोक्तविधानेन दत्तपुत्रप्रतिग्रहः ” ॥ इति । अत्र कात्यायनः—

“ दत्तानूढा च कन्या या पतित्वं सप्तमे पदे । तथैव दत्तपुत्रस्य पुत्रत्वं जातकादिभिः ॥

“ यः प्रदत्तोऽपि पुत्रार्थं जातकर्मादिवर्जितः । नासौ गच्छति पुत्रत्वं कथं वा रिक्थभाग् भवेत् ” ॥

प्रजापतिः—

“ पुत्रं गृहीत्वा संस्कृत्य बयोवस्थाश्रितं पिता । नामगोत्रादि तत्सर्वं कुर्यादौरसवत्ततः ॥ १०

“ पंचमे सप्तमे वर्षे अष्टमे नवमे तथा । दद्यातां पितरौ पुत्रं गृहीयातां च दंपती ” ॥ इति
संग्रहे च—

“ उत्तमं द्वादशाहेषु दत्तस्य ग्रहणं शिशोः । आचौलान्मध्यमं हीनमूर्ध्वमा मौजिबंधनात् ॥

“ कृतोद्वाहस्य पुत्रत्वं कुलक्षयकरं भवेत् ” ॥ इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“ साश्रमं नैव दद्यातु दद्यादापद्यनाश्रमम् । आपद्यपि च दद्यातां द्वितीयं ब्रह्मचारिणम् ” ॥ इति । १५

“ भर्तुरुर्धर्वं तु या नारी पुत्रं दातुं न साऽर्हति । ग्रहीतुं वाऽग्रजं नातो बोधायनवचो यथा ” ॥

दृक्षः—

“ आपद्यपि च कष्टायां न दद्यादग्रजं सुतम् । भर्तुर्हीना तथा पत्नी दद्याच्चेन्नरकं वजेत् ॥

“ अप्रजा विधिवा नारी पितृप्राताद्यनुज्ञया । पुत्रं तु प्रतिगृहीयादन्यथा नरकं वजेत् ” ॥ इति । तथा

“ आपद्यनग्रजं दद्यात् ब्रह्मचर्याश्रमं सुतम् । द्वादशाब्दं धर्मपत्नी शुनःशेफवदेव वा ” ॥ इति । २०

यत्तु “ दानं क्रयश्च धर्मश्चापत्यस्य न विद्यते ” इति आपस्तंबस्मरणम् (२।१३।१०)
यदपि “ स्वकुटुंबाविरोधेन देयं दारसुताद्वते ” इति याज्ञवलङ्घयवचनं (व्य. १७५)
तंज्ज्येष्ठपुत्रविषयं एकपुत्रविषयं च । तथा च वसिष्ठः (१५।३-६)—“ न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यात्प्रति-
गृहीयाद्वा । न चैकं पुत्रं स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृहीयाद्वाऽन्यत्रानु-
ज्ञानाद्भर्तुः । पुत्रं प्रतिगृहीयन्वन्धूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हृत्वा दूर- २५
बांधवं संनिकृष्टमेव प्रतिगृहीयात् ” इति । बहूच ब्राह्मणेऽपि शुनःशेपास्याने “ ज्येष्ठं पुत्रं
न प्रयच्छेत् ” इति । शौनकोऽपि—

“ नैकपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं कदाचन । बहुपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

बोधायनः—“ शौणितशुक्रसंभवो मातृपितृनिमित्तम् । तस्य प्रदानपरित्यागविक्रियेषु माता-
पितरौ प्रभवतः । न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा । स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न तु स्त्री पुत्रं दद्या- ३०
त्प्रतिगृहीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ” इति । “ एवं कृते औरस उत्पद्येत यदि स तुर्यभाक् भवति ”
इति च । पुत्रपरिग्रहकल्पस्तु शौनकबोधायनादिभिरभितः ।

पुत्रपरिग्रहफलं दर्शयति जाबालिः—

“ पुत्रस्वीकारमात्रेण पितरं त्रायते सुतः । दत्तः पुत्रत्वमाप्नोति ग्रहीता मुच्यते ऋणात् ” इति ।

तथा च मंत्रलिंगमपि—“ धर्माय त्वा गृह्णामि संतत्यै त्वा गृह्णामि ” इति । यत्तु वचनं— ३५

“ स्वकुलं पृष्ठतः कृत्वा यो वै परकुलं ब्रजेत् । तेन दुश्चरितेनासौ काण्डपृष्ठ इति स्मृतः ॥

“ त्यक्तं पितृकुलं यस्मादनर्हः सर्वकर्मसु ” इति । तत्स्वयंदत्तविषं विवाहानंतर-
दत्तविषयं दा । अथ गुर्वादिलिङ्गपथम्—

तत्र मनुः (२१४२)—

५ “ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ” ॥

निषेको गर्भाधानन् । निषेकव्रहणाऽङ्गव्रहणाच्च पितैवायम् । स्त्र एव (२१४०१४१)—

“ उपनीय तु यः शिष्यं वेदाद्यापदेत् द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

“ एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥

“ उपाध्यायादशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ” ॥ (१४५)

१० याह्नवल्क्यः (आ. ३४-३५)—

“ स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । उपनीय दद्देदमाचार्यः स उदाहृतः ॥

“ एकदेशमुपाध्याय ऋतिर्यज्ञशब्दुच्यते । एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ” ॥ इति ।
पितुरेव सुख्यमुपनयनादिकर्तृत्वं तदभावे पितृसमत्वाज्येष्टस्य तयोर्द्वयोरभावे अयोग्यतायां वा
अन्यस्योपनयादिकर्तृत्वम् । यदाह वृहस्पतिः—

१५ “ एवं दंडादिभिर्युक्तं संस्कृत्य तनयं पिता । वेदमध्यापयेदत्नाच्छास्त्रं मन्वादिकं तथा ” ॥ इति ।

ज्येष्ठस्य पितृसमत्वं मनुला स्मर्यते (११०८)—

“ पितृवत्पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः । पुत्रवच्चापि वर्त्तेन्नज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ” ॥ इति ।
पितुरयोग्यतायां यमः—

“ नाध्यापयति नाधीते पतनीयेषु वर्तते । इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तः कर्तव्यो न पिता गुरुः ” ॥ इति ।

२० गुरुरत्रोपनेता । आपस्तंबः (१११४-१५)— “ यस्माद्वर्मानाचिनोति स आचार्यस्तस्मै
न द्रुद्योत्कदाचन ” इति । शंखः—“ भृतकाध्यापको यस्तु स उपाध्याय उच्यते ” ॥ विष्णु-
रपि (२१२)— “ यस्त्वेन मूल्येनाध्यापयेन उपाध्यायः ” इति । मनुः (२१४२)—

“ अग्न्यादेयं पाकयज्ञानशिष्टोमादिकान् मत्तान् । यः करोति वृतो यस्य स तत्त्विगिहोच्यते ” ॥

देवलः—

२५ “ उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चेव भर्तीपतिः । मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ ॥

“ वर्णज्येष्ठः पितृव्यक्तं पुण्येते गुच्छः स्मृताः ॥

“ माता माताभीं गुर्वा पितुर्मातुर्व लोद्रिः । श्वश्रः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवास्त्रियाम् ॥

“ इत्युक्तो गुरुर्वर्माऽयं मातृत् । पितृतो द्विधा । गुरुणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः ॥

“ यो भावयति यः सूते येन विद्योपदिश्यते । ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पंचैते गुरवः स्मृताः ॥

३० “ तेषामाचास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ” ॥ इति । रसृतिरस्ते—

“ पिता माता तथाऽचार्यस्तज्जाया चाग्रजस्तथा । पितामहश्च तत्पत्नी गुरवः प्रथमा मताः ॥

“ क्रचं वा यदि वाऽर्धर्चं पादं वा यदि वाऽक्षरम् । सकाशायस्य गृहीयान्नियतं तत्र गौरवम् ” ॥

व्यासोपि—

“ मातामहो मातुलश्च पितृव्यः श्वशुरो गुरुः । पूर्वजः स्नातकश्चत्विंकु मान्यास्ते गुरवस्तथा ॥

“मातृष्वसा मातुलानी स्वसा धात्री पितृष्वसा । पितामही पितृव्यस्त्री गुरुस्त्री मातृवच्चरेत्” ॥
मनुः (२।१३३)—

“पितृभिर्गिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि । मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ”॥
माता पञ्चतमेत्यत्र हेतमाह व्याख्यः—

“मासात् दग्धोऽरुस्ये या धत्वा श्लैः समाकला । वेदनाविविवैर्द्दःखैः प्रदूयेत विमर्च्छिता ॥

“प्राणैरपि प्रियान्पुत्रान्मन्यते सुतवत्सला । कस्तस्या निष्कृतिं कर्तुं शक्तो वर्षशतैरपि”॥ निष्कृतिः आनृण्यं तत्र शंखः—“न पुत्रः पितुर्मुच्येतान्यत्र सौत्रामणियागाजीवन्तृणान्मातुः” ॥ इति ।
यत् पौराणिकं वचनम्—

“ह्वौ गरु परुषस्येह पिता माता च धर्मतः। तयोरपि पिता श्रेयान्वीजप्राधान्यदर्शनात् ॥

“अभावे बीजिनो माता तद्भावे त पर्वजः ॥” इति तन्महाग्रुषिषयम् । तथा च स्मर्यते— १०

“उत्पाद्य पुत्रं संस्कृत्य वेदमध्याप्य यः पिता। कुर्यादिवृत्तिं च स महान्गुरुः पूज्यतमः स्मृतः”॥ इति
अथ ब्रह्मचारिणं जनकमात्रपेश्याऽचार्यो गरीयानित्याह भनुः (२१४८-१४८)—

“ उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य भेत्य चेह च शाश्वतम् ॥

“ कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः । संभूतिं तस्य तां विद्याच्छब्दोनावधिजायते ॥

“ आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवदेदपारगः । उत्पादयति साक्षित्या सा सत्या साऽजरामरा ” ॥ १५
जातिं जन्म । आचार्यगरीयस्त्वमेव प्रकारांतरेण प्रतिपादयति—

“अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः । तमर्पाह गुणं विद्याच्छ्रूतोपक्रियया तया (१४६)॥

अल्पविद्याप्रदमपि गुरुं विद्याद्वहुविद्याप्रदं किं पुनरिति भनोरभिप्रायः । गौतमः (२५६)–

“ आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां मातेत्येक ” इति । यस्तु वालो वृद्धमध्यापयति सोऽपि तस्य गरीया-

नित्याह विष्णुः— “ बाले समानवयसि वाऽध्यापके गुरुवद्वर्तत ” इति इममेवार्थमितिहास- २० पूर्वमाह मनुः—(१५०-१५६)

“ ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति मंत्रदः ॥

“अध्यापयामास पितृनिष्ठुरांगिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य ताद् ॥

“ते तमर्थमपृच्छंत देवानागतमन्यवः । देवाश्रैतान्समेत्योचुन्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥

“अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः । अर्जं हि बालमित्याहुः पितेत्येव च मंत्रदम् ॥ २५

“ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः । क्रष्णश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः स नो महान् ॥

“ न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाऽप्यधीयनस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

“ आचार्यस्य पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः। नार्तेनाप्यवमंतव्या ब्राह्मणेन विशेषतः (२२५) ॥

“आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वा मूर्तिरात्मनः

(२२६) ||

“ यन्मातापतरा कृश सहते सभव वृणाम् । न तस्य निष्क्रातः शक्या कर्तु वषशतराप (२२७)॥

“त्रिष्वप्रमाद्यन्तेषु त्रीन्लोकान्विजयेऽगृही । र्दीव्यमानश्च वपुषा देवद्विं विरोचते” (२३२) ॥

न केवलमयं ब्रह्मचारिणां धर्मः किंतृत्तरेषामपीति प्रदर्शितो गृहीति । स एव (२२३३-२३७) —

“इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोकं समझुते ॥

“सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते व्रयः नाहतः । अनाहतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥

५ “यावद्वयस्ते जीवेयुस्तावज्ञान्यं सनाचरेत् । तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥

“त्रिष्वेतेष्विह कृत्यं हि पुरुषस्य समाव्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—“उपाध्यायं पितरं मातां वाये द्रुद्यन्ति मनसा कर्मणा वा ॥

“तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके” ॥ देवलः—

“यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ । तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तपरायणः ॥

१० “माता पिता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणेयदि । स पुत्रः सर्वलं धर्मं प्राप्नुयात्तेन कर्मणा” ॥

विकारो मरणम् । स एव—

“नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पित्रा समो गुरुः । तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथंचन विद्यते” ॥ इति ।

व्यासः—

“परित्यजन्ति ये रागादुपाध्यायं गुरुं तथा । न मानयन्ति मोहाद्वा ते यांति नरकान्बहून् ॥

१५ “यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खो विमन्यते । तेन देषेण संप्रेत्य निरयं घोरमृच्छति ॥” इति ।

मनुः (४१६२)—

“आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् । न हिंस्याद्वाक्षणं गां च सर्वाश्वैव तपस्विनः” ॥

न हिंस्यान्न कुप्यात् । अत्रापवादमाह स एव—

“गुरोरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपञ्चस्य परित्यागो विधीयते” ॥

२० दोषयुक्तोऽपि पिता न त्याज्य इत्याह यमः—

“अशुद्धौ तु परित्यागः पातकेऽयाज्ययाजने । उपाध्यायेऽथ याज्ये वा न पितुस्त्याग इष्यते” ॥

मनुः (२२०८)—

“वालः समानजन्मा वा शिष्यो वा ज्ञानकर्मणि । अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति” ॥

व्यासः—

२५ “गुरुग्निर्दिनातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । पतिरेव गुरुः श्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः” ॥

मनुः (२१३५)—

“ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिदम् । पितापुत्रौ विजानीयात्ययोस्तु ब्राह्मणः पिता” ॥

इति गुर्वादिनिरूपणम् । अथात्योन्नयं लाल्यतात्तिभित्तात्याह याज्ञवलव्यः (आ. ११६) —

“विद्याकर्मवयोवंधुवित्तेमन्या यन्नाक्षमम् । एतेः प्रभूतेः शूद्रोऽपि वार्धके मानमर्हति” ॥

३० विद्या श्रुतिस्मृता । कर्म यज्ञादि । व्रयः आत्मनोऽतिरिक्तम् । वंधुत्वं स्वजनसंपत्तिः । वित्तं धनम् । एतेयुक्ताः क्रमेण मान्याः पूजनीयाः । एतेः कर्मवंधुवित्तैः प्रभूतैः प्रबुद्धैर्युक्तः शूद्रोऽपि वार्धके नवतेरुर्ध्वं मानमर्हतीत्यर्थः । मनुरायि (२१३६-१३७)—

“वित्तं वंधुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्युत्तरम् ॥

“पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः” ॥

३५ भावप्रधानो निर्देशः । पंचानां वित्तादीनां मध्ये त्रिषु वर्णेषु यस्मिन्भूयांसि विद्यादीनि यस्मिन्वा

गुणवंति श्रेष्ठानि विद्यादीनि स्युः स मानार्हः इति च । वर्षशतस्यांतिमो दशमो भागे दशमींगतः नवतिहायनातीत इत्यर्थः । गौतमोपि (७११८-२०)—“ वित्तव्युजातिकर्म-विद्यावयांसि मान्यानि परबलीयांसि । श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्वर्मस्य ” इति ॥ इति मान्यतानिभित्तम् । अथ मार्गप्रदानार्हानाह जनुः (२११३८-१३९)—

“ चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः । स्नातकस्य च राजश्व पंथा देयो वरस्य च ॥ ५
“ तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ । राजस्नातकयोरेव स्नातको नृपमानभाक् ” ॥
चक्रं अनोरथाद्युपलक्षणम् । तेन यो गच्छति स चक्री । तस्य निर्गुणस्यापि पंथा देयः ।
एवं दशमीस्थस्य वृद्धतरस्य । भारिणः भारवाहकस्य । स्नातकस्य गृहस्थस्य ब्राह्मणस्य । वरस्य
श्रेष्ठस्य विवाहोद्युक्तस्य । विद्याव्रतस्नातस्य इति विज्ञानेश्वरः (पृ. ३३) । समवेतानां मार्गे
संगतानां मान्यौ मार्गदानेन । नृपमानभाक् नृपदत्तमार्गभागित्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ११७)— १०

“ वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचाक्रिणाम् । पंथा देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्व भूपतेः ” ॥
शंखः—“ बालवृद्धमत्तोन्मत्तोपहतदेहभाराक्रांतस्त्रीनृपस्नातकप्रवजितेभ्योऽथ ब्राह्मणायाग्ने
पंथा राज्ञ इत्येके तच्चानिष्टं गुहज्येष्व ब्राह्मणो राजानमतिशेते तस्मै पंथा देयः ” इति । तेषां
परस्परसमवाये विद्यादिभिर्विशेषो द्रष्टव्यः । द्व्यासः—

“ पंथा देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राजे ह्यचक्षुषे । वृद्धाय भावहीनाय रोगिणे दुर्बलाय च ” ॥ १५
स्त्री चात्र गर्भिणी वेदितव्या । तथा च बोधायनः—

“ पंथा देयो ब्राह्मणाय गवे राजे ह्यचक्षुषे । वृद्धाय भारतसाय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ” ॥ इति ।
गौतमः (७२१-२२)—“ चक्रिदशमीस्थानुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथो दानम् । राजा तु
श्रोत्रियाय ” इति । अनुग्राहो रोगार्तः । वधूर्नवोदा । आपस्तंबः (२११५-९)—

“ राज्ञः पंथा ब्राह्मणेनासमेत्य । समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पंथाः । यानस्य भाराभिनिहतस्यातुरस्य १०
स्त्रिया इति सर्वेदातव्यो वर्णज्यायसां चेतरैर्वर्णरशिष्टपतितमत्तोन्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थेन सर्वे-
रेव दातव्यः ” इति । राजा ब्राह्मणेन यदि समेतो न भवति तस्य तदा पंथा देयः । समेतश्चे-
द्वाब्राह्मणस्यैव पंथाः । यानं शक्टरथगजादि । भाराभिहतः भारकांतः । वर्णज्यायसामुकूष्टवर्णानां
निकूष्टवर्णः पंथा देयः । आत्मस्वस्त्ययनमात्मत्राणम् । तेन प्रयोजनेन तदर्थं न त्वदृष्टार्थमित्यर्थः ।
अत्र कौटिल्येन देयस्य पथः प्रमाणमुवतम् (अर्थशास्त्रे २२५) “ पंचारत्निरथपथश्वत्वारो १५
हस्तिपथो द्वौ द्वौ पशुक्षद्रमनुष्याणाम् ” इति । इति मार्गदाननिरूपणम्—

अथभिवादनम् । तत्र याज्ञवल्क्यः—(आ. २६) “ ततोऽभिवादयेद्वद्वानसावह-
मिति द्वुवन् ” । ततः अग्निकार्यादनंतरमित्यर्थः । आशीर्वचनार्थो नमस्कारोऽभिवादनम् ।
मनुरपि (२१२२११२४)—

“ अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् । असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥ ३०
भोः शब्दं कीर्तयेदंते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ” ॥ इति ।
अभिवादात्परमभिवादय इति शब्दादुपरि देवदत्तनामाहमस्मीति स्वं नाम ब्रूयात् । अस्योपरि
भो शब्दं कीर्तयेत् । अभिवादस्य नाम्ना संबोधयितुमयुक्तत्वात् भोशब्देन संबोधयेत् ।
भोभावः भोशब्दसत्तानाम्नः स्वरूपभावः नाम्नः स्वरूपसत्ता समस्तनामधेयकार्यकारणसमर्थो
भोशब्द इत्यर्थः । तथा चायं प्रयोगः—‘ अभिवादये देवदत्तनामाहमस्मि भोः ’ इति । ३५

- अत्र गौतमः (६।५)– “स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादो ज्ञसमवाये” इति । तद्वास्वाता हर-
दत्तः । यः प्रत्यभिवादनविधिजस्तेन संगमे स्वनाम च प्रोच्य उच्चैरुच्चार्याहं शब्दं चोक्तवाऽय-
मिति च ब्रूयात् । अयमिति प्रत्यक्षोपदेशः । अस्मि शब्दः प्रयोक्तव्य इत्याहुः । अंते च भोशब्दं
प्रयुज्यते । ‘अभिवादये हरदत्तोऽहमस्मि भो’ इति प्रयोगः । ‘हरदत्तनामाहम्’ इति केचित् ।
५ ‘हरदत्तशर्माहम्’ इत्यपरे ॥ ‘हरदत्तशर्मा नामाहमस्मि भोः’ इति प्रयोग इत्यन्ये इति ।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्येति वचनादत्र यथास्वकुलाचारं व्यवस्था । भरद्वाजः—
“कंदूय पृष्ठतो गां तु कृत्वा चाश्वत्थवंदनम् । उपगम्य गुरुन्सर्वान्विप्रांश्चैवाभिवादयेत्” ॥
मनुः (२।१।७)—
“लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽध्यात्मिकमेव वा । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्” ॥ इति ।
१० आपस्तंवः—(१।५।१२-१३) “गुरोस्तिष्ठन्प्रातरभिवादमभिवादयीतासावहं भो इति ।
समानग्रामे च वसतामन्येषामपि वृद्धतराणां प्राक् प्रातराशात् । प्रोष्य च समागमे । स्वर्ग-
मायुश्चेष्यन् । दक्षिणं वाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्य ब्राह्मणोभिवादयीतोःसमं राजन्यो मध्यसमं वैश्यो
नीचैः शङ्क्रः प्रांजलिम्” इति । विष्णुः—
“जन्मप्रभूति यत्किंचिच्चेतसा धर्ममाचरेत् । सर्वं तन्निष्फलं याति ह्येकहस्ताभिवादनात्” ॥ इति ।
१५ एतद्विद्विषयम् । यतः स एवाह—
“शिष्याणां चाशिषं दद्यात्पादोपग्रहणं गुरोः । स्पृष्टा कर्णौ तु विदुषां मूर्खाणां चैकपाणिना” ॥ इति ।
आश्वलायनः—
“वासं वामेन संस्पृश्य दक्षिणेन तु दक्षिणम् । हस्तेन हस्तौ कर्णाभ्यां गुरुणामभिवादयेत् ॥
“वामोपरि करं कृत्वा दक्षिणं नाम चोच्चरेत् । जानुप्रभूति पादांतमालम्य पदयोर्नमेत्” ॥
२० एतच्च प्रत्युत्थाय कर्तव्यम् । तदाहापस्तंवः—
“ऊर्ध्वं प्राणा द्युत्कामंति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते” ॥
स एव (१।१।४-१४-२२)—“ज्ञायमाने वयोविशेषे वृद्धतरायाभिवादम् । विषमगता-
यागुरवे नाभिवादम् । अन्वारुद्य वाऽभिवादयीत । सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाभिवादनम् । अप्रयतेन
नाभिवादम् । तथा प्रयताय अप्रयतश्च न प्रत्यभिवदेत् । पतिवयसस्त्रियः । न सोपानद्वैष्टितशिरा-
२५ अवहितपाणिर्वाऽभिवादयीत” इति । अस्यार्थः । वयो विशेषे ज्ञायमाने पूर्वं वृद्धतरायाभिवादनं
कर्तव्यम् । पश्चाद्वृद्धाय । विषमगताय उच्चस्थाने नीचैस्थाने वा स्थिताय गुरुव्यतिरिक्ताय
नाभिवादम् । गुरवे तु अभिवादमेव । अन्वारुद्य वाभिवादयीत । एतद् गुरुविषयम् । अन्वावरुद्यते-
तदपि दृष्टव्यम् । न्यायस्य तुल्यत्वादसर्वत्र गुरावगुरो च पतिवयसस्त्रियः तेन तदनुरोधेन ज्येष्ठ-
भार्यादिष्वभिवादनमवहितपाणिः समिक्षादिहस्त इति । मनुः (२।१।९)—
- ३० “शश्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् । शश्यासनस्थश्चैवैनमवरुद्याभिवादयेत्” ॥
श्रेयसा गुर्वादिनाचरिते परिगृहीतयोः शश्यासनयोरधि उपरि समाचरेत् । न समुपविशेत् । स एव
मनुः (२।१।२१)—
“आभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते द्यायुः प्रज्ञा यशो बलम्” ॥ इति ।
बोधायनः (१।२।३।१-३४)—“नासीनो नासीनाय न शयानो न शयानाय नाप्रयतो नाप्रयताय

शक्तिमद्विषये मुहूर्तमपि नाप्रयतः स्यात् । समिद्वार्युदकुंभपुष्पान्नहस्तो नाभिवादयेत् । यच्चा-
न्यदग्न्येवं युक्तं न समवायेऽभिवादनमत्यंतशो ब्रातृपत्नीनां युवतीनां च गुरुपत्नीनां जातवीर्यः
इति एवं युक्तमपि पितृदेवतावर्थे द्रव्ययुक्तमपि नाभिवादयेत् । न समवायेत्यंतशः अत्यंतसमीपे
स्थित्वेत्यर्थः । जातवीर्यो जातशुक्रः । चशद्वातिपत्रव्यादिपत्नीनामपि युवतीनां ग्रहणम् । शंखः—
“नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेन्न भैक्षं चरन्न पुष्पाज्यहस्तो नाशुचिर्न देवपितृकार्यं कुर्वन्नशयानः” इति । ५
आपस्तंबः—

“ समित्पुष्पकुशाज्यांबुमृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवादयते द्विजम् ” ॥ इति ।

मनुः (२१२१०)—

“ गुरुवत्प्रतिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिभाषणैः ” ॥

“ गुरुपत्नी तु युवती नाभिवादयेह पादयोः । पूर्णविशंतिवर्षेण गुणदोषो विजानता ” (२१२) ॥ १०

स्मृत्यर्थसारे—

“ उद्कयां सूतिकां नारीं पतिद्वीं गर्भधातिनीम् । पाषंडं पतितं ब्रात्यं महापातकिनं तथा ॥

“ नास्तिकं कितवं स्तेनं कृतघ्नं नाभिवादयेत् । मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं धावंतमशुचिं नरम् ॥

“ वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वतं दंतधावनम् । अभ्यक्तशिरसं स्नानं कुर्वतं नाभिवादयेत् ॥

“ जपयज्ञगणस्थांश्च समित्पुष्पकुशानलान् । उद्यात्राद्यर्घमैक्षान्नं वहंतं नाभिवादयेत् ॥ १५

“ अभिवाद्य द्विजश्चेनानहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥

“ अभिवाद्यांधकारस्थं शाय्यास्थं पादुकांघ्रिकम् । उच्छिष्टं जपहोमार्चारतं चोपवसेत्यहम् ॥

“ दूरस्थं जलमध्यस्थं धावंतं धनगर्वितम् । रोगाकांतं मदोन्मत्तं षड्डिप्राज्ञाभिवादयेत् ” ॥

“ क्षत्रियवैश्याभिवादने विप्रस्याहोरात्रं शूद्राभिवादने त्रिरात्रं कृच्छ्रं तु रजकादिषु चंडालादिषु
चांद्रं स्यात् ” इति । शातातपः— २०

“ अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा वंशं एव च । ब्राह्मणः क्षत्रियादैस्तु श्रीकामैः सादरं सदा ॥

“ नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन । ज्ञानकर्मगुणेषेते यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥

“ क्षत्रं वैश्यं वाऽभिवाद्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् । ब्राह्मणानां दशाष्टौ च अभिवाद्य विशुद्ध्यति ॥

“ अभिवाद्य द्विजः शूद्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाद्य विशुद्ध्यति ॥

“ अर्चयेत्पुंडरीकाक्षं देवं चापि त्रिलोचनम् । ब्राह्मणं वा महाभागमभिवाद्य विशुद्ध्यति ” ॥ २५

ब्राह्मणेष्वपि कचिदपवादमाह विष्णुः—

“ सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च । नमस्कारं प्रकुर्वाति ब्राह्मणान्नाभिवादयेत् ॥

“ विप्रौघदर्शनात् क्षिप्रं क्षीयन्ते पापराशयः । वन्दनान्मङ्गलावासिः स्पर्शनादच्युतं पदम् ” ॥

समृतिरत्नावल्याम्—

“ वर्षैर्वयोऽधिकाशीतिस्तीर्त्वा मासचतुष्यम् । यो जीवेत्स तु वन्यः स्यात् विष्णोरपि सुपूजितः ” ॥ ३०

एतत्सर्वाणिवेषयम् । मनुः—

“ यस्य देशं न जानाति स्थानं त्रिपुरुषं कुलम् । कन्यादानं नमस्कारं श्राद्धं तस्य विवर्जयेत् ” ॥

चंद्रिकायाम्—

“ ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् । विना पुत्रं च शिष्यं च दौहित्रं दृहितुः पतिम् ” ॥

स्मृतिभास्करे—

“ सर्वे चापि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु सर्वदा । आशीर्वच्या नमस्कार्यैर्वयस्यस्तु पुनर्नमेत् ” ॥

वृद्धमनुः—

“ अभिवादने तु सर्वत्र पादस्पर्शनमेव वा । विप्राणां प्रांजलिः कार्यो नमस्कारः स उच्यते ” ॥

५. **स्मृत्यर्थसारे—** अभिवादने पदस्पर्शनं नास्ति कुर्याद्वा ।

“ अभिवादे नमस्कारे तथा ग्रत्यभिवादनम् । आशीर्वच्या नमस्कार्यैर्वयस्यस्तु पुनर्नमेत् ॥

“ चियो नमस्या वृद्धाश्व वयसा पतिदेवताः । देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदंडिनम् ॥

“ नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुद्ध्यति ” ॥ इति । **स्मृतिरत्ने—**

“ सूक्ष्माणिकमनाज्ञातमशक्तं रिपुमातुरम् । योगिनं च तपःस्तकं कनिष्ठं नाभिवादयेत् ” ॥

१०. **मनुः (२।१३४)—**

“ दशाद्वास्यं पौरसस्यं पंचाद्वास्यं कलाभृताम् । व्यब्दपूर्वे श्रोत्रियाणामल्पेनापि स्वयोनिषु ” ॥

समानपुरवासिनां दशभिर्विष्णेः पूर्वः सखा भवति । ततोऽधिको ज्यायान् । कलाभृतां गीतादि-
विद्याभृतां पंचाद्वपूर्वः सखा श्रोत्रियाणां वेदाध्यायिनां व्यब्दपूर्वः सखा स्वयोनिषु भ्रातादिषु
स्वल्पेनापि वयसा पूर्वः सखा भवति । ततोऽधिकोऽभिवाद्य इत्यर्थः । आपस्तंवः (१।४।२६-३१)—

१५. “कुशलमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेत् । अनामयं क्षत्रियम् । अनष्टं वैश्यम् । आरोग्यं शूद्रम् । नासंभाष्य
श्रोत्रियं व्यतिवजेत् । अरण्ये च स्त्रियम् ” इति । श्रोत्रियं पथिसंगतमसंभाष्य न व्यतिक्रामेत् ।
अरण्ये सहायरहितदेश स्त्रियमेकाकिनीं दृष्ट्वा असंभाष्य न व्यतिवजेत् । संभाषणं च मातृवद्धगिनी-
वच्च भगिनी किं ते करवाणि न भेतव्यमिति । **मनुरापि (२।१२७-२९)—**

“ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रवंधुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥

२०. “परपत्नी च या स्त्री स्यादसंवंधा च योनितः । तां वृयाद्वतीत्येवं सुभगे भगिनीति वा ” ॥ यमः—

“ स्वस्तीति ब्राह्मणो वृयाद्युष्मानिति भूमिपः । वर्धतामिति वैश्यस्तु शूद्रस्तु स्वागतं वेदेत् ” ॥

तथा च भविष्यत्पुराणे—“ ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्तिकुर्यादिति स्थितिः ” ॥ स्वस्ति-
शब्दार्थमाह यमः—

“ वत्सु च त्रिषु लोकेषु द्याविष्यसनवर्जितम् । यस्मिन्सर्वे स्थिताः कामास्तत्स्वस्तीत्यभिसंज्ञितम् ” ॥

२५. **व्यासः—**

“ कदाचित्कवचं भेदं तोमरेण शरेण वा । अपि वज्रशताधातैर्ब्रह्मणाशीर्न भिद्यते ” ॥

मनुः (२।१३०)—

“ मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरमातृत्विजो गुरुन् । असावहमिति वृयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ” ॥

असावहमिति देवदत्तमिति वृयात्माभिवाद्येत्यर्थः । तथा स्मृतिरत्ने—“ क्रत्विक्पितृव्य-

, श्वशुरमातुलानां यवीयसाम् प्रवयाः प्रथमं कुर्यात् प्रत्युत्थायाभिभाषणम् ” इति ।

बोधायनः (१।२।४६)—“ क्रत्विक्पितृव्यश्वशुरमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्था-

याभिभाषणम् ” इति । गौतमोऽधिवि (६।९)—“ क्रत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसाम्

प्रत्युत्थानमभिवाद्याः ” इति । यत्तु वासिष्ठापस्तंवाभ्यामुक्तम् (१।३।४१)—“ क्रत्विक्श्वशुर-

पितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् ” इति तत अभिवदेत् आभिमुख्येन वदेदित्यभि-

भावणमात्राभिप्रायमिति स्मृतिचंद्रिकादौ व्याख्यातम् (पृ. ३८ पं. २) । हरदत्तस्तु— “अवरवयसः क्रतिविगादयोऽपि अभिवादयंते तानभिवादयमानान्प्रत्युत्थायाभिवदेत् । नान्येष्विव यथासुखमासीन इति व्याकृतवान् । गुर्वादिविषये त्वभिवादने विशेषमाह गौतमः (१५३)— “गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातः” इति । समवायेन्वहमभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृवद्धूनां पूर्वजानां विद्यागुरुणां तद्वृणां च संनिपाते परस्येति च पित्रादीनां समावाये संगमे प्रतिदिनं ५ पादोपसंग्रहणं कुर्यात् । तेषां च युगपत्संनिपाते परस्योपसंग्रहणम् । आपस्तंबोऽपि (१५१८-१९)—“उदिते त्वादित्ये त्वाचार्येण समेत्योपसंग्रहणम् । सदैत्राभिवादनम्” इति । समावृत्तेन सर्वे गुरव उपसंग्राह्याः प्रोष्य च समागम इति च । स एव (१८१९-२०)— “आचार्यप्राचार्यसंनिपाते^१ प्राचार्यायोपसंग्राह्योपसंजिवक्षेदाचार्यम् प्रतिषेदेतिरः” इति । मनुरपि (२२०५)—

“गुरोर्गुरौ संनिहिते गुहवद्वृत्तिमाचरेत् । न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरुनभिवादयेत्” ॥ इति । आपस्तंबः (१६३५)— “यस्मिस्त्वनाचार्यसंबंधाद्वैरवं वृत्तिस्तस्मिन्नवस्थानीयोऽप्याचार्यस्य” इति । यस्मिस्तु पुरुषो शिष्याचार्यभावमंतरेणाधिविद्याचारित्रादिना लौकिकानां गौरवं भवति तस्मिन्नवस्थानीयोऽप्याचार्यं या वृत्तिः स कर्तव्येत्यर्थः । उपसंग्रहणस्वरूपमाह स एव (१५२१-२२)—“दक्षिणे पाणिना दक्षिणं पादमयस्ताद-१५ भ्याधिमृश्य सकुष्ठिकमुपसंगृहीयात् उभाभ्यामेवोभावभिपीडयत उपसंग्राह्यावित्येके” इति ॥ आत्मनः दक्षिणे पाणिनाऽचार्यस्य दक्षिणं पादमयस्तादभ्याधिमृश्य अभिशब्द उपरि भावे अधस्ताच्चोपरिष्ठाच्चाभिमृश्य सकुष्ठकं सगुलकं सांगुष्ठमित्यन्ये । उपसंगृहीयादिद्वयुपसंग्रहणं एतत्कुर्यादुभाभ्यामेव पाणिभ्यामुभावे वाचार्यस्य पादावभिपीडयतो माणवकस्य उपसंग्राह्यावित्येके मन्यंत इत्यर्थः । अत्र मनुः (२२७२)—

“व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणे तु दक्षिणः” ॥ इति । बोधायनः (१२२७-२८)—“श्रोत्रे संस्पृश्य मनः समाधायाधस्ताज्ञान्वोरा पभ्याम्” इत्युपसंग्रहणम् इति । एतच्च गुरुपत्नीनामपि कार्यम् । तथा च मनुः (२२१०)—

“गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः ।

“मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । संपूज्या गुरुपत्नीवत्समस्ता गुरुभार्या ॥ (१३१) १५

“भ्रातृभार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि । विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबंधियोषितैः ॥ (१३२)

“अवृद्धा गुरुपत्नी च नोपसंग्रहमर्हति” । स्मृत्यर्थसारे—“उपसंग्रहणं नाम अमुकगोत्रो देवदत्तशर्मा नामाहं भो अभिवादये इत्युक्त्वा कर्णौ स्पृष्टा दक्षिणोत्तानपाणिना गुरोर्दक्षिणं पादं सव्येन सव्यं गृहीत्वा शिरोऽवनमनम्” इति । “अत्र गुरवो मातास्तन्यदधात्री च पितामहादयो मातामहश्वान्नदाता भयत्राता चार्यश्वोपनेता मंत्रविद्योपदेष्टा तेषां पत्न्यश्वोपसंग्राह्याः समावृत्ते ३० च बालेऽध्यापके समवयस्केऽध्यापके गुरुवच्चरेत्” इति । इत्यभिवादननिरूपणम् । अथ प्रत्यभिवादनम् । तत्र मनुः (२१२५)—

“आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्वास्य नाम्नोऽते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः” ॥ अभिवादने कृते सति विप्रः द्विजः कनीयान्ज्यायसा वाच्यः । अस्य कनीयसो नाम्नोऽते पूर्वाक्षरः प्लुतः । अक्षरशब्देन स्वर एव विवक्षितः । व्यंजनस्य प्लुतासंभवात् । यस्मादकारात्पूर्व-३५

मक्षरं प्लुतं भवति स पूर्वाक्षरप्लुतः । अकारश्च वाच्यः । आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता अ हति वाच्य इति यावदिति मानवे व्याख्याने । आपस्तंबोऽपि (१।३।१७)—

“ प्लावनं च नाम्नोऽभिवादनप्रत्यभिवादने च पूर्वेषां वर्णनाम् ” इति । अत्र हरदत्तः—

अभिवादनस्य यत्प्रत्यभिवादनं तत्राभिवादितितुनाम्नः प्लावनं कर्त्तव्यं प्लुतः कर्त्तव्यः पूर्वेषां वर्णनां ५ शूद्रवर्जितानां अभिवादयमानानां । “ प्रत्यभिवादेऽशूद्र ” इति पाणिनीयस्मृतिः (१२।८३) ।

तत्र वाक्यस्य टेरित्यनुवृत्तेः प्रत्यभिवादवाक्यस्यांते नामप्रयोगः । तस्य टे: प्लुतः । आयुष्मान्भव सौम्योति वाच्यो विप्र इति स्मृत्यंतरवशः नाम्नश्च पश्चादकारः ‘आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता अ’ इति प्रयोगः । शंभुः विष्णुः पिनाकपाणिः चक्रपाणिः इत्यादि नामां संबुद्धौ गुणे कृते एचोऽ-

प्रृथस्य दूराद्धूते पूर्वस्याधस्यादुत्तरस्येदुत्तावित्ययमपि विधिर्भवति । अंते अकारः तयोर्व्या- १० वच्चि संहितायामिति यकारवकारौ च भवतः । तथा च प्रयोगः । शंभाव विष्णाव पिनाक-

पाणाय चक्रपाणाय इति व्यंजनांतेषु च । अग्निचिक्षिद इत्यादि प्रयोग इति । वसिष्ठोऽपि—

“ आमंत्रितो योऽस्य श्वरः स प्लवत् ” इति । एवं च अभिवादनकृत्तामगतांतिमस्वरातिरिक्ते पूर्वोकारः पठितव्यः । अंतिमस्वरश्च प्लावयितव्य इति हरदत्तादीनां बहूनामभिमतम् । स्मृति- १५ चंद्रिकायां पराशरमाधवीये च मनुवचनमन्यथा व्याख्यातम् । तथा हि । पूर्वमक्षरं यस्यासौ पूर्वाक्षिरः । पूर्वमक्षरं च सामर्थ्याद्यं जनं स्वरगाणां स्वरपूर्वकत्वात्संभवात् । अतश्चाभिवादक- नामगतो व्यंजननिष्ठोऽतिमस्वरः प्लावनीयः अकारेणांतिमस्वरमात्रमुपलक्ष्यते । अशेषनाम्ना- मकारांतत्वाभावात् । न तत्रापूर्वकारो विधीयते । तथा च सत्येवं प्रयोगो भवति । आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता इतीति । एतेषां मते पूर्वाक्षर इति पृथक्पदं द्रष्टव्यम् । अत्रातिरिक्ताकारपक्ष एव शिष्टाचारानुगुणः । भनुः (२।१२६)—

१० “ यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥

“ नामधेयस्य येकेचिदभिवादं न जानते । तान प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ”॥(१२६)इति। पतंजलिः—

“ अविद्वांसः प्रत्यभिवादेनाम्नो येन प्लुतिं विदुः । कामं तेषु च विप्रोष्य स्त्रियवायमहं वदेत् ”॥इति ।

अहं वदेत् । अहमिति वदेदित्यर्थः । यमः—

१५ “ यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । आशिषं वा कुरुशेष स याति नरकं ध्रुवम् ॥

“ अभिवादे कृते यस्तु तं विप्रं नाभिवादयेत् । इमशाने जायते वृक्षो ग्रुधकाकोपसेवितः ॥

“ अभिवादे तु यः पूर्वमाशिषं न प्रयच्छति । यद् दुष्कृतं भवेत्स्य तस्माद्वागं प्रचक्षते ॥

“ तस्मात्पूर्वाभिभाषीस्याच्चालस्यापि धर्मवित् । सुरां पिबेतिवक्तव्यमेवं धर्मो न हीयते ”॥इति ।

भनुः (२।१२६)—

३० “ न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यर्वायानपि यो भवेत् । भो भवत्पूर्वकं चैवमभिभाषेत धर्मवित् ”।

संनिधौ भोशब्दः । यथा भो यजमानेति । असंनिधौ भवछब्दः । यथा ‘तत्र भवान्यजमान’ इति । स्मृतिरत्ने—

“ आचार्यं चैव तत्पुत्रं तद्वार्यो दीक्षितं गुरुम् । पितरं च पितृंश्चैव मातरं मातुलं तथा ॥

“ हितैषिणं च विद्वांसं श्वशुरं यतिमेव च । न ब्रूयात्तामतो विद्वान्मातुश्च भगिनीं तथा ” इति ॥

३५ इति प्रत्यभिवादननिष्ठपणम् । अत्र ब्रह्मचारिधर्मः । संधर्षः—

“ ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोमुखम् । सायं प्रातश्च भिक्षेत ब्रह्मचारी समाहितः ॥

“ निवेद्य गुरवेऽश्रीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ” ॥ इक्षः—

“ प्रातर्माध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यतेष्विषवणं प्रोक्तं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः ” ॥

अत्र विशेषमाह विष्णुः— “ दंडवन्मज्जनम् ” इति । अनेनाङ्गनैर्मल्यं न कार्यमित्युक्तम् । अत दवाहापस्तंवः (१२१३०) “ नाप्सु श्लाघमानः स्नायात् ” इति । चंद्रिकायाम्— ५

“ मेखलामजिनं दंडमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं कटिसूतं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् ” ॥

समः—

“ दंडं कमंडलुं वेदं मौजीं च रशनां तथा । धारयेऽब्रह्मचर्यं च भिक्षान्नाशी गुरौ वसन् ” ॥

वेदो दर्भमुष्टिः । गुरौ गुरुगृह इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. २६)—

“ गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः । आहूतश्वाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत् ” ॥ १०

मनुः (२०७४)—

“ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावते च सर्वदा । स्वत्यनोऽकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ” ॥

“ ब्रह्मारंभेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ” (७१) । अंगिराः—

“ प्राप्ते वेदानुवचने निसर्गे चान्वहं गुरोः । उपसंग्रहणं कार्यं विप्रोष्य त्वागतेन च ” ॥

मनुः (२१९१-१९२)— १५

“ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा । कुर्यादध्ययने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥

“ शरीरं चैव वाचं च बुद्धींद्रियमनांसि च । नियम्य प्रांजालिस्तिष्ठेद्रीक्षमाणो गुरोमुखम् ॥

“ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः समाहितः । आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखे गुरोः ” ॥

उद्धृतपाणिः वस्त्रादिभिरप्रच्छादितपाणिः ॥

“ हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥ (१९४) २०

“ प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् । नासीनो न च मुंजानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ” ॥ (१९५)

प्रतिश्रवणमात्मानं प्रति गुरुणा प्रयुज्यमानस्य वाक्यस्य श्रवणं प्रतिसंभाषा । गुरुं प्रति स्ववाक्यम् प्रतिश्रवणसंभाषे कथं कुर्यादित्याकांक्षायामाह स एव (११९६-१९७)—

“ आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छस्तु गच्छतः । प्रत्युद्धम्यन्वा व्रजतः पश्चाद्वावच्च धावतः ॥

“ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चांतिकम् । प्रणम्य तु शयानस्य विदेशे चैव तिष्ठतः ” ॥ १५ प्रणम्य प्रणतो भूत्वा । विदेशे विनते देशेऽश्वभ्रादौ ।

“ नीचं शश्यासनं चास्य नित्यं स्याद् गुरुसंनिधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ” ॥ (१९८)

नित्यमुत्तराश्रमेष्वपि ।

“ न व्याहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकूर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ” ॥ (१९९)

केवलं तत्र भवदादिशब्दरहितम् । ३०

“ गुरोर्थत्र परीवादो निंदा वाऽपि प्रयुज्यते । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गंतव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ (२००)

“ परीवादी खरो भवति श्वा वै भवति निंदकः । परिभोक्ता द्वार्मिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ (२०१)

परिभोक्ता गुरोर्भागादधिकभागी ।

“ दूरस्थे नाव्ययेदेनं न कुद्धो नांतिके ष्वियाः । यानासनस्थश्वैर्नमवरुद्धाभिवादयेत् ” ॥ (२०२)

अंतिके ष्विया रहसि पत्नीसहितमित्यर्थः ।

“प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह । असंश्रवे चैव गुरौ न किंचिदपि कीर्त्येत् (२०३)॥ प्रतिवाते पुरतो नासीत । अनुवाते पृष्ठतः पार्श्ववातयोरप्युपलक्षणम् । यथा स्वशरीरस्पृष्टो वातो नैनं स्पृशेत्तथासीतिति । असंश्रवे सुखसंश्रवणायोग्यदेशे

“ गोश्वोष्ट्रयानप्रासादस्वास्तरेषु कटेषु च । आसीत गुरुणा सार्धं शिलाकलकृनौषु च (२०४) ॥ ५ गोश्वोष्ट्रयुक्तं यानं गोश्वोष्ट्रयानन् । स्वास्तरः त्रुगादिसमूहः ।

“बालः स्मानजन्मा वा शिष्यो वा यजकर्मणि । अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति”॥(२०८) यजकर्मणि आचार्ये यज्ञादिकर्मपरवश इत्यर्थः । गुरुपुत्रे गुरुवृत्तीनां प्राप्तानामपवादमाह स एव (२२०९)—

“ उच्छादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद्बुद्धुपुत्रस्य पादयोश्वावनेजनम् ॥

१० “अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोच्छादनमेव च । गुरुपत्न्यान कार्याणि गात्राणां च प्रसाधनम् (२११)॥ प्रसाधनं अलंकारः ।

“ अविद्वांसमलं केचिद्विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा ह्यत्पर्थं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् (२१४) ॥

“ मांत्रां स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥(२१५)

“अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । वाक्चैव मधुरा श्लङ्घणा प्रयोज्या धर्ममीप्सिता॥(१५९)

१५ “यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सत्ये गुप्ते च सर्वदा । स वै सर्वमवाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥ (१६०) सर्वदा आश्रमांतरेऽपि ।

“नासुंदुःस्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः । यया चोद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्॥(१६१)

“ सवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् । संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ (१७५)

“नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्विषिपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ (१७६)

२० “वर्जयेन्मधुमांसानि गंधमाल्यरसान्नित्रयः । शुक्तानि चैव सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥(१७७)

“अभ्यंगमंजनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम् । कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥(१७८)

“द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम् । स्त्रीणां च प्रेषणालंभमुपघातं परस्य च”॥ इति (१७९)। याज्ञवल्क्यः (आ. ३३)—

“ मधुमांसांजनेऽच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ” ॥

२५ मधु क्षेत्रस्त्रिष्टमगुणोः । तथा च वासिष्टः (१४२०) । “ उच्छिष्टमगुरोरभोज्यम् ” इति ।

“ स चेद्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं सर्वं प्राशीयात् ” (२३९) इति च । व्याधीयीत व्याधिमनुभवतीत्यर्थः । माघवीये—

“नादर्शं चैव वर्क्षित नाचेऽदंतधावनम् । गुरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं प्रयुं जीत न कामतः”॥ इति। आपस्तंवः (१४१२१)—“पितुज्येष्टस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यम् ” इति । गुरोरुच्छिष्टस्य

३० भोज्यत्वादेव तद्वार्यादुत्रेषु चैवमिति गुरुधर्मातिदेशेन प्राप्तस्योच्छिष्टभोजनस्यापवादमाह गौतमः (२१३८)—“ नोच्छिष्टशनस्नापनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि ” इति ।

स एव (२१९-२१)—“ वर्जयेन्मधुमांसगंधमाल्यदिवास्वप्नांजनाभ्यंजनयानोपान-त्त्वकामक्रोधलोभमोहवादवादनस्नानंतधावनहर्षवृत्यगीतपरिवादभयानि । गुरुदर्शने ‘कर्ण-प्रावृतावस्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवनहसितविजूभितावस्फोटनानि ” इति ।

३५ मनुः (२२१९)—

“मुङ्डो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छिसाजटी” इति । कात्यायनः—“सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणः” इति । एतच्छेदोगभिप्रायम् । सुमंतुः—

“ब्रह्मचर्यं तपो भैक्ष्यं संध्ययोरग्निकर्मं च । स्वाध्यायो गुरुवृत्तिं चर्येण ब्रह्मचारिणः ॥

“यज्ञं शिष्येण कर्तव्यं यज्ञं दासेन वा पुनः । कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत्तु पार्श्वतः ॥

“किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्मसु कोविदः ।

“न स्नानेन न होमेन नैवाग्निपरिचर्यया । ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुपूजनात् ॥

यमः—

“गुरुवृद्धीनोऽस्वतंत्रः स्यात्पूर्वोत्थायी गुरोर्गृहे । सदा जगन्यसंवेशी जितशिष्ठो जितोदरः ॥

“जितनिद्रो जितालस्यो जितकोषो जितार्थवान् । गंधमालयं चित्रवस्त्रं वर्जयेद्वित्थावनम् ॥

“सर्वं पर्युषितं वर्जयं घृतं च लवणं तथा । मलापकर्षणस्नानं शूद्राद्यैरपि भाषणम् ॥

“गुरोरवज्ञां च तथा ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥” व्यासः—

“अभुक्तवति नाश्चीयादपीतवति नो पिबेत् । न तिष्ठति तथासीत नासुते प्रस्वपेत्तथा ॥

“नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि । आक्रामेदासनं नास्य च्छायादीन्वै कदाचन ॥

“यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः । आसीत न गुरोः कूर्चे पीठके वा समाहितः ॥

“आसने शयने चैव नैव तिष्ठेत्कथंचन” ॥ संवर्तः—

“दिवा स्वपिति चेत्स्वस्थो ब्रह्मचारी तु पर्वणि । स्नात्वा सूर्यं समभ्यर्चं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

“भिक्षाटनमकृत्वा तु स्वस्थोऽप्येकान्नमश्रुते । अस्नात्वा चैव यो भुड्के गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

“ग्रासस्य नियमो नास्ति प्रथमाश्रमवासिनः । इतरेषां क्रमेणैव द्वात्रिंशत्पोङ्गशाष्टं च ॥

“आपोशनमकृत्वा तु यो भुंक्तेऽनापदिद्विजः । भुंजानस्य यदा ब्रूयात् गायत्र्यष्टशतं जपेत्” ॥ इति ।

हारीतः—

“उपनीतो माणवङ्को वसेद्गुरुकुलेष्वथ । गुरोः कुले प्रियं यत्स्यात्कर्मणः मनसा गिरा ॥

“ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा वन्हेरुपासनम् । उदकुंभान्गुरोर्द्वाद्गोग्रासं चेष्टनानि च ॥

“कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि । विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥

“यः कश्चित्कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् । न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिद्युतः ॥

“तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये । शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधौ ॥

“शयनात्पूर्वमुत्थाय दर्भमृद्वित्थावनम् । वस्त्रादिकमथान्यज्ञं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥

“स्नाने कृते ततः पश्चात्स्नानं कुर्वति दंडवत्” ॥ इति । नारदः—

“अविद्याग्रहणाच्छिष्यः शुश्रूषेत्प्रयतो गुरुम् । तद्वृत्तिगुरुदारेषु गुरुपुत्रे तथैव च ” ॥

हारीतः—“हयरथग जचैत्यवृक्षवृषभारोहणमहानदीप्रतरणमहासाहस्रिद्वानि वर्जयेत्” इति ।

आपस्तंबः (१२।१९-२४)—“आचार्याधीनः स्यादन्यत्र पतनीथेभ्यः । हितकारी गुरोर- ,

प्रतिलोमयन्वाचा । अधासनशायी । नानुदेश्यं भुंजीत । तथा क्षारलवणमधुमांसानि । अदिवा

स्वापी” इति (१३।११-२१)। “अनृत्तदर्शी । सभाः समाजांश्चागंता । अजनवादशीलः । रहः-

शीलः । गुरोरुदाचारेष्वकर्ता स्वैरिकर्माणि । स्त्रिभिर्यावदर्थसंभाषी । मृदुः शांतो दांतो न्हीमान्

दृढधृतिः” इति च । शंखः—“न वेदमनधीत्यान्यां विद्यामधियितान्यत्र वेदांगेभ्यः” इति ।

हारीतोऽपि—“वेदो विद्या ब्रह्माणस्य तप्तरिज्ञानार्थमंगानि” इति । लघुव्यासः—

“ वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चापि यत् । अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां खंडनं यथा ॥

“ यथा पशुभारहारी न तस्य भजते फलम् । द्विजस्तथार्थीनभिज्ञो न वेदफलमश्चुते ॥

“ ज्ञानं कर्म च संयुक्तमुक्त्यर्थं कथितं यथा । अधीतं श्रुतसंयुक्तं तथा श्रेष्ठं न केवलम् ॥

“ समुच्चितं स्तोकमपि श्रुताधीतं विशिष्यते । चतुर्णामिव वेदानां केवलाध्ययनात् द्विजः” ॥ इति ।

५ चंद्रिकायाम्—

“ धर्मशास्त्रं तु विज्ञेयं शब्दशास्त्रं तथैव च । पुराणानीतिहासांश्च तथास्यानानि यानि च ॥

“ महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च ” । इति । वसिष्ठः—

“ यच्छास्वयैस्तु संस्कारैः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् । तच्छास्वाध्ययनं कुर्यात् त्यक्त्वा तत्पतितो भवेत् ॥

“ न जातु पारशास्वोक्तं बुधः कर्म समाचरेत् । आचरन्परशास्वोक्तं शास्वारंडः प्रकीर्तिः” ॥ इति ।

१० विद्याधिगमोपायमाह नारदः—

“ योऽहेरिव गणाद्वीतः सौहित्यान्वरकादिव । राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥

“ यत्कीर्तिः पांसुभिः श्लक्ष्मैर्वल्मीकिः क्रियते महान् । न तत्र बलसामर्थ्याद्योगस्तत्र कारणम् ॥

“ शनैर्विद्या शनैरध्वा आरोहेत्पर्वतं शनैः ” ॥ सौहित्यं तृप्तिः । तथा विघ्नहेतूनपि स एवाह—

“ द्यूतं पुराणशुश्रूषा नाटकासक्तिरेव च । स्त्रियस्तंद्री च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥

१५ “ गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्टक्लेन धनेन वा । अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ” ॥

अध्यापने च नियमविशेषानाह यमः—

“ सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं नरः ” ॥

गौतमः (३।४८)—“ शिष्यशिष्टिवधेन ” । इति । शिष्टिः शासनम् । अवधेन ताडनम-
कृत्वेत्यर्थः । निर्भर्त्सनेन साधयितुमशक्तौ स एवाह (३।४९)—“ अशक्तौ रज्जुवेणुदलाभ्यां

२० तनुभ्याम् ” इति । भनुरपि (८।३००-३०१)—

“ भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः । प्राप्तापराधास्ताङ्ग्याः स्यू रज्जवावेणुदलेन वा ॥

“ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोक्तमांगे कथंचन । अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चोरकिलिषम् ” ॥

यमः—“ संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुज्ञनिमनिर्दिशन । हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः ” ॥

मनुः (१२।१२४)—

२५ “ तपो विद्या पवित्रस्य निःश्रेयसकरं परम् । तपसा कल्पषं हंति विद्ययाऽमृतमश्चुते ” ॥

“ अनेन क्रमयोगेन संस्कृताःमा द्विजः शनैः । गुणौ वसन्संचिन्तुयाद्व्याधिगमिकं तपः ॥ (२।१६४)

“ तपोविशेषैर्विधैर्वर्तेश्च विधिचोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ” ॥ (१६५)

वर्तैः प्राजापत्यादिभिः । कृत्स्नः सांगः । अत्रापस्तंवः । (१।५।१-४)—“ नियमेषु तपःशब्दः ।

तदतिक्रमे विद्याकर्म निस्त्रवति ब्रह्म सहापत्यादेतस्मात् । कर्तपत्यमनायष्यं च । तस्माद्वषयोवरेषु

३० न जायंते नियमातिक्रमात् ” इति । अस्मिन्ब्रह्मचारिधर्मप्रकरणे ये नियमा निर्दिष्टास्तेषु तपः

शब्दो दृष्टव्यः । तेषां नियमानामतिक्रमे विद्याग्रहणं तत्कर्म ब्रह्म एतस्मान्नियमातिक्रमिणाध्येतुः

पुरुषादपत्यसहितान्निस्त्रवति ब्रह्मयज्ञादिष्पूर्युज्यमानमप्यकिंचित्करमित्येषोऽर्थो विवक्षितः ।

न केवलमकिंचित्करम् प्रत्युतःनर्थकारीत्याह । कर्तपत्यमनायुष्यं च इति । श्वभ्रामिधायी नरको

लक्ष्यते । पतत्यनेनेति पत्यम् । नरकपतनहेतुर्भवति । अनायुष्करं च तस्मान्नियमातिक्रमादवरे-

५ ष्वर्वाचीनेषु कलियुगवर्तिषु क्षषयो मन्त्रटृशो न भवन्ति । अनियमस्येदानीमवर्जनीयित्वादित्यर्थः ।

अथ वेदव्रतानि । स एव—“छन्दसां साधनार्थं हि व्रतानीह चरेद्बुधः” इति । व्रतानि च तेनैवोक्तानि “प्राजापत्यं सौम्यमाग्रेयं वैश्वदेवं च” इति । भरद्वाजः—“अथातो व्रतादेश-विसर्जने व्याख्यास्यामः । पर्वयुदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्यनक्षत्रे होतृव्रतमुपनिषद्वतं शुक्रियं गोदानम्” इति । तथा बोधायनोऽपि—“चत्वारि वेदव्रतानि होतारः शुक्रियाणयुपनिषद् आरणान्युदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे शुक्रियारंभो गोदानं षोडशे वर्षे” इति । आश्वलायनोऽपि—“चत्वारि वेदव्रतानि महानाम्निमहाव्रतमुपनिषदोऽगोदानमिति । उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे गोदानं षोडशे वर्षे कर्त्तव्यम्” इति । गर्गः—

“व्रतं कुर्यात् सावित्रं विधिनारण्यकव्रतम् । वेदव्रतानि कुर्वीत ततो वेदान् समन्यसेत् ॥
“उत्तरायणे सूर्ये शुक्ले पक्षे शुभे दिने । स्वाध्यायदिवसे कुर्यात्क्षत्राण्यत्र चौलवत्”॥ भरद्वाजः—
“उत्तरायण आपूर्यमाणपक्षे च पर्वणि । वेदव्रतानि चत्वारि कुर्यात्पूर्वाङ्गं एव च ॥
“दक्षिणे त्वयने वाऽपि श्रावणस्य तु पर्वणि । सौम्यं वेदव्रतं कुर्यात्प्राजापत्यादि चात्र हि ”॥
वृत्तावेयः—

“वेदव्रतानि चत्वारि कुर्यात्कालस्तु चौलवत् । उपाकर्मवादिच्छंति व्रतेष्वन्येषु चैव हि ”॥ इति ।
आपस्तंबः—

“सौम्यव्रतं प्रकुर्वीत यथावच्छुक्रियव्रतम् । प्राजापत्यादि चत्वारि भवेयुस्तद्विनेऽपि वा ॥ १५
“प्राजापत्यव्रतं कृत्वा तदधीत्य विसृज्य च । सौम्यव्रतमुपाकृत्य विसृज्याग्नेयमाचरेत् ॥
“उत्सृज्य वैश्यदेवाख्यमुपक्रम्य समुत्सृजेत्” इति । स्मृत्यर्थसारे—“उपनयनाद्युपाकर्मीतं सावित्रीवितं ततो वेदव्रतारण्यकव्रतानि प्रतिव्रतमुपैनयनमेतेषां लोपे त्रीन्वा षड्वा द्वादश वा कृच्छ्रान् चरित्वा पुनर्वतं कुर्यात्” । इति ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणम् । अथ पुनरुपनयनम् ।
अत्रापस्तंबः—

“अजिनं मेखलादंडं भैक्षाचर्यं च यस्यजेत् । पुनःसंस्कारमईं तु विधिद्वेष्टन कर्मणा” । इति ।
पराशरः (१२।३)—

“अजिनं मेखलादंडं भैक्षाचर्यव्रतानि च । यदि मध्ये निवर्त्तेन्पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति ।
द्यासः—

“सिंधुसौवीरसौराष्ट्रान् तथा प्रत्यंतवासिनः । अङ्गवङ्गकलिंगांश्च गत्वा संस्कारमर्हति” ॥ १५
प्रत्यंतोऽन्त्यदेशः ।

“हिमवत्कौशिंकौ विध्यं पारंपर्यस्य पश्चिमम् । तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति” ॥
आदित्यपुराणे—

“सौराष्ट्रसिंधुसौवीरानवंतीदक्षिणापथम् । एतान्देशान्द्वं जो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति” ॥
बोधायनः—“अथोपनीतस्य व्रात्यव्रतानि भवन्ति । नान्यस्योच्छिष्ठं भुंजीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न द्विया सह भुंजीत मधुमांसं श्राद्धं सूतकाञ्चमदशाहक्षीरं छत्राङ्कं निर्यासं विलयनं गणाञ्च शूद्राञ्चामित्येषुपयुक्तेषु पूर्वकृतसंस्कारो न तिष्ठति” इति । अतः पुनरुपनयनं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।
स एव—

“अमत्या वारुणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषके । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति ।

“ब्रह्मचारिणः शवकर्मणा व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्याच्च” इति । मनुः—

“अज्ञानात्प्राइय विष्णुत्रं सुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हति व्रयो वर्णा द्विजातयः”॥

पराशरः—

“विष्णुत्रमध्यशुध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् । पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा च शुध्यति”।

५ एतच्च संस्कारात्प्रागेवेति वेदितव्यम् । तथा च विष्णुः (५१।३-५)— “विद्वाराहग्रामकुक्कुटगोमांसभक्षणेषु च सर्वेष्वेतेषु द्विजातीनां प्रायाश्चित्ताते पुनःसंस्कारं कुर्यात्” इति । यमः “भूसुरो मद्यपाने च कृते गोभक्षणेऽपि च । तत्कृच्छ्रपरिक्षिष्ठो मौजीहोमेन शुध्यति”॥

शातातपः—

“लशुनं गृजनं जग्धवा पलांडुं च तथा द्विजः । उष्ट्रमानुषेभाश्वरात्मक्षीरभोजनात् ॥

१० “उपायनं पुनः कुर्यात्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः” । संघ्रहे—

“चंडालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चांद्रायणं चरेत् । बुद्धिपूर्वे तु कृच्छ्रावदं पुनः संस्कारमर्हति”॥
कृतोर्ध्वदेहिकविषये

“जीवन्यादि समागच्छेद घृतकुंभे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापायित्वाऽथ जातकर्मादि कारयेत्॥इति”

मृद्घरत्ने— “अंगवंगकालिंगसौवीरसौराष्ट्रावंतिमात्स्यादिदेशगमने द्विजस्य पुनःसंस्कारः ।

१५ तीर्थयात्रायां न दोषः । विष्णुत्रप्राशने मद्यपाने सिंधुतरणे च पुनःसंस्कारः । पितृमातामहाचार्योपाध्यायमातुलव्यतिरिक्तप्रेतकार्ये पितृज्येष्ठभ्राताचार्यव्यतिरिक्तोच्छष्टभोजने मधुमांसप्रेतान्नशौचान्नगणिकान्नशूद्रान्नभोजने ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनं कार्यम् । ज्येष्ठे पश्चात्कृतोपनयने पूर्वोपनीतः कनिष्ठः पुनरुपनेयः”॥

“पतनीयानि यान्येव कर्मण्याहुर्महर्षयः । तानि कृत्वा द्विजो मोहात्पुनःसंस्कारमर्हति”॥

२० पुनरुपनयने वर्ज्यान्याह मनुः (२१।१५१)—

“वपनं मेखला दंडो भैक्षाचर्या व्रतानि च । निर्वर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥

“कालश्वैव वसंतादिर्नि निरक्षियः कथंचन” इति । संस्कारमंजर्या— “अथ पुनःसंस्कारं व्यास्यास्यामः । समिदाधाने विशेषः । पुनस्त्वादित्या इतिसमिदाधानम् । अथ व्रात्यप्रायश्चित्तं जुहोति । ‘यन्म आत्मनः’ ‘पुनरग्निश्चक्षुरदात्’ इति द्वाभ्यामथ पकान्नं जुहोति “सप्त ते अग्ने समिधः सप्तजिव्हा” इति । स्विष्टकृतप्रभृतिसिद्धमा धेनुवरप्रदानात् इति । अथापरः कल्पः । गुरो-रुच्छिष्ठं वा भुंजीत । दक्षिणादानं मेखलादेनिवृत्तिः । अन्यतस्वं स्वगृह्योक्तं कर्तव्यमिति । अपरः कल्पः । आ परिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधाय व्रात्यप्रायश्चित्तं करोति इति । अथापरः कल्पः । ब्राह्मणवचनात्सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिमंडय प्राशय कृतप्रायश्चित्तो भवति इति । एतेषु पक्षेषु गुरुलघुनिमित्तापेक्षया व्यवस्था द्रष्टव्या” । इति पुनरुपनयननिरूपणम् ।

२५ ३० अथ ब्रह्मचर्यकालावधिः । अध्येत्रुसामर्थ्यानुरूपमाह मनुः (३।१)—

“षट्क्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ वैवेदिकं व्रतम् । तदर्थिकं पादिकं वा ग्रहणात्मिकमेव च”॥ १८-
विंशतोऽब्दानां समाहारः षट्क्रिंशदब्दी । तत्र भवं षट्क्रिंशदाब्दिकम् । एवं वैवेदिकम् । तदर्थ-
मष्टादशाब्दाः । तद्युक्तं तदधिकं एवं पादिकं ग्रहणान्तिकं च । यमोऽपि—

“वसेत् द्वादश वर्षाणि चतुर्विंशतिमेव वा । षट्क्रिंशतं वा वर्षाणि प्रैतिवेदं वतं चरेत्”॥

३५ ३६ यात्रावलक्ष्यः (अ. ३६)—

१ क्षत्र-मझति । २ रुद्र-मनीषिणः । ३ क्षत्र-ग्रती ।

“ प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य द्वादशाब्दानि पञ्च वा । ग्रहणात् केशांत्यके केशांतश्चैव षोडशे ”॥ केशांतो नाम गोदानाख्यं कर्म । तत्तु षोडशे वर्षे कार्यमित्यर्थः । बोधायनोऽपि (१२।१-६)— “ अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेच्चतुर्विंशतिं वा द्वादशं वा प्रतिवेदम् । संवत्सरावैमं वा । प्रतिकांडं ग्रहणातं वा । जीवितस्यास्थिरत्वात् ‘कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति’श्रुतिरपि ” । प्रतिकांडं प्राजापत्यादीनां पञ्चानां कांडानामेकैकस्मिन्कांडे संवत्सरावममित्यर्थः । ग्रहणातपश्च एव युक्त ५ इत्यत्र हेतुः । जीवितस्येति । आपस्तंवः (१२।११-१६)— “ उपेतस्याचार्यकुले ब्रह्मचारिवासा अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पाद्मनम् अर्धेन त्रिभिर्वा द्वादशावराध्यम् ” इति । एतदशक्तविषयम् । तथा च देवलः—

“ अतः परमष्टाचत्वारिंशद्वर्षिंकं वेदवत्तर्चर्यामातिष्ठेदशक्तश्चेच्चतुर्विंशतिवार्षिकीं वा ” इति । गौतमः (३।५१-५२)— १०

“ द्वादशवर्षाण्येकवेदं ब्रह्मचर्यं चरेत् । प्रतिद्वादृशं वा । सर्वेषु ग्रहणातं वा ” इति । भारद्वाजः—

“ अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पुराणं वेदं ब्रह्मचर्यं संप्रतिशक्त्या वेदाध्ययनादित्येकं आहुरागोदानकर्मण इत्पेके ” इति । दक्षः—

“ स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदवतानि च । ब्रह्मचारी भवेत्तावद्वृद्धिं स्नातो गृही भवेत् ” ॥ १५
व्यासः—

“ अधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थमधिगम्य च । वतानि क्रमशः कृत्वा समावर्तनमाचरेत् ॥

“ वेदमेकं समभ्यस्य कृत्वा वेदवतानि च । गुरवे दाक्षिणां दत्त्वाऽप्यशक्तस्तदनुज्ञया ॥

“ समावृत्योद्दहेत्कन्यां संन्यासमथवा वजेत् ” ॥ अथ गोदाननिरूपणम् । गर्गः—

“ जन्मनः षोडशे वर्षे पूर्णमास्यामुदग्रवौ । चौलोकविधिवरेषु गोदानाख्यवतं चरेत् ॥

“ यदि चेत्पोऽशादवीर्वेदगारंगतो भवेत् । गोदानिक्वर्तं कृत्वा समावर्तनमाचरेत् ” ॥ प्रचेताः— २०

“ गोदानं षोडशे वर्षे अर्वाग्ना काश्चिदिष्यते । यस्मिन् कस्मिन् वासरे वा गोदानं स्नानतः पुरा ” ॥

भरद्वाजः— “ पोऽशे वर्षेऽस्य गोदानं कुर्वन्ति संवत्सरं कृतगोदानो ब्रह्मचर्यं चरत्यग्निगोदानो वा भवति ” इति ॥ आपस्तंवः— “ एवं गोदानमन्यस्मिन्नपि नक्षत्रे षोडशे वर्षेऽग्निगोदानो वा स्यात् ” इति । अस्मिन्नग्निरेव देवतेत्यर्थः । लघुद्व्यासः—

“ क्रगादिकमधीत्यातो न्यायतस्तु तदर्थावेत् । सम्यग्वतानि संसेव्य समावर्तनमर्हति ” ॥ २५

एतत्सर्वं समुच्चयसंपादनसमर्थविषयम् । अन्यथा तु वत्सात्रसमाप्तावपि स्नानं भवत्येव । तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. ५१)—

“ गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । वेदवतानि वा पारं नीत्वाऽप्यभयमेव वा ” ॥ इति ।

एतेन स्नातकौविद्यैः प्रतिपादितं भवति । यथाह हारीतः— “ त्रयः स्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको वत्सनातको विद्यावत्सनातकः ” इति । “ यः समाप्य वेदमसमाप्य वेदवतानि समा-

वर्तते स विद्यास्नातकः । यस्तु समाप्य वतानि असमाप्य वेदं स वत्सनातकः । यः पुनरुभयं

स विद्यावत्सनातकः ” इति । एवं च वत्सनातकस्य परिणयनोत्तरकालमध्ययनं समाप्तं तदर्थज्ञानं चेति मंतव्यमिति समृतिचंद्रिकायाम् । अत्र गर्गः—

“ षट्टिंशदाद्विकं वाऽपि गुरोऽस्त्रैवेदिकं वजेत् । यद्वा द्वादशवर्षाणि षट्टाऽथ त्रीजि वा भवेत् ॥

“ संवत्सरं वत्सरार्थं त्रिमासमथ वा भवेत् । मौँजीवं धाद्वादशाहं त्रिगत्रं वा चरेद्वतम् ॥

“ गोदानिकव्रतं कृत्वा समावर्त्तनमाचरेत् ” इति ॥ अथ स्नातकविधिः । व्यासः—

“ गुरुशुश्रूषया विद्यां संप्राप्य विधिवद्विजः । स्नायीत तदनुज्ञातो दत्वाऽस्मै दक्षिणां हि गाम् ” ॥ इति ।

एतत् गोदानं प्रीतिसाधनद्रव्योपलक्षणार्थम् । अत एव मनुः (२२४६) —

५ “ क्षेत्रं हिरण्यं गामश्च छत्रं वोपानहं ततः । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरवे प्रीतिमाहरेत् ॥

“ न पूर्वं गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित् । स्नास्यस्तु गुरुणाऽज्ञसः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ” ॥ (२४५)

लघुद्वारितः—

“ एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्रव्यं यद्वत्वा त्वचृणो भवेत् ” ॥

एतच्च दक्षिणादानमाश्रमांतरप्रवेशेऽपि वेदितव्यम् । “ गुरवे दक्षिणां दत्वा स यमिच्छेत्तमावसेत् ”

१० इति स्मरणात् । दक्षिणादानसामर्थ्याभावे तदनुज्ञाया स्नानमाह गौतमः (३१५४-५५) —

“ विद्यांते गुरुरर्थेन निमंडयः । ततः कृतैनुज्ञातस्य स्नानम् ” इति । इति ब्रह्मचर्यकालनिष्ठपणम् । अथ नैषिकधर्माः । तत्र इक्षः—

“ द्विविधो ब्रह्मचारी तु दक्षशास्त्रे प्रपद्यते । उपकुर्वाणकः पूर्वो द्वितीयो नैषिकः स्मृतः ” ॥

तत्रोपकुर्वाणधर्मोऽभिहितः । नैषिकस्य धर्ममाह याज्ञवल्क्यः (आ. ४९-५०) —

१५ “ नैषिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसंनिधौ । तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥

“ अनेन विधिना देहं साधयन्विजितेद्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहा जायते पुनः ” ॥

एवमुक्तप्रकारेणात्मानं निष्ठामुक्तांतिकालं नयतीति नैषिकः । स यावज्जीवं स्वातंडयं विना आचार्यादिसर्मापि वसेत् । अनेनोक्तविधिना देहं साधयन्क्षपयन्निजतेद्रियः ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक-मपृत्वमाप्नोतीत्यर्थः । तथा च मनुः (२२४३-२४४) —

२० “ यदि त्वात्यंतिकं वासं रोचयेत् गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमा शरीरविमोक्षणात् ॥

“ आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यंजसा विप्रो ब्रह्मगः सद्ग शाश्वतम् ” ॥

“ आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुदारे सपिंडे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ” ॥ (२४७)

“ एषु त्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुंजानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्वेष्मात्मनः ” ॥ (२४८) —

“ एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । स गच्छत्युत्तमं स्थानं न चेहा जायते पुनः ” ॥ (२४९) इति ।

२५ हारीतः—

“ यस्यैतानि सुगुप्तानि जिब्होपस्थोदरं करः । संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥

“ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्ये यावदायुषम् । तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाऽथवा कुले ॥

“ न विवाहो न संन्यासो नैषिकस्य विधीयते ॥

“ इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्वेष्मतंद्रितः । नेह भूयोऽभिजायेत ब्रह्मचारी दृढवतः ॥

३० “ यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥

“ संप्राप्य विद्यामातिदुर्लभां शुभां फलं च तस्याः सुलभं तु विद्वति ” ॥ बृहस्पतिः—

“ संध्याऽग्निकार्यस्वाध्यायं भैक्षाधःशयनं द्यामाआ मृत्योनैषिकः कुर्वन्ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ” ॥ इति ।

घसिष्ठः (७७-१७) — “ संयतवाक् । चतुर्थषष्ठाष्टकाले भैक्ष्यभोजी । गुर्वर्धीनः । जटिलः । शिखा-

जटो वा ॥ ॥ गुरुं गच्छत्तमनुगच्छेदासीनं च तिष्ठेच्छयानं चासीन उपासीत । आहूतस्वाध्यायी ।

सर्वे लब्धं निवेद्य तदनुजया भुंजीत । स्वद्वाशयनदंतप्रक्षालनांजनाभ्यं जनच्छत्रवर्जी । स्थानासन-
शीलस्त्रिरन्होऽभ्युपेयादप इति ॥ । त्रिरन्ह इति त्रिष्वणस्नायी स्यादित्यर्थः । यमः—
“आ निपाताच्छरीरस्य ये चरंत्युर्ध्वरेतसः । ते यान्ति ब्रह्मणः स्थानं जायंते न पुनर्भुवि” ॥
हारीतः—

“मृत्योः परस्तादमृतो भवंति ये ब्रह्मणा ब्रह्मचर्यं चरंति” इति । एतद्वानिष्ठविषयम् । ५
“सर्वे एते पुण्यश्लोका भवंति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति” इति श्रुतेः । सर्वे एते चत्वारे ह्याश्र-
मिणः पुण्यश्लोका भवंति पुण्यलोकभाजो भवन्ति । यः पुनरेषां मध्ये ब्रह्मसंस्थो ब्रह्मनिष्ठः सोऽ-
मृतत्वमपुनरावृत्तिलक्षणं फलमेतीत्यर्थः । एतच्च नैषिकत्वं कुब्जादीनां नित्यमित्याह विष्णुः—

“कुब्जजामनजात्यन्धक्षीवपंगवार्तरोगिणाम् । ब्रतचर्या भवेतेषां यावज्जीवं न संशयः” ॥ १०

चंद्रिकायाम्—

“पंगवादीनामनंगत्वादसामर्थ्याच्च शास्त्रतः । नियतं नैषिकत्वं स्थात्कर्मस्त्रनविकारतः” ॥ इति ।
नन्वेवं कुब्जादीनामेवं नैषिकत्वमस्तु नेतरेषाम् । मैवम् ।

“गार्हस्थमिच्छन्वतिकः कुर्याद्विरपरिग्रहम् । ब्रह्मचर्येण वा कालं न येत्संकल्पपूर्वकम् ॥

“वैखानसो वाऽपि भवेत्परिवाडथवेच्छया” इति पाक्षिकत्वप्रतिपादकव्यासादिवचनविरोधात् ।

न हि कुब्जादीनां नैषिकत्वं पाक्षिकमस्ति । न च यदितरेषां नैषिकत्वं तर्हि ‘यावज्जीवमग्नि-

होत्रं जुहोतीति’ गृहस्थधर्मविधायकश्रुतिर्बाध्येतेति वाच्यम् । नैषिकत्वस्य पाक्षिकत्वेन

विषयांतरसंभवात् । ये हि भार्यादिरागवशाद्वार्हस्थं कामयंते तदिष्या यावज्जीवश्रुतिरित्य-

विरोधः । तथा च जाबालिः—“यदि गृहमेव कामयेत तदा यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्” इति ।

ननु स्मार्त्तैषिकत्वस्य श्रौताग्निहोत्रादीनां वाध एवास्तु । मैवम् । तस्यापि “ब्रह्मचार्याचार्य-

कुलवासी द्वितीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेव सादयेत्” इति श्रुतिसूलत्वाविशेषात् । न च ब्रह्म-

चारिद्वैविध्ये ‘चत्वार आश्रमा’ इत्यापस्तंवादिवचनं ब्राध्येतेति शङ्कनीयम् । संकल्पभेदमाचेण

नित्यकाम्याग्निहोत्रवदनयोर्भेदोपपत्तेः । अत एव तु तद्वर्मातिदेशमाह आपस्तंवः (२१२१६)—

“यथा विद्यार्थस्य नियम एतेनैवांतमनूपसीदत आचार्यकुले शरीरन्यासो ब्रह्मचारिणः” । यथा

विद्यार्थस्यौपकुर्वाणस्याग्निधनादिनियम उक्तः । अनेन नियमेन शरीरन्यासः परित्यागः । ब्रह्म-

चारिणो नैषिकस्येत्यर्थः । गौतमः (३४-८)—“तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्व-

मान्तम् । गुरोः कर्मशेषेण जपेत् । गुर्वभावे तत्पत्न्यै वृत्तिः । तदभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे

वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा । एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेन्द्रियः” इति । तत्रोपकुर्वाणप्रकरणे

यदुक्तमग्निधनभैक्षाचरणादि तत्रैषिकस्यापि भवतीत्यर्थः । कर्मशेषेण गुरुशुश्रूषातिरिक्ते काले

वेदं जपेत् । एवं वृत्तं यस्य सः एवंवृत्तो । ब्रह्मलोकमवाप्नोति स चेज्जितेन्द्रियः । स च

मनुना दर्शितः (२१९८)—

“हुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च श्रुत्वा ग्रात्वा च यो नरः न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः” ॥ इति ।

स एव (२१८१)—

“स्वमे सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रैमकामतः । स्नात्वाऽकर्मचर्यित्वा त्रिःपुनर्मार्मित्यृचं जपेत् ॥

“एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कंदयेत्कचित् । कामाद्विस्कंदयैन्नरेतो हिनस्ति व्रतमेव तत् ॥ (१००)

“एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मर्नीषिणः । तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ (८९) ३५

“श्रोत्रं त्वकु चक्षुषी जिद्धा नासिका चैव पंचमी । पायूपस्थौ हस्तपादौ वाक्चैव दशमी स्मृता॥(९०)

“बुद्धोद्रियाणि पंचेषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्ववृः । कर्मोद्रियाणि पंचैव पायवादीनि प्रचक्षते ॥ (९१)

“एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणे नोभयात्प्रक्षम् । यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पंचकौ गणौ॥(९२)

“इंद्रियाणां हि चरतां विषयेष्वप्तारिषु । संयमे यत्नमातिष्ठेद्वान्यंतेव वाजिनाम् ॥ (८८)

५ “इंद्रियाणां प्रसंगेन दोषमुच्छत्यसंज्ञदम् । संनियन्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति”॥(९३)इति।
संवत्त्वः—

“ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्रमात्मनः । अवकीर्णिवतं कुर्यात्सनात्वा शुद्धेदकामतः ” ॥

कामतः बुद्धिपूर्वकमित्यर्थः । दोधायनः (२२।२९-३२)—“यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात्सोऽवकीर्णी । स गर्दभं पशुमालभेत । नैक्षतः पशुः पुरोडाशश्च रक्षोदेवतो यमदेवतो वा । शिश्रा-

१० त्प्राश्चित्रमस्त्वदानैश्चरतीति विज्ञायते” इति । नैक्षत इति पशुः पुरोडाशश्च निर्क्षितिदेवतः रक्षो-

देवतः । यमदेवतो वा । यद्वैत्यः पशुस्तदैवत्यः पुरोडाश इति परिभाषासिद्धस्यानुवादः । प्राश्चित्रं

शिश्रावयवाहात्यं हृदयाद्यवद्यवद्यमस्तु प्रचरितव्यं अन्यछाँकिकेऽग्नौ कर्तव्यमित्यर्थः । वसिष्ठस्तु—

(२३।१-२) “ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवत्यं गर्दभ-

मालभेत् । तेन नैक्षतं वा चरुं निर्वपेत् ” इति । आपस्तंबः (१।२६।८-९)—“गर्दभेनावकीर्णी

१५ निर्क्षितं दाक्यज्ञेन यजेत । तस्य शूद्रः प्राश्रीयात्” इति । पाक्यज्ञेन स्थालीपाकविधानेन । तस्य

गर्दभस्य । सैर्विं पंहविश्चित्तं शूद्रः प्राश्रीयात्तेन सर्पिष्मता ब्राह्मणं भोजयेदित्यस्यापवादः ।

अत्र मनुः (२।१।१८)—

“अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । पाक्यज्ञविधानेन यजेत निर्क्षितिं निशि” ॥ इति ।

हारीतः—अवकीर्णी निर्क्षित्यै चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभेत पाक्यज्ञेन धर्मेण भूमौ पशु-

२० पुरोडाशश्रपणमवदानैः प्रचर्याज्यस्य जुहोति कामावकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति” ।

गौतमस्तु (२३।१७-१९)—“गर्दभेनावकीर्णी निर्क्षितिं चतुष्पथे यजेत । तस्याजिनमूर्धव्यवालं

परिधाय लोहितपात्रः सत् गृहान्मैश्च चरेत्कर्माऽचक्षाणः । संवत्सरेण शुद्धयेत्” इति । तस्यैव

गर्दभस्याजिनमूर्धवालमुपरिलोम उसित्वा पांकेन लोहितं मृन्मयं पात्रं हस्ते गृहीत्वा

अवकीर्णिने मद्यं भिक्षां देहीति स्वकर्माऽचक्षाणः सप्तसु गृहेषु भैश्च चरेत्संवत्सरमेतद्वतं

२५ चरन्त्वुद्धो भवतीत्यर्थः । तथा च मनुः (१।१२३)—

“तेभ्यो लघ्वेन भैक्षेण वर्त्यन्नेकङ्गलिकम् । उपस्थृशं स्त्रिष्वणमवैनैकेन शुद्धयति” ॥

संवत्त्वोऽपि—

“ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमेकमब्दं समाहितः ॥

“निर्वपेच पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि । मंत्रैः शाकलहोमीर्येरग्रावाज्यं च होमयेत्” ॥ इति ।

३० शांडिल्यः—

“अवकीर्णी द्विजो नाजावैश्यद्वापि खरेण तु । इष्टा भैक्षासतो नित्यं शुद्धयत्यब्दात्समाहितः” ॥ इति ।

इदं च वार्षिकं वेश्यागमनविषयम् । यदाहतुः शांखलिखितौ—“गुपायां वेश्यायामवकीर्णः

संवत्सरं त्रिष्वणमनुतिष्ठेत्क्षत्रियायां द्वे वर्षे ब्रह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि” इति । शिष्टं ब्रह्मचारि-

नियमातिक्रमग्रायश्चित्तं तत्पक्षरणे वक्ष्यते । इति नैषिकधर्माद्विनिरूपणम् ॥

३५ अथ स्नातकधर्माः । तत्र मनुः (४।३३-३६)—

१ विचरतामिति मुद्रितपाठः । २ क्ष-देवतं । ३ खग-सर्व मिथितं । ४ क्ष-सिक्ता ।

५ ख-पावके । ६ ख-वै ।

“राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन् स्नातकः क्षुधा । याज्यांतेवासिनोर्वाऽपि न त्वन्यत इति स्थितिः॥

“ न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन । न जीर्णमलवद्वासा भद्रेच्च विभवे सति ॥

“ कृत्तकेशनस्मश्रुर्धौतशुक्लांवरः शुचिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥

“ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमंडलुम् । यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुंडले ”॥ इति ।

वेदो दर्भपुंजः । व्यासः—

५

“ वैणवीं धारयेद्यष्टिमंतर्वासस्तथोत्तरम् । यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमंडलुम् ॥

“ छत्रं चेष्टीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुंडले वेदं कृत्तकेशनस्वः शुचिः ॥

“ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्वहिर्माल्यं च धारयेत । शुक्लांवरधरो नित्यं सुगंधः प्रियदर्शनः”॥

स्मृतिरत्ने—

“ धौतवस्त्रैर्गीधपुष्पैः क्षालनैर्देतधावनैः । श्रीकामी भूषणादैश्च स्वशक्तक्या भूषयेत्तनुम्”॥ १०

बोधायनः (१३२-६)—“ अंतर्वास्युत्तरीयं वैणवं दंडं धारयेत्सोदकं च कमंडलुं द्वियज्ञो-

पवीत्युष्णीषमजिनं कृतोपानहौ छत्रं च ” इति । गौतमः (९२-३)—“ स्नातकः । नित्यं

शुचिः सुगंधिः स्नानशीलः ” इति । सुगंधत्वविधानादेव निर्गंधमाल्यनिषेधः । तथा च

गोभिलः—“ नागंधां स्नजं धारयेदन्यत्र हिरण्यस्त्रजः ” इति । वृद्धवसिष्ठः—

“ चौलवत्सकलं ग्राहं स्नातकर्मणि भूपते । शुभे षष्ठे वासरं च चरेत्तु स्नातकव्रतम् ॥ १५

“ समिद्धिर्यजवृक्षोत्थैर्यद्वा व्रीहियत्रादिभिः । अग्निं यजेद्वाहतिभिर्यद्वा नंत्रैस्तु शाकलैः ॥

“ तीर्थसेवी मिताहारी त्यजेदष्टांगमैथुनम् । स्मरणं कीर्तनं केलिप्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥

“ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ” इति ।

काठकगृह्ये—

“ विवाहदिवत्सापूर्वं तद्विने स्नानमाचरेत् । विवाहदिवसाधस्ताद्वेत्तु स्नातकव्रतम् ॥ २०

“ विवाहदिवसे कुर्वन्नं कुर्यात्तीर्थसेवनम् । न च शाकलहोमोऽस्ति तदा नक्षत्रार्द्धनात् ॥

“ रात्रावेवोद्दहेत्कन्यां न स्नानं दिवसे दिवा ” इति । संग्रहे—

“स्नातस्तूपयमादर्वाङ्गुष्ठो याति न सद्गतिम् । तस्मादासन्नवैवाद्यः स्नातकर्म समाचरेत् ”॥

दक्षः—“ अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकं खण्डित्वा द्विजः । आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ”॥

इति । स्नातकधर्माः ॥

२५

अथ विवाहः । अत्र विष्णुः—

“ वेदानधीत्य यत्नेन पाठतो ज्ञानतस्तथा । समावर्तनपूर्वं तु लक्षण्यां स्त्रियमुद्धेत् ”॥

मनुः (३४)—

“गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्धेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम्”॥

अथ कन्यालक्षणम् ।

३०

“नोद्धहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीमानालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिंगलाम्”(८) कपिलां केशाक्षिभ्यां पिंगलां त्वचा ।

“ नक्षत्रवृक्षनदीनाम्नां नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नां न विभीषणनामिकाम् ॥ (९)

“अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नां हंसवारणगामिनीम् । तनुरोमकेशदशनां मृदंगीमुद्धेत्स्त्रियम् (१०)”॥

यमः—

३५

“हस्वा दीर्घा कुशा स्थूला पिंगाक्षी गौरपांडरा । न पूज्या न च सेव्या सा पतिमृत्युकरी यतः”॥

तारदः—

“ दीर्घकुत्सितरोगार्त्ता व्यंगा संस्पृष्टमैथुना । धृष्टाऽन्यगतभावा च कन्यादोषाः प्रकीर्तिताः” ॥

व्यासः—

५ “न श्रमश्रुव्यं जनवर्ती न चैव पुरुषाकृतिम् । न धर्घरस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च ॥

“ नानिबद्धेक्षणां तद्वृत्ताक्षीं नोद्वहेद्वृधः ॥

“ यस्याश्च रोमशे जंघे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नता । गंडयोः कूर्पकौ यस्या हसंत्यास्तां च नोद्वहेत् ॥

“ नातिरुक्षैच्छविं पांडुकरजामरुणेक्षणाम् । आ पीनहस्तपादां च न कन्यामुद्वहेद्वृधः ॥

“ न वामनां नातिदीर्घा नोद्वहेत्संहतभ्रुवम् । न चातिच्छिद्रददशनां न करालमुखीं नरः ॥

१० “ पार्षिणस्थूलां रोमशीलां यमलां इयावदंतिनीम् । सञ्चत्प्रूलतां चैव पिंगलाक्षीं च नोद्वहेत् ॥

“ वंधुहीना च या कन्या या कन्या चैव जन्मतः । रोगिणी वंशहीना च तां कन्यां परिवर्जयेत् ॥

“ नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां च पिंगलाम् । निसर्गतोऽधिकांगां वा न्यूनांगां वाऽपि नोद्वहेत् ॥

“ नाविशुद्धां सरोमां वा कुब्जां वाऽपि न रोगिणीमान दुष्टां दुष्टवावयां वा विहीनां पितृमातृतः”॥इति

शातातपः—

१५ “ हंसस्वरां मेघवर्णा मधुपिंगललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः स्वयमेष्ठे” ॥

सवर्णोद्वाहे नियममाह मनुः (३५)—

“ असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा द्विजानां प्रशस्ता स्त्री दारकर्मण्यमैथुनी” ॥

अमैथुनी अक्षतयोनिः । असपिण्डा समान एकः पिण्डो द्वेहो यस्याः सा सपिण्डा । न

सपिण्डा असपिण्डा । सपिण्डता च एकशरीरावयवान्वयेन भवति । तथाहि । पुत्रस्य पितृशरीरा-

२० वयवान्वयेन पित्रा सह सपिण्डता । एवं पितामहादिभिरपि पित्रादिद्वारेण एकशरीरावयवा-

न्वयात् । एवं मातृशरीरावयवान्वयेन मात्रा । एवं मातामहादिभिरपि मात्रादिद्वारेण । तथा मातृ-

ष्वसृमातुलादिभिः पितृव्यपितृष्वस्त्रादिभिरपि एकशरीरावयवान्वयात् । तथा पत्युः सह पत्न्या

एकशरीरारम्भकतया । एवं आत्रुभार्याणामपि परस्परभेकशरीरारम्भैः सहैकशरीरारम्भकत्वेन । एवं

यत्र यत्र सपिण्डशब्दस्तत्रत्र साक्षात्परं परया वा एकशरीरान्वयो वेदितव्यः । एकशरीरान्वयश्च

२५ श्रुतितोऽवगम्यते “ आत्मा हि जन्म आत्मन् ” इति “ प्रजामनुप्रजायसे ” इति च । तथा

गर्भोपनिषदि-“एतत्वाद्यक्तौश्चिकं शरीरं । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतः । अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः ।

एवं त्वद्वांसरुधिगणि मातृतः” इति । “ अङ्गादङ्गात्संभवसि प्रजायस्व प्रजया । तत्रायं जायते

स्वयम्” इति च । आपस्तम्बः (२२४१२)-“स एवायं विरुद्धः पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते” इति ।

निर्वाण्य पिण्डान्वयेन तु सापिण्डये मातृसंताने प्रातृपितृवशादिषु च सपिण्डयं

३० न स्यात् । समुदायशक्त्याङ्गकारेण रूढिपरिग्रहे अवयवशक्तिस्तत्र तत्रावगम्यमाना परित्यक्ता

स्यात् ” इति । विज्ञानेश्वरीये (पृ. १२ पं २१-३०; पृ १३; पं १-५) । स्मृतिचंद्रिकायां तु

(पृ. ६७ प. ११)“एकस्यां पिण्डदानक्रियायां दातृत्वेन पिण्डभाक्त्वेन लेपभाक्त्वेन वाऽनुप्रविष्टानां

भवति सापिण्डयम्

“लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्डयं सप्तपूरुषम्” ॥ इति

स्मृतेः । न च निर्वाप्य पिण्डापेश्या सापिण्ड्यवर्णने भ्रातृपितृव्यादिषु सापिण्ड्यं न स्यादिति शङ्कनीयम् । एकोदेश्यावच्छेदेनैकक्रियान्वित्वसंभवात्” इत्यमिहितम् । अत्र सार्वभौमः—

“एकोदेश्यावच्छेदेन एकक्रियान्वयिनः सपिण्डा इत्यमिधानेन भ्रातृपितृव्यादिसपिण्ड्यसिद्धावपि स्वसृष्टुहितृमातृष्वसृमातुलतद्विहितृणामेकक्रियान्वयित्वाभावेन सापिण्ड्यं न स्यात् । ततश्च पञ्चमात्सप्तमादित्यादिवचननिचयस्य वैयर्थ्यं स्यात् । अतो लेपभाजश्वतुर्थाद्या ५ इत्युक्तं सापिण्ड्यम् ।

“अनन्तरः सपिण्डो यस्तस्य तस्य धनं भवेत्” “पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युः” । इति मनुंगौतमाद्युक्तदायभावतोर्ध्वदेहिकर्तृत्वविषयमिति एकशरीरावयवान्वयद्वारेण साक्षात्पारं पर्येण वा सापिण्ड्यवर्णने सर्वत्र सर्वस्य यथाक्षरं चिदनादौ संसारे तत्संभवादिति योऽतिप्रसंगः संभवति स दोषो मन्वादिवचनैः परिहर्तव्यः । तथा च मनुः (५६०)— १

“सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते” । गौतमः (४११३)—“गृहस्थः सदृशी भार्या विंदेतानन्यपूर्वा यवीयसीम् । असपानप्रवरैर्विवाहः । ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृवंधुभ्यो वीजिनश्च मातृ-बन्धुभ्यः पञ्चमात्” इति ।

शङ्कन्वश्च—“दारानाहरेत्सद्विवाहसमानार्थेयानसंबंधान्सप्तमात्पितृमातृबन्धुभ्यः” इति ॥

वसिष्ठश्च (८१-२)—“असमानार्थेयामस्पृष्टमैथुनामवरवयसीं भार्या विंदेत । पञ्चमीं १ मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृवंधुभ्यः” इति । अतीत्येति शेषः ।

यदाह पैठीनासिः—“असमानार्थ्यां कन्यां पंच मातृतः परिहरेत्सप्त पितृतः” इति । विष्णुरपि (२४९-१०)“असगोत्रामसमानप्रवरां भार्या विन्देत । मातृतः पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः सप्तमात्” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ५२-५३)—

“अविप्लुनवक्ष्यचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डो यवीयसीम् ॥ २९

“अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्थगोत्रजाम् । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा” इति ।

अनन्यपूर्विकां पुरुषान्तरापरिगृहीताम् । कान्तां कमनीयाम् । वाढुः मनोनयनेष्टकारिणीम् । “यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः” इति आपस्तंवस्मरणात् (गृ. सू. १३।२०) । यवीयवसीं वयसा प्रमाणतश्च न्यूनाम् । इति कन्यालक्षणम् ।

अथ वधूवरयोर्वयः प्रमाणम् । अत्र बृहस्पतिः—

“त्रिंशद्वर्षो दशाब्दां तु भार्या विंदेत मानवः । एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात्” ॥

अङ्गिराः—

“वयोधिकां नोपयच्छेदीर्घां कन्यां स्वदेहतः । स्ववर्षाद्वित्रिपचादिन्यूनां कन्यां समुद्वहेत्” ॥

विष्णुः—

“वर्षेरेकगुणां भार्यामुद्वहेत् त्रिगुणो वरः । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा वयोमात्रावरा च या” ॥ ३० वयोमात्रावरा च येत्युक्तेद्वित्र्यादिकतिपयमासैरुना नोद्वाह्या । नारदः—

“हीनाङ्गामधिकाङ्गां च वराहीर्घां वयोधिकाम् । नोपेयाद्वोगिणीं नारीं दीर्घमायुर्जिजीविषः” इति ।

अरोगिणीं “वातगुल्माश्मरीकुष्महौदरभगंदगः । अर्शासि ग्रहिणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः”

इत्युक्तमहारोगरहिताम् । भ्रातृमतीं पुत्रिकाकरणभयात् । यदाह मनुः (३।११)—

१ अ. ९ श्लो. १८७ । २ अ. १५ सू. ११ । ३ क-व्यासः । ४ क्ष-गर्भिणी ।

“यस्यास्तु न भवेद्ध्राता न विजायेत वा पिता । नोपयच्छेत तां कन्यां पुत्रिकाधर्मशंकया” ॥
अनेन न पितुः संकल्पमात्रादपि पुत्रिका भवतीति गम्यते । अत एव गौतमः (२८।१७)—
“अभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकेत्येके” इति । सा च कथं पुत्रिका भवतीत्यपेक्षिते मनुराह (१।२७)—
“अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् । यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्” ॥इति ।
५ वसिष्ठोपि (१।१७)—

“अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति” ॥
इयमेव मे पुत्र इति वा । एतच्चाग्रे वक्ष्यते । असमानार्षगोत्रजाम् । आर्षः प्रवरः गोत्रं
प्रसिद्धम् । समानता नामतो वेदितव्या । गोत्रप्रवरौ पृथक्पृथक्पर्युदासे निमित्तम् । समानार्ष-
जामसमानगोत्रजामिति । “परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथेति” च भेदेन स्मरणात् ।

१० वोधायनः—

“एक एव कष्टिर्यावित्प्रदरेष्वनुवर्त्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्राद्गिरसो भृगोः” ॥
समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वम् । भृगवंगिरोगणेषु विशेषमाह स एव—

“आर्षेयसंनिपाते अविवाहस्त्र्यार्षेयाणां त्र्यार्षेयसंनिपाते पञ्चार्षेयाणाम्” इति ।

“अत्र चासपिण्डामित्यनेन पितृष्वसृष्टमातृष्वसृष्टमातुलादिदुहितृनिषेधः । असगोत्रामित्यने-
१५ नासपिंडाया अपि भिन्नसन्तानजायाः समानगोत्राया निषेधः । असमानप्रवरामित्यनेन अस-
पिंडजाया असगोत्राया अपि समानप्रवराया निषेधः । यथा यास्कवाधूलमौनमोकानां
गोत्रभेदेऽपि तेषां भार्गववीतहव्यसावेदसेति समानप्रवरत्वम् ।

“पंचमात्सतमादूर्ध्वमिति मातृतः मातृसंताने पंचमादूर्ध्वं पितृतः पितृसंताने सप्तमादूर्ध्वं
सापिण्ड्यं निवर्त्तते” इति शेषः । अतश्चायं सपिण्डशब्दोऽवयवशक्तया वर्त्तमानः पङ्कजादि-
२० शब्दवक्षियतविषय एव । तथा च पित्रादयः षट् सपिण्डाः । पुत्रादयश्च षट् आत्मा च सप्तमः ।
संतानभेदेऽपि यतः संतानभेदस्तमादाय गणयेत् । यावत्सप्तम इति सर्वत्र योजनीयम् ।
सपिण्डसमानगोत्रसमानप्रवरासु सुभार्यात्वमेव नोत्पयते । रोगिण्यादिषु तु उत्पन्नेऽपि भार्यात्वे
दृष्टविरोध एवेति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् (पृ. १३ पं. २५—२६) । “अप्रत्तानां तु स्त्रीणां
सापिण्ड्यं त्रिपुरुषं विज्ञायत” इति (४।१८) वसिष्ठवचनमाशौचे विषयमिति विज्ञाने-
२५ श्वरादिभिर्निर्णीतम् (प्रा. पृ. १८।१) मातुगोत्रजामपि अपरिणेयां केचिदिच्छान्ति

“मातुरस्य सुतामूढवा मातुगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्” ॥इति
शातातपस्मरणात् । “सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि” इति व्यासस्मरणाच्चेति ।
मातुगोत्रामिति गोत्रग्रहणं सपिण्डपरमित्यन्ये । अखण्डादर्शे—“कूटस्थमंतराले स्थाप्य
तमादायान्योन्यगणने सति पितृपक्षे सप्तपुरुषानतीत्य या कन्या विवाहेच्छोः पुरुषस्याष्टमी भवति
३० सा विवाह्या । तथा मातृपक्षे कूटस्थमारभ्यान्योन्यगणने सति पञ्चपुरुषानतीत्य विवाहेच्छोः
पुरुषस्य षष्ठी भवति सैव विवाह्याऽस्य” इति । एवं च बहुस्मृतिसंमतत्वात्परं अत्यन्तमात्सप्तमादूर्ध्वमेव
विवाहः न ततोऽवाग्मिति स्थितम् । तथा च नारदः (१।२।७)—

“पञ्चमात्सतमादर्वाक् बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा” ॥विष्णुः—

“पञ्चमात्सतमाद्वीनां यः कन्यामुद्वहेऽद्विजः । गुरुतल्पी स विशेयः सगोत्रां चैव मुद्वहन्” ॥इति ।

३५ यत्तु—“पञ्चमीं मातृपक्षात्तु पितृपक्षात्तु सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याययेन विधिनोत्तमाम्” ॥

इति द्यासवचनं तत् पञ्चमीं सप्तमीमतीत्योपरितनामुद्देहेद्वित्येवं परम् । अत एव मरीचिः— “पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः”॥इति। मनुः (१११७१-१७२)—

“ पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मातुश्च आतुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

“एतास्तिस्तस्तु भार्यार्थं नोपयच्छेत् बुद्धिमान् । ज्ञातित्वेनानुपेयास्ता पातितो ह्युपयज्ञारः ”॥ ५
द्यासः ()—

“ जन्मनाम्नोरविज्ञान उद्देहेदविशंकितः । मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ॥

“वृतीयां मातृतः कन्यां वृतीयां पितृतस्तथा । शुल्केन चोद्दहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः”॥इति ।

मातृतः मातृपक्षे वृतीयां मातुलसुतां पितृतः पितृपक्षे वृतीयां पैतृष्वसेयीमित्यर्थः । शातातपः—

“ समानप्रवरां कन्यामेकगोत्रामथापि वा । विवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ १०

“उत्सृज्य तां ततो भार्या मातृवत्परिपालयेत् । कृत्वा तस्याः समुत्सर्गमातिकृच्छ्रुं विशोधनम्”॥इति।

“गायत्रीं यस्य यो द्याद्यो वा द्यादिमां द्विजः । तद्वोत्रे तत्कुले वाऽपि विवाहं नैव कारयेत्”॥

आपस्तंबः—

“ समानप्रवरां कन्यां सगोत्रामुपगम्य च । तस्यामुत्पाद्य चण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते”॥ इति ।

कल्पसारे—

“अमत्योदा सगोत्रा चेन्मातृवद्विभूयात् ताम् । चान्द्रायणं चरित्वाऽन्यामुपयच्छेत् कन्यकाम् ॥

“ कृच्छ्राब्दपादं कुर्वीत प्रजाता यदि सा भवेत् । मिन्दाहुती द्वे जुहुयात्तस्यान्ते चरितव्रतः ॥

“ तस्यां प्रसूते निर्दोषः काश्यपो गोत्रतः स्मृतः । ऊदा चेत् बुद्धिपूर्वं स्याद्गुरुतल्पसमं चरेत् ॥

“ तस्यां प्रसूतश्वण्डालः सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥ ” इति । स्मृत्यर्थसारे—

“ यदि कश्चित् ज्ञानतस्तां कन्यामूद्दोपगच्छति । गुरुतल्पवताच्छुद्दो गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां वज्रेत् ॥ २०

“ भोगतस्तां परित्यज्य पालयेऽजननीमिव । अज्ञानाच्चेदैन्दवेन शुद्धयेद्गर्भस्तु काश्यपः”॥इति ।

आपस्तंबः (२१११५-१६)—“सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेन्मातुश्च योनिसंबन्धेभ्यः”॥ इति ।

कात्यायनः “ प्रवरैषामविवाहः ” इति । माधवीये पराशरोऽपि—

“ पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः । पितुर्मातुलपुत्राश्च विजेयाः पितृवान्धवाः ॥

“ मातुः पितृष्वसुः पुत्राः मातुर्मातृष्वसुः सुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्च विजेया मातृवान्धवाः ॥ २५

“ विवाहो नैष्यते तत्र पितुर्मातुश्च बन्धुषु ”॥

सुमन्तुः—“ पितृष्वसूसुतां मातृष्वसूसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रामुद्दाद्य चान्द्रायणं चरेत् । परिष्वज्यैनां बिभूयात् ” इति ।

पैठीनसिः—“पितृमातृष्वसूदुहितरो मातुलसुता धर्मतो भगिन्यस्तां वर्जयेत् ” । स एव—

“उद्देहेत सगोत्रां तु तनयां मातुलस्य च । क्रिभिर्मिश्वैव तुल्योऽपि स तु चान्द्रायणं चरेत्”॥ इति । ३०

गौतमः (२११-२)—“ब्रह्महा सुरापी गुरुतल्पगो मातृपितृयोनिसंबन्धागस्तेननास्तिक-
निंदितकर्मभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः । पातकीसंयोजकाश्च ” इति ।

चान्द्रिकायाम् (आ. ६७२ पं. १८)—

“स्त्रीसंततिस्तथा पुंसां न विवाह्ये उभे मते । स्त्रीपुंसोस्तु विवाहा स्यात्पञ्चमात्सप्तमात्परम् ”॥ इति ।

‘चतुर्थीमुद्दहेत्’ इत्यादीनि अर्वाग्विवाहपराणि वचनानि विजातीयविषयाणि । यथाह शङ्खः—

“यदेकजाता ब्रह्मः पृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः । एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिषु॥” इति । एकस्माद्भास्त्राणादेर्जाताः पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयासु स्त्रीषु जाता ते पृथक्जनाः । समान-५ जातीयासु भिन्नासु स्त्रीषु जातास्ते एकपिण्डाः सर्पिण्डाः । किंतु पृथक् शौचाः शौचप्रकरणे वक्ष्यते । पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिष्विति त्रिपूरुषमेव सापिण्डचमित्यर्थः । तथैव चतुर्थीविवाहः क्षत्रियविषय इति व्यक्तमुक्तवान् । अखण्डादर्शकारः—

“त्रीनंतीत्य मातृतः पंचातीत्य पितृतः” इति पैठनस्त्रिवचनं क्षत्रियाविषयमिति व्याख्येयम् इति ।

१० “तृतीयात्क्षत्रियो मातुः पञ्चमात्पितृतः पराम् । समुद्दहेत्सवर्णं तु पञ्चमात्सप्तमात्पराम्”॥ इति कण्ववचनबलात् ‘त्रीनंतीत्य मातृतः’ इति पैठीनस्त्रिवचनं क्षत्रियादिविषयमिति वरदराजीये निर्णात्मम् । विज्ञानेश्वरीयोऽपि (पृ. १४ पं. ७५) यदपि वसिष्ठेनोक्तम्—

“पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथेति” यदपि “त्रीनंतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य पितृतः” इति पैठीनस्त्रिनाऽपि अर्वाद्विषेधार्थं न पुनस्तत्प्रात्त्यर्थमिति सर्वस्मृतीनामविरोधः । एतच्च १५ पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथेति वचनं समानजातीये द्रष्टव्यम् । विजातीये तु “यदेकजाता ब्रह्म” इति शङ्खवचनात् त्रिपूरुषमेव सापिण्डचमिति सार्वभौमीये । चतुर्थीदिविवाहे प्रवर्त-मानस्य लोकस्य भ्रान्तिरेव मूलम् । विजातीयविषयस्य चतुर्थीमुद्दहेदित्यादेः सजातीयविषय-त्वावगमात् । अन्धपरंपरा वा नान्यतिंचित्मूलम् । यदि कथंचित्किञ्चिद्वचनं कृच्छ्रलब्धं तथा पि “मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । एकतः सर्वमुनयो याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ॥

२० “यदुक्तवान्धर्मशास्त्रं तत्प्रमाणं प्रमीयताम्” इति मनुयाज्ञवल्क्यादिप्रबलस्मृतिविरोधेन तदेव त्याज्यम् । एवं शास्त्रविरोधे लोकाचारश्च त्याज्यः । तथा कात्यायनः—

“स्मृतेवंदविगोदे तु परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौकिकाचारं स्मृतिवाधात्परित्यंजेत् ॥” वसिष्ठोऽपि (१४-५)—“श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्” इति । शास्त्रविरोधे शिष्टाचारो न प्रमाणमित्यर्थः । तथा गौतमः (११२०)—

२५ “देशजातिकुलधर्मा आम्नायैविरुद्धाः प्रमाणम्” इति । तदेवमुसवर्णासु नारीषु विवाहश्च द्विजातिभिरिति कलावसवर्णाविवाहनिषेधान्मनुयाज्ञवल्क्यादिभिः पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव विवाहविधानात्तदर्वाक्षणातित्यादिप्रत्यवायस्मरणाच्च पञ्चमात्सप्तमादर्वाग्विवाहो निन्दितः । सप्तनी-मातुः मातृत्वानिरूपणम् । एवमाऽपञ्चमात्सप्तनीमातृबन्धुवर्गोऽपि परिहार्यः । तत्रैकशरीरावयवान्वयलक्षणसापिण्डचाभावेऽपि अतिदेशो न सापिण्डचसिद्धेः । तथा सुमन्तुः—“पितृपत्न्यः

३० सर्वा मातरस्तद्धातरो मातुलास्तत्सुता मातुलसुतास्तत्स्वसारश्च मातृष्वसारस्तत्सुता मातृस्वसृसुतास्तद्धुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि तस्मात्ता नोपयन्तव्याः । अन्यथा संकरकारिकाः स्युः” इति । स्मर्यते चापि सापिण्डचम् । “एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके” इति ।

“भर्तुः पत्न्या सहैकशरीरोत्पादकलक्षणसापिण्डचसद्भावाच्च पुत्रादीनां पितृ-शरीरावयवान्वयद्वारेण सप्तनीमातृत्सपिण्डैः सह भवति सापिण्डचम् । अत्र एव हि ‘मातृतः

पितृतस्तथा मातृतन्धुभ्यः पञ्चमीं मातृपक्षाच्चै इत्यादिषु सामान्येन मातृशब्दाः प्रयुक्तास्तस्मा-
उजननीवन्धुवर्गवत्सपत्नीमातृयोनिसंबन्धो वन्धुवर्गश्च परिहार्य एव । स्मृत्यन्तरे—

“ अतुस्तु पत्नीभगिनीं तत्सुतां चैव वर्जयेत् । पितृस्तु पत्नी भगिनीं तत्सुतां चैव वर्जयेत् ” ॥ इति ।
एवं सामान्येन पितृशब्दप्रयोगाजजनकव्यतिरिक्तपितृकुलमपि सप्तमावधि परिहार्यम् ।

तथा गौतमः (४२-३)—“ असमानप्रवर्तिविवाह उद्धर्वं सप्तमात्पितृवन्धुभ्यो वीजिनश्च ” ॥ इति । ५
परक्षेत्रे नियोगादुत्पन्नः पुत्र उभयोरपि भवति ।

“ अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसां रिकथा पिण्डदाता च संमतः ” ॥ इति
याहवल्क्य (व्य. ११७) स्मरणात् । “ वीजिनः क्षेत्रिगश्चैव आमुष्यायणको हि सः ” इति
स्मृत्यन्तराच्च । तथा दक्षादीनां आमुष्यायणत्वेन गोवद्वयं परिहार्यम् ।

“ गोत्ररिकथे जनयितुर्व भजेद्विमः सुतः । जनकस्य तु गोत्रेण द्युपनीतो द्विगोत्रकः ॥ १०

“ उपनेतुर्भजेद्वोत्रमसंप्रज्ञातगोत्रवान् । प्रज्ञातगोत्रस्तु भवेदुभयं दक्षपुत्रवत् ” ॥ इति
स्मरणात् स एव उपनयनानन्तरमिति पूर्णसंघ्रहे । एतच्चोपनयनानन्तरं दक्षपुत्र-
विषयम् । तथा पैठीनस्मिः “ अथ दक्षक्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्राः परिग्रहेणार्थेण जातास्ते
संहता गोत्राद्वामुष्यायणा भवन्ति ” इति । अत उभयत्र पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव विवाह
इति विज्ञानेश्वरीय—(पृ. १४१) अखण्डादर्शवरदराजीयादिषु निर्णीतम् । अपरे १५
तु चन्द्रिकाकारादय आहुरेकोद्देशावच्छेदेनैकक्रियान्वयित एव सपिण्डता । तथा च
मार्कण्डेयः—

“ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसंबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥

“ लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभूत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानस्तु सप्तमः ॥

“ इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः सप्तपूर्वः ” इति । एवं च सति मातुलसुतादीनामेकपिण्ड- २०
क्रियानुप्रवेशाभावेनासपिंडत्वात्तद्विवाहोऽभिमतः । एव ‘ पंचमात्मातृनः ’ ‘ सगोत्रान्मातुरप्येके
नेच्छंति ’ इत्यादिवचनजातं पुत्रिङ्गाकरणविषयम् । आसुरादिविवाहोद्वासंतातिविषयं च । अन्यथा
मातुः पतिगोत्रत्वेन गोत्रांतराभावान्न च भूतपूर्वगत्या मातृसगोत्रत्वं वर्तमाने संभवति भूतपूर्वगते-
रन्यायत्वात् । पतिगोत्रत्वं च

“ स्वगोत्राद्वश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे । एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रेऽथ सूतके ” ॥ २५
इत्यादिस्मृतिभ्योऽवगम्यते । पुत्रिकापुत्रस्य मातृगोत्रत्वमाह लौगाक्षिः—

“ मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिंडोद्दकक्रिया । कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिः ” ॥ इति ।
आसुरादिविवाहविषये मार्कण्डेयः—

“ ब्राह्मादिषु विवाहेषु याऽनूढा कन्यका भवेत् । भर्तुगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोद्दकक्रियाः ॥

“ आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ” ॥ मातृपितृगोत्रेणत्यर्थः । एवं च पुत्रिकाकरणे आसुरादि- ३०
विवाहेषु “ होमपूर्वं तु यो दक्षः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्स्य पुत्रादौ न निषेधकृत् ॥

“ दातृगोत्रसुद्धातां गृहीतकुलगोत्रजः । उद्वहेदशमादवयं नोद्वहेदेति गौतमः ॥

“ गायत्रीं यस्य यो दद्याद्यो वा दद्यादिमां द्विजः ” । तद्वोत्रे तत्कुले वाऽपि च उद्क-
पूर्वदानाभावेन स्वपितृसापिंडयस्य सगोत्रत्वस्य च निवृत्तमर्तुः स्वपित्रादिसापिंडयसद्वा-
वात् । “ असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ” इत्यादीनि वचनानि तद्विषयाणि वेदित- ३५

व्यानि । न तु पुत्रस्य मातृसपिंडत्वाद्या मातुः सपिंडा सा पुत्रस्यापीति । किमर्थं मातृग्रहणम् । उच्यते । यदा तु पुत्रिकासुतस्यैव मातामहाभ्यां परित्यागस्तदा तत्सापिंडचनिवृत्त्या तत्सपिंडाद्या विवाहप्राप्तो तन्मा भूदिति मातृग्रहणम् । एवं दत्तपुत्रादेस्त्यागेनैव पितृगोत्रनिवृत्त्या तत्सगोत्राद्या विवाहप्राप्तो तन्मा प्रसांक्षीदिति पितृग्रहणमिति ब्राह्मादिभिर्विवाहो निवृत्तपितृ-५ सपिंडाद्याः पुत्रस्य मातुलसुतादीनां पञ्चमात्सपत्नार्द्वाचीनानामपि परिणयन अभिमतमेव । मातुलसुतादिविवाहनिवेधवचनानि सर्वाणि आसुरादिविवाहोदापुत्रविषयाणि पुत्रिकापुत्रविषयाणि च । मातुलसुताविवाहानुग्रहकराणि तु ब्राह्मादिविवाहोदाविषयाणीति व्यवस्था । मातुलसुतोद्वाहविषयः । तत्र नारदः—

- “तृतीयां मातृपक्षाच्च पञ्चमीं पितृतस्तथा । विवाहं तु कचिद्देशे संकोच्याऽपि सपिंडताम् ॥
१० “चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमीमपि । षष्ठीं तु नोद्वहेत्कन्यां पञ्चमो न तु पञ्चमीम् ॥
“तृतीयो वरयेत्कन्यां चतुर्थीं पञ्चमीं तथा” ॥

षट्क्रिंशन्मते—

- “तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशयौऽगिरा यमः” ॥
चतुर्विंशतिमते—

- १५ “तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशयौऽगिरा यमः” ॥

स्मृतिसारे—

- “मातुलस्य सुतां केचित्यैत्रष्वसृसुतादिकम् । विरहंति कचिद्देशे संकोच्याऽपि सपिंडता ॥
“चतुर्थः पञ्चमीं कन्यां पञ्चमीं षष्ठ उद्वहेत । चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां पञ्चमो न तु पञ्चमीम् ॥
“पञ्चमः पञ्चमीं कन्यां नोद्वहेदिति यत्स्पृतम् । पितृपक्षे निषेधोऽयं मातृपक्षे न तद्वेत्” ॥

२० स्मृतिरत्ने—

- “अब्रह्मचारिदारादैः सार्धभोजनकर्म च । मातुलादिसुतायां च विवाहः शिष्टसंमतः ॥
“इत्येते दाक्षिणात्यानामपि गीता उदाहृताः ।
“समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शस्त्रजीविका ।
“शीधुपानमुदीच्यानामविगीतानि धर्मतः” ॥

२५ वृहस्पतिः—

- “उद्वद्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥
“मत्स्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः । उत्तरे मद्यपा नार्यः स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ॥
“अप्रजातां प्रगृह्णन्ति भ्रातृभार्यामिभर्तृकाम् ॥
“देशजातिकुलाचारधर्माः सत्त्वप्रवर्तिताः । तथैव ते पालनीयाः प्रजाः प्रक्षम्यते ऽन्यथा ॥
३० “विरुद्धाः प्रतिवृद्धयंते दाक्षिणात्येषु संप्रति । स्वमातुलसुतोद्वाहो मातृबंधुत्वदूषिताः ॥
“अभर्तृकभ्रातृभार्याग्रहणं चातिदूषिते । कुले कन्याप्रदानं च देशेष्वन्येषु दृश्यते ॥
“इत्थं विरुद्धानाचारान्प्रभूतान्व निवर्त्येत् । तथा भ्रात्रीविवाहोऽपि पारसीकेषु दृश्यते ॥
“तथैकादशरात्रादौ श्राद्धे भुक्तं तयोर्द्विजैः । तेभ्यः श्राद्धे पुनर्दनिं केचिच्चेच्छंति देहिनः ॥
“दत्वा धान्यं वसंतेऽन्यैः शरदि द्विगुणं पुनः । भुज्यते बंधकक्षेत्रं प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥
३५ “भज्यते ऽन्यैरप्रविष्टमूल्यं तच्च विरुद्धयते ॥

“ देशाज्ञात्यादिधर्मस्य प्रामाण्यादविरोधिनः । शास्त्रेणातो वृपः सर्वं शास्त्रं दृष्टा प्रवर्त्तयेत् ” ॥ इति । अतो ब्राह्मादिविवाहेषु निवृत्तसपिंडभावाया मातुरसपिंडत्वान्भातुलसुता परिणेया । एवं पैतृष्व-सीय्यपि च । न च तथाविधा मातृष्वसा तद्दुहिता च किमिति न परिणेयेति वाच्यम् । शास्त्रा विरोधेऽपि लोकविरुद्धत्वात् धर्म्यमपि लोकविद्विष्टं तन्नानुष्ठेयम् । तदुक्तं मनुना—

“ अस्वर्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ” इति । वराहमिहिरोऽपि— ५

“ देशाचारस्तावदादौ विचिंत्यो देशे देशे या स्थितिः सर्वं कार्या ।

“ लोकविद्विष्टं पंडिता वर्जयन्ति दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात् ” ॥ इति । दाक्षिणात्यानां मध्ये आंग्रेषु त्रैविद्यवृद्धा वेदार्थानुष्ठातारः शिष्टा अपि मातुलादिदुहितृपरिणयनमाचरन्ति । द्रविडेषु तथाविधाः शिष्टाः चतुर्थ्यादिविवाहमाचरन्ति । मातृष्वसृदुहित्रादिविवाहं सर्वत्र वर्जयन्ति । उक्तं च तथाचारस्य प्रामाण्यं मनुना “ शिष्टाचारस्मृतिवेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम् ” इति ॥ १०

“ सद्ग्रीवाचरितं यस्माद्वामिकैस्तु द्विजातिभिः । तदेशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ” ॥ इति । आपस्तंबः—

“ येषां परंपराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्ठिताः । त एव तैर्न दुष्येयुराचारा नेतरे पुनः ” ॥

देवलः—

“ यस्मिन्देशे य आचारो न्यायदृष्टस्तु कल्पितः । स तस्मिन्नेव कर्तव्यो देशाचारः स्मृतो भूगोः ” ॥ १५

“ येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः । येषु देशेषु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ॥

“ येषु देशेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः । तत्र तान्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥

“ यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तद्वर्त्म न विचालयेत् ” ॥ बोधायनः (१११७-२२)— पंचधा विप्रतिपत्तिरक्षिणतस्तथोत्तरतः । यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः । यथैतदनुपेतेन सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुल-२० पितृष्वसृदुहितृगमनामिति । अथोत्तरत ऊर्णविक्रियः शीघ्रुपानस्मृभयतोदद्विवृद्धवहार आयुधीयकं । समुद्रसंयानमिति । इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति इतरदितरस्मिन्स्तत्र तत्र देशे प्रामाण्य-मेव स्यात् ” इति । अयमर्थः । दक्षिणतः । दक्षिणेन नर्मदामुक्तरेण कन्यातीर्थम् । अथोत्तरतः । दक्षिणेन हिमवंतमुक्तरेण विध्यम् । एतदेशे प्रसूतानां शिष्टानां परस्परं पंचधा विप्रतिपत्तिः विसंवादः । मातुलपितृष्वसृदुहितृगमनं परिणयनं उर्णायास्तद्विकारस्य च कंबलादेविक्रियः । २५ उभयतोदतः अश्वादयः । व्यवहारो विक्रियादि । आयुधीयकं शास्त्रधारणम् । समुद्रसंयानं नावा द्वीपांतरगमनम् । इतरदनुपेतसहभोजनादि इतरस्मिन्नुत्तरापथे कुर्वन् दुष्यति । एवमूर्णाविक्रियादीनि इतरत्र दक्षिणापथे कुर्वन् दुष्यति । तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यादिति । एवं व्यवस्थितविषयैव मूलश्रुतिः कल्पते । तस्माद्वावस्थितमेवानुष्ठानं तद्वर्जनं चेति । यत्तु अनन्तरमेव बोधायनोक्तं (११२३-२४)— “ मिथ्यैतदिति गौतमः । उभयं चैतन्नाद्रियेत । दृष्टस्मृतिविरोधदर्शनाद्वौतमस्य मातृसपिंडापरिणयनमभिप्रेतमिति दर्शयितुमिति चांद्रिकायां व्याख्यातम् । यद्याप्यापस्तंबवचनम् (११२१०-१२) “ यत्र तु प्रीत्युपलब्धितः प्रवृत्तिर्न तत्र शास्त्रमस्ति । तदनुवर्तमानो नरकाय राध्यति ” इति । तदपि मातृसपिंडामातुलसुतापरिणयनादिविषयं वेदितव्यम् । यदिदमपि वसिष्ठस्मरणम् (११७) “ देशकुलधर्मा आप्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम् ” इति । ३५

तदप्यत्राम्नायविरोधाभावादनुकूलमेवानुकूल एव चाम्नाये श्रूयते “आयाहीन्द्र पथिभिरीलितेभिर्ज्ञमिमं नो भागवेयं जुषस्व । वृत्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपाम्” इति । एहींद्र पथिभिर्माँगीरीलितेभिः प्रशस्तैर्नः अस्माकं इमं यज्ञमायाहि आगच्छ । आगत्य च इदमस्मामिः दीयमानं भागवेयं जुषस्व सेवस्व । अतः एते यजमानाः वृत्तामाज्यादिना ५ संस्कृतां पकां वपां त्वामुद्दिश्य जुहुः त्यक्तवंतः । अत्र दृष्टांतद्वयम् । यथा मातुलस्य योषा दुहिता दौहित्रस्य भागः भजनीया परिणेतुं योग्या यथा च पैतृष्वसेयी पौत्रस्य तथाऽयं तव भागो वपाख्य इति मंत्रार्थः । तेन श्रुतितः स्मृतितः आचारादपि सिद्धं मातुलसुतादिपरिणयनमिति स्मृतिचंद्रिकाकारेण देवणभद्रोपाध्यायैरन्यैरपि स्वदेशाचारानुसारिभिर्बुद्धिमद्धिः समर्थितं मातुलसुतादिपरिणयनम्” । इति । इति मातुलसुताविवाहविषयकनिरूपणम् ।

१० अथ विवाहे वर्जनीयानि कुलान्याह मनुः (शा८-७)—

“महांत्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसंबंधे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

“हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छंडोरोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ” ॥
हीनक्रियं श्रौतस्मार्त्ताचारहीनम् । निष्पुरुषं स्त्रीशेषं । तद्र्जयेत् । कुतः संतत्यभावानुसारिभयात् ।
निश्छंडो निरधयनम् । रोमशं रोमवहुलं निर्क्षितिरूपत्वात् । तथा हि श्रुतिः—

१५ “निर्क्षित्यै विकृतरूपं देहं रोमशमालभेत । सा ह्यस्या स्वः तनुः” इति । अइर्योऽस्यास्तीत्यर्शीसः
क्षयी । क्षयरोग उक्तं आमयो महोदरादि । तद्वृक्तप्रामयाविव्याधिसंक्रातिभयादेतानि वर्जयेत् ।
याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ५७)—

“दशपूरुषविस्याता श्रोत्रियाणां महाकुलात् । स्फीतादपि न संचारीरोगद्वैषसमन्वितात्” ॥

पुरुष एव पूरुषः । दशभिः पुरुषैः मातृतः पितृतश्च पंचभिर्विस्यातं यत्कुलं महत्कुलं पुत्रपौत्रपञ्च-
२० दासीग्रामादिसमृद्धं तस्मात्कन्या आहर्तव्या । तत्रापवादः । स्फीतादपीति संचारीरोगः
कुष्ठापस्माराद्यः । एतैः समन्वितात्पूर्वोक्तान्महाकुलादपि नाहर्तव्येत्यर्थः । यमः—

“कुलानीमान्यपि सदा आविवाह्यानि निर्दिशेत् । अनार्षेयं ब्राह्मणानामृतिविजां चैव वर्जयेत् ॥

“हीनांगमतिरिक्तांगमामयाविकुलानि च । तथाश्वित्रिकुलादीनां कुर्याद्विपरिवर्जनम् ॥

“सदा कामीकुलं वर्जं रोमशानां च यत्कुलम् । अपस्मारिकुलं यच्च यच्च पांडुकुलं भवेत् ॥

२५ “अत्युच्चमतिनीचं च अतिवर्णं च वर्जयेत्” । अनार्षेयमविजातप्रदरम् । मनुः (४१२४७)—

“उत्तर्मैहत्तर्मैनित्यं संबंधानाचरेत्सह । निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥

“विशुद्धाः कर्मभिश्चैव श्रुतिस्मृतिनिर्दिशिताः । अविष्टुतब्रह्मचर्या महाकुलसमन्विताः ॥

“महाकुले च संबंधो महत्वे च व्यवस्थिताः । संतुष्टाः सज्जनहिताः साधवः समदर्शिनः ॥

“अक्रोधनाः सुप्रसादाः कार्याः संबंधिनः सदा । ये स्तेनाः विशुनाः क्लीवा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥

३० “विकर्मणा च जीवितो विकृताकृतयस्तथा । प्रबद्धवैराः शूरैर्ये राजकिलिविषिणस्तथा ॥

“ब्रह्मस्वादाननित्याश्च कद्यर्थश्च विगर्हिताः । अप्रचायेषु वंशेषु स्त्रीप्रजाप्रसवांस्तथा ॥

“पतिर्यत्र स चाऽन्यत्र ताश्च यत्नेन वर्जयेत् ॥

“पितृवा भजते रूपं मातुवर्भयमेव वा । न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां विमुंचति ” ॥

हारीतः—

३५ “मातुलान्भजते पुत्रः कन्यका भजते पितृन् । यथाशीला भवेन्माता तथाशीलो भवेन्नरः” ॥

विष्णुः—

“अश्वं पित्रा परीक्षेत मात्रा कन्यां परीक्षयेत् । तुणाद्भूमिं परीक्षेत आचारेण कुलं तथा”॥इति ।
विवाहे वर्ज्यकुलनिरूपणम् । अथासवर्जोद्वाहः । सवर्जोद्वाहनियमेन प्रातिषिद्धमसवर्जो-
द्वाहम विकारिविशेषोऽनुजानाति मनुः (३।२-३)—

“ सवर्जग्रेद्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तनामिमाः स्युः कमशोऽवराः॥ ५

“शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृतः । ते च स्वा चैव राज्ञः स्युस्ताद्वस्वा चाग्रजन्मतः”॥
प्रथमतः सवर्जेव वोढव्या । तदनुभेगेच्छायां असवर्णा अयि कमेण वोढव्याः । ब्राह्मणस्य
चतस्रः क्षत्रियस्य तिस्रः वैश्यस्य द्वे शूद्रस्य सवर्जेकेवत्यर्थः । अथ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां
सवर्णायां प्रथममुद्भोदुमशक्तायामसवर्णाऽपि वोढव्या । न कदाचिदपि प्रथमं शूद्रेत्याह
स एव (३।४)— १०

“ न ब्राह्मणक्षत्रिययोराप्यपि हि तिष्ठतोः । न कस्मिंश्चिन्तु वृत्तात्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते”॥
वृत्तं धर्मः । अंतो निर्णयः । धर्मशास्त्रमित्यर्थः । भार्या नोपदिश्यते भार्यात्वेन नोपदिश्यते ।
किं तु काम्यत्वेनेत्यर्थः । शूद्रां प्रथमं भार्यात्वेन उद्वहतः प्रत्यवायमाह स एव (३।५)—

“ हीनजातिं द्वियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः । कुलान्येव नयंत्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ”॥
केवलशूद्रभार्यात्वं तदपत्यत्वं च ब्राह्मणस्य दोषावहामित्याह स एव (३।६-८)— १५

“ शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥

“ दैवपित्रातिथेयानि तत्प्रथानानि तस्य तु । निन्दन्ति पितृदेवास्तं न च स्वर्गं स गच्छति ”॥
मतांतराण्युपन्यस्य स्वमतं सिद्धांतयति (३।६)—

“ शूद्रावेदी पतत्यत्रेसुचथयतनयस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भूगोः”॥
शूद्रावेदी शूद्रां भार्यात्वेन विद्वतीति शूद्रावेदी । अत्रेः उच्चयतनयस्य गौतमस्य शूद्रायां २०
सुतोत्पादनेन न पुनस्तस्यागमनेनेति शौनकस्य मतम् । शूद्रामूहवानपि तस्यां सुतोत्पत्तिभया-
द्वृतौ तां नोपेयादित्यर्थः । तदपत्यतया तस्यां शूद्रायामेवापत्यं यस्य तदपत्यतया पततीति
भूगोर्मतम् । भूगुमुखेन मन्वादिशास्त्रस्य प्रोच्यमानत्वादिति मानवानीमानि वचनानि टीका-
कृतैवं व्याख्यातानि । याज्ञवलक्यः (आ. ५७)—

“ तिस्रो वर्णनिपूर्व्येण द्वे तथैका यथा क्रमम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥ २५

“यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्वारोपसंग्रहः । न तन्मम मतं यस्मात्त्राऽयं जायते स्वयम्”॥इति(५६)
मानवेन समानार्थमिति चंद्रिकायाम् । पैठीनसिः—

“अलाभे विप्रकन्यायाःस्त्रियोऽन्यास्तिस्त्र एव तु । शूद्रायाः प्रतिलोम्येन तथान्ये पतयस्त्रयः”॥इति।
जातूकर्णिः—

“ अलाभे कन्यायाः स्नातकवतं चरेदपि वा क्षत्रियायां पुत्रानुत्पादयीत वैश्यायां वा”॥इति । ३०

नारदः (१।२।५-६)—

“ ब्राह्मणस्यानुलोम्येन द्वियोऽन्यास्तिस्त्र एव तु । शूद्रायाः प्रतिलोम्येन तथाऽन्यपतयस्त्रयः ॥

“द्वे भार्ये क्षत्रियस्थान्ये वैश्यस्यैका प्रकीर्तिता । वैश्याया द्वौ पती ज्ञेयावेकोऽन्यः क्षत्रियापतिः”॥

विष्णुः (२।६।५)—

“द्विजस्य भार्या शूद्रा तु धर्मर्थं न भवेत्कचित् । रत्यर्थमेव सा तस्य रागांधस्य प्रकीर्तिता”॥ ३५

व्यासः—

“ शूद्रायोनौ पतद्वीजं हा हा शब्दं द्विजन्मनः । कृत्वा पुरीषगर्त्तेषु पतितोऽस्मीति दुःखितः ॥

“ मामधः पातयेदेष पापात्मा काममोहितः । अधोगतिं व्रजेत्क्षप्रमिति शप्त्वा पतेत्तु तत् ” ॥

वसिष्ठोपि (१२५-२७)— “ शूद्रामप्येके मंत्रवर्ज्जं तद्वत् । तया न कुर्यात् । अतो हि ध्रुवः ५ कुलापकर्षः प्रेत्य चास्वर्गः ” इति । मनुः (३।१९)—

“ वृष्णीकेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥

“ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः । गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्णा राजोपसेवया ॥ (६४)

“ अयाऽययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणा । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः ” ॥(६६)

इति । गोभिरश्वैर्विक्रीयमाणैरित्यर्थः । अयं चासवर्णाविवाहः युगांतरविषयः । “ असवर्णसु १० कन्यासु विवाहश्च द्विजातिभिः ” इति कलौ निषेधत्वात् ।

इत्यसवर्णाविवाहनिरूपणम् । अथ वरलक्षणम् । मनुः (९।८८)—

“ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सहशाय च । अप्राप्तसमयां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ” ॥
यमोऽपि—

“ कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च ॥

१५ “ एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिंतनीयम् ” ॥ यत्तु विष्णुनोक्तम्—

“ ब्राह्मणस्य कुलं ग्राह्यं न वेदाः संपदः क्रमात् । कन्यादाने तथा आद्वे न विद्यात्तत्र कारणम् ” ॥

इति तत्कुलस्य प्राधान्यप्रतिपादनपरम् । न पुनर्विद्यानिराकरणार्थम् । अत एवाश्वलायनः—

“ कुलमग्ने परीक्षेत ” इति । आपस्तंवः (२।११।१७) “ वपुशीललक्षणसंपन्नश्रुतवानरोग इति वरसंपत् ” इति । गौतमः (४।४)—“ विद्याचारित्रवंधुशीलसंपन्नाय दद्यात् ” इति । शातातपः—

२० “ वरो वरायितव्योऽर्थी कुलशीलसमन्वितः । रूपवान्पंडितः प्राज्ञो युवा शीलसमन्वितः ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ५५)—

“ एतरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः । यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ” ॥ इति ।
कात्यायनोऽपि—

“ अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टा च्छ्री क्षेत्रं बीजिनो नराः । क्षेत्रं बीजवते देयमतो बीजं परीक्षयेत् ” ॥ इति ।

२५ बीजं वीर्यमित्यर्थः । तत्परीक्षोपायमाह नारदः (१३।१०-१३)—

“ यस्यासु पूष्टते बीजं न्हादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान् स्यालक्षणैरतैर्विपरीतस्तुषं ढकः ” ॥
हादि शब्दवत् ।

“ चतुर्दशविधः शास्त्रे षट्ठो दृष्टो मनीषिभिः । चिकित्स्यश्चाचिकित्स्यश्च तेषामुक्तो विधिः क्रमात् ॥

“ निसर्गषट्ठोऽमुष्टकश्च पक्षपंदृस्तथैव च । अभिशापाद्गुरो रोगादेवकोधात्तथैव च ॥

३० “ ईर्ष्याधिंष्टश्च सेव्यश्च वातरेता मुखेभगः । आक्षिसो मोघबीजश्च शालीनोऽन्यापतिस्तथा ” ॥

एतेषां लक्षणानि । निसर्गषट्ठः स्वभावतो लिंगवृषणहीनः । अमुष्टः भिन्नवृष्णः । पंचदश-
दिनानि स्त्रियमनासेव्य सङ्कल्पोगक्षमः पक्षषट्ठः । गुरुशापषट्ठादयस्त्रयः स्पष्टाः । ईर्ष्या पुंस्त्व-
मुत्पाद्यते यस्य स ईर्ष्याधिंष्टः । रुयुपचारविशेषणपुंस्त्वशक्तिर्यस्य स सेव्यषट्ठः । वातोपहतरेतस्को
वातरेताः । मुख एव पुंस्त्वशक्तिर्योनो यस्य स मुखेभगः । रेतोनिरोधात्तिष्ठीभूतः आक्षिषषट्ठः ।

३५ गर्भाधानासमर्थबीजः मोघबीजः । अप्रगल्भतया शोभाद्वा नष्टपुंस्त्वः शालीनः । यस्य भार्या-
व्यतिरेकेणान्यासु पुरुषभावः सोऽन्यापतिः ।

१ क्ष—धान्यैश्च । २ क्ष—बद्धश्च । ३ क्ष—बद्धः छिन्नमुष्टः ।

“तत्राद्यावप्रतिकारौ पक्षषंदं च वर्जयेत् । अनुक्रमानु यस्यास्य कालः संवत्सरः स्मृतः ॥ (१४)

“ईर्ष्यांष्टादयो येऽन्ये चत्वारः समुदाहताः । त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षतयोन्याऽपि च स्त्रियः ॥ (१५)

“आक्षितमोघबीजाभ्यां कृतेऽपि पतिकर्मणि । पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्थं प्रतीक्ष्य तु ॥ (१६)

“शालीनस्यापि दृष्ट्वीसंयोगादृश्यते ध्वजः । तं हीनवेषमंतः स्त्रीवाला रहसि बोधयेत् ॥ (१७)

“अन्यस्यां यो मनुष्यः स्यादमनुष्यः स्वयोधिति । उभते साऽन्यभर्त्तरमेतद्वाक्यं प्रजापतेः” इति १८ ५

भर्त्रतरपरिग्रहोऽयं युगांतरविषयः । “ऊद्धायाः पुनरुद्धाहः” इति कलौ निषेधस्मरणात् । परंतु कलावपि बालयावाक्यमिदं परं प्रयोक्तव्यमाक्षितवीर्यस्य तत्कालं धैर्याद्याद्वा रागविशेषाद्वा स्थादपि वीर्योत्पत्तिः । कात्यायनः—

“उन्मत्तः पतितः कुष्ठी तथा षट्टः स्वगोत्रजः । चक्षुओत्रविहीनश्च तथाऽप्स्मारदूषितः ॥

“वरदोषाः स्मृतास्त्वेते कन्यादोषाश्च कीर्तिताः । दूरस्थानामविद्यानां मोक्षमार्गानुसारिणाम् ॥ ६०

“शूराणां निर्हृतानां च न देया कन्यका बुधेः” ॥ इति । अपरार्के—

“अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयंतीह लोके कलुषयोनिजम्” ॥

इति वरलक्षणनिष्ठपणम् । अथ कन्यकादानकालः । तत्र बोधायनः (४।१।१२)—

“दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे । अपि वा गुणहीनाय नोपरुद्धाद्रजस्वलाम्” ॥

नग्निका अनागतार्त्तवा । वसिष्ठः (१७।७०)—

“प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता । क्रतुमत्यां हि तिष्ठत्या दोषः पितरमृछति” ॥

नग्निकालक्षणं स एवाह—

“यावन्न लज्जयांऽगानि कन्या पुरुषसंनिधौ । योन्यादीन्युपगूहेत तावद्वति नग्निका ॥

“यावच्चेलं न गृह्णाति यावत्कीडति पांसुभिः । यावद्वेषं न जानाति तावद्वति नग्निका” ॥

संवर्त्तः—

२०

“यावन्न लज्जते कन्या यावत्कीडति पांसुषु । यावत्तिष्ठति गोमार्गं तावःकन्यां विवाहयेत् ॥

“अष्टवर्षा भवेद्दौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला” ॥

अत ऊर्ध्वं रजस्वलेत्येतत्काच्चित्काभिप्रायं तदा रजसो नियमेनासंभवात् । यतः स एवाह—

“प्राप्ते तु द्वादशे वषयः कन्यां न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिवति शोणितम्” ॥

“माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २५

“गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुंठं याति रोहिणीम् । कन्यां ददद्वद्वलोकं रौरवं तु रजस्वलाम्” ॥

“तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नतुमती भवेत् । विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥

“रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्ते तु कन्यकाम् । रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः” ॥ इति यमः—

“अष्टमे तु भवेद्दौरी नवमे नग्निका भवेत् । दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली तथा” ॥ ३०
वृषली रजस्वला ।

“वंध्या तु वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला” ॥

इति देवलस्मरणात् । आपस्तंबः—

“अष्टवर्षा भवेद्दौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला” ॥

“संप्राप्ते द्वादशे वर्षे रजः स्त्रीणा प्रत्यर्वते” ॥ इति । एतच्च प्राचिकाभिप्रायं न पुनर्द्वादशे एव रजस्वला भवतीति कासांचिद्वर्गमयि रजोदर्शनसंभवात् । अत एव यमसंवर्त्तौ—

“दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला” इति । एवं च यादवृत् रजोऽर्शनं न भवति तावत्कन्यात्वमुक्तं भवति । अत एव यमः—“तस्माद्ब्रह्मयेत्कन्या यावन्नर्तमती भवेत्” ॥

५ मनुरपि (१९४४)—

“त्रिंशद्वर्षो वहेत् कल्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्” इति । एतद्रजोदर्शनाभावे वेदितव्यम् । अत एव बहुस्पृष्टिः—

“पितर्गेहे त या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । भ्रष्टहत्या पितस्तस्याः सा नारी बृषली समवा ॥

“यस्तां विवादेत्कन्यां ब्रह्मणे मद्भोहितः । असंभाष्यो द्वयपक्षेभ्यः स विप्रो वृषकीपतिः ॥

१. “वृषलीसंग्रहीता यो व्राज्यणे मुद्रमोहितः । सततं सततं तस्य ब्रूद्धहत्या दिने दिने ॥

“यः करोत्येकग्रावेण बृषलिसेवनं द्विजः । तद्वैश्वभुजपञ्चित्यं विभिर्वैद्यर्यो हति ॥

“ब्रष्टलीगमनं चैव मासमेकुं निरंतरम् । इह जन्मनि शुद्धत्वं सतः श्वा चैव जायते”॥ नारदः (६३३) ॥

“यावंतश्वर्त्तवस्तुस्यः समतीयः पृति विना। तावत्यो अणहृत्यास्यस्तुस्य यो न ददाति वास” ॥

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ५४)—“अप्रयच्छ्वन्मासोति खण्डित्यामरावते” ॥ इति ।

१५ व्याघ्रपादः—

“ उपायनोदितः कालः स्त्रीणामट्टाहकर्मणि । स्त्रीणामपनयस्थाने विवाहं सनत्रब्रवीत् ॥ ”

यस्तः—

“विवाहं चोपनयनं स्त्रीणामाह पितामहः । तस्माद्भर्तुष्टः श्रेष्ठो जन्मतो वा धृवद्माः ॥

“देश इलादिवैषम्यादधर्मोद्वाहसंशये । सद्वो संभवे कन्यां नगिकामपि दापमेव ॥

२० “वालिशा या भवेत्कन्या गणाङ्ग्यो यद्विलभ्यते । डंडाडप्राप्तकालेऽपि देशकालस्याब्धरः” ॥ इति ॥

बालिशाविवाहमंगीकृत्य संस्कारविशेषमाह ब्रजापतिः—

“**દિવ્યાંત્રા મિત્રાંહોઽકન્યકા સરપણું યદિ । ખરનું વૈવ કર્તૃબયં પંચમંત્રાંગાંતોર**” ॥ ૧૩ ॥

यन्त सन्दर्भोक्तुम् (१८९) —

“काममा मरणात्तिष्ठेदग्रहे कन्यर्तमत्यपि। न त्वैवैतां प्रयच्छेच मण्डीताय कर्दिति” ॥

२५ इति तद्विषयते संभवति गुणहीनाय न दद्यादित्येवं परं न पुनर्गुणहीननिषेधार्थम् । यदाह तु अस्मवोधायनौ (४१११२)—

“दद्याहुणवते कृत्यां न विक्रोहेत् इच्छितः। अपि वा मापादीनाय वोपर्मुखं वक्तव्यम्”॥३७॥

यदा प्रौढासपि विवादः तां न प्रवृच्छति तदा कल्पयैव महसुं भवां तामेकिंचन तदा-

“कन्या हाइडॉमे वर्षे या त्वद्गता गहे वसेत | भगवान्न्या पितृस्तु मया सा कन्या वै सेत्तरपापा” । उक्ति ।

एतच्च वरणं कृतप्रभतिवर्षत्रयाङ्कुर्ध्वे द्वितीयम् ब्रोधायतः (४११३-४६)

“त्रीणि वर्षाण्यतमर्तीयः कृत्यां न यच्छवति। स तदस्य भावं ग्राम्याणि तोषाद्यन्ताणि प्रभवः ॥

“ न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पथकपथक । प्रैकैकमिहवौ दोषं प्रददं प्राप्तं विन् ॥

“त्रीणि वर्षाण्यतमती कृक्षेत पितॄशास्वम् । वद्धशर्वर्थे वर्षे न विन्देत सर्वं ॥

“अदिद्यमाने सहस्रे गणहीनमपि क्षयेत्” ॥ हनि । प्राचीनि (११८-)

" १८ - वार्षिक कार्यक्रमी मर्ती । कर्त्त्व व काळादेवम् विनोद प्रसंगे ॥

“अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यादि स्वयम् : नैनः किंचिद्वाप्रेति न च यं साऽधिगच्छति ॥
 “अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयं वरा । मातृङ्गं ब्राह्मणं वा स्तेयं स्याद्यादि तं हरेत् ॥
 “पित्रे न दद्याच्छुलंकं तु कन्यामृतुमतींहरन् । स च स्वाम्यादतिक्रामेष्टतूनां प्रतिरोधकः”॥इति ।
 इति कन्यादानकालः । विवाहमध्ये रजोदर्शने । विवाहकाले रजोदर्शने कर्तव्यमाह अत्रिः—
 “विवाहे वितते यज्ञे हौमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्टा कथं कुर्वति याज्ञिकाः ॥ ५
 “स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा हुताशनम् । युंजानमाहुतिं हुत्वा ततः कर्म प्रयोजयेत् ॥
 “प्रधानहोमे निर्वृत्ते कुमारी यदि सार्तवा । त्रिरात्रेऽपगते पश्चाच्छेषं कार्यं समापयेत्” ॥

स्मृतिभास्करोऽपि—

“विवाहहोमे प्रक्रांते यदि कन्या रजस्वला । त्रिरात्रं दंपतीं स्यातां पृथक् शश्यासनाशनौ ॥
 “चतुर्थेऽहनि संस्नातौ तस्मिन्नग्नौ यथाविधि । विवाहहोमं कुर्यातामित्यादि स्मृतिसंग्रहे”॥ इति । १०
 यस्तु कन्यां प्रदाय पुनस्तामपहरति स राजा दंड्य इत्याह याज्ञवल्क्यः (आ. ६५)—
 “सकृतप्रदीयते कन्या हरंस्तां चोरदंडभाक् ” ॥ मनुरपि (१४७)—
 “सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥
 “न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्वा पुनः प्रयच्छेद्यः प्राप्नोति पुरुषान्वृतम्”॥७१इति
 “शतमश्वानृते हंति सहस्रं पुरुषानृतः” इत्युक्तदोषमाप्नोतीत्यर्थः । काश्यपः— १५
 “सप्त पौनर्भवाः कन्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुकमंगला ॥
 “उदकं स्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतिका । अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥
 “इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहंति कुलमग्निवत् ॥

“प्ररोहत्यग्निना दग्धः पादपः सुचिरादपि । न च पौनर्भवा दग्धं कुलं कापि प्ररोहति ”॥

मनुः (१९९)—

२०

“एतत्तु न परे चक्रनार्परे जातु साधवः । यदन्यस्मै प्रतिश्रुत्य यदन्यस्मै प्रदीयते ”॥
 बोधायनः—“वाग्दत्ता मनोदत्ताऽग्निं परिगता सप्तमपदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूता चेति
 सप्तविधा पुनर्भूः । तां गृहीत्वा न प्रजां न धर्मं विंदत्” इति । आपस्तंबः—(१३१२)-

“दत्तां गुप्तां योतामृषभां शरभां विनतां विकटां मुंडां मंडूषिकां सांकारिकां
 रातां पालीं मित्रां स्वनुजां वर्षकारीं च वर्जयेत्” ॥ इति । दत्ता अन्यस्मै वाचा प्रतिश्रुता २५
 उदकपूर्वं वा प्रतिपादिता । गुप्ता कंचुकाद्यावृता । योता ब्रह्मकेशी । क्षषभा वृवगतिः । शरभा शीर्ण-
 दीसिः । विनता कुब्जा । विकटा विकटजंघा । मुंडा अपगतकेशा । मंडूषिका अल्पकाया । सांका-
 रिका कुलांतरस्य दुहितृत्वं गता । राता कृतुस्नाता । पाली क्षेत्रादिपालिका । मित्रा सखी । शोभ-
 नोऽनुजायस्याः सा स्वनुजा । वरजन्मसंवत्सर एव पश्चाज्जाता वर्षकारी । अधिकवयस्केत्यर्थः ।
 सर्वाणीमानि दत्तादिविषयाणि वचनानि अदुष्टवर्गाभिप्रायाणि । यदाह नारदः (१३१३)— ३०
 “दत्वा न्यायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम् । अदुष्टश्वेद्वरो राजा स दंड्यस्तत्र चोरवत्”॥
 गौतमोऽपि (५२१)—“प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ६५)—

“दत्तामपि हरेत्कन्यां श्रेयांश्वेद्वर आवजेत्” ॥ इति । आवजेत् आगच्छेदित्यर्थः ।

काश्यपः—

३५

“ कुलशीलविहीनस्य षंडादेः पतितस्य च । अपस्मारिविकर्मस्थरोगिणां वेषधारिणाम् ॥

“ दक्षामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोदां तथैव च । मंत्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय तु ॥

“ अन्यथा तु हरन् इङ्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम् ” ॥ शातातपः—

“ वरश्वेत्कुलशीलाभ्यां न युज्येत कथंचन । पुनर्गुणवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

५ “ हीनस्य कुलशीलाभ्यां हरन्कन्यां न दोषभाक् ” ॥ कात्यायनः—

“ स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्रीब एव वा । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घमयोऽपि वा ॥

“ दक्षापि देया साऽन्यस्मै सप्रावरणभूषणाम् ।

“ विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । व्याधितां विप्रकृष्टां वा छञ्चना चोपपादिताम् ” ॥

नारदः (१३।३१)—

१० “ नादुष्टां दूषयेत्कन्यां नादुष्टं दूषयेद्वरम् । दोषे सति न दोषः स्यादन्योन्यं त्यज्यतो द्वयोः ” ॥ इति ।

एतानि सप्तमपदादर्वाग्वेदितव्यानि । अत्र चंद्रिकायां वागदानप्रभृति सप्तमपदादर्वाग्दोषदर्शने मरणादौ दा कन्यामन्यस्मै दद्यान्नोर्ध्वमिति । तथा च मनुः (१२।२८)—

“ पाणिग्रहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्दिः सप्तमे पदे ” ॥

निष्ठा परमावधिः । कन्यादरयोर्दीषदर्शने ऽपि सप्तमपदादृधर्वं न परित्याग इत्यर्थः ॥ अत्र यमः—

१५ “ नोऽकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे ” ॥

वसिष्ठः—

“ स्त्रीपुंसयोस्तु संबंधे वरणं प्राग्विधीयते । वरणाद्वहणं पाणेः संस्कारो हि विलक्षणः ॥

“ तयोरनियतं प्राहुर्वरणं दोषदर्शनात् ” इति । स्त्रीपुंससंबंधे विवाहे पूर्वं वरणम् ।

तदनु तद्विलक्षणः पाणिग्रहणात्यः संस्कारः । तयोर्मध्ये दोषदर्शने सति वरणमनियतम् ।

२० दानमात्रेण पतित्वानुत्पत्तेरित्यर्थः । तथा दद्यासः—

“ कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या वागदाने तु कृते वरे । मृतेऽन्यस्मै प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा ॥

“ दक्षामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोदां तथैव च । मंत्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय तु ” ॥

एवं च सप्तमपदादर्वाग्विपरिणेतुर्मरणेऽपि न विधवात्वमित्युक्तं भवति । तथा च वसिष्ठः (१७।७२)—

“ अद्विर्वचा च दक्षा या वियेतादौ वरो यदि । न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ” ॥

२५ सा पितुरेव न प्रतिग्रहीतुरित्यर्थः । कात्यायनोऽपि—

“ वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा । रक्तागमांस्त्रीनतीत्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ” ॥

रक्तागमो रजोदर्शनम् । नारदः (१३।२४)—

“ प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशांतरं वजेत् । त्रीवृत्तून्समतिकम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ” ॥

शुल्कदाने विशेषमाह मनुः (१९।७)—

३० “ कन्यायां इत्तशुल्कायां वियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥

“ प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयाऽन्यस्मै विधानतः ॥

“ यस्या वियेत कन्यायां वाचा सत्ये कृते पतिः तामनेन विधानेन निजो विंदेत देवरः ” ॥ (६९) इति ।

कात्यायनः—

“ पूर्वदक्षा तु या कन्या वृत्ताऽन्येन यदा भवेत् । असंस्कृता प्रदेया स्याद्यस्मै पूर्वं प्रतिश्रुता ” ॥

३५ चेद्गुणवत्तर इति शेषः ।

“अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । वरागमश्च सर्वेषां वहते चान्तिमस्तु ताम् ॥

“अथागच्छेयुरूढायां इत्तं पूर्वं धनं हरेत्” ॥ यत्तु पाणिग्रहणादुपर्यन्यस्मै दानमाह वस्तिष्ठः (१७।७४)—

“पाणिग्राहे कृते कन्या केवलं मंत्रसंस्कृता । सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति” ॥
यदपि स्मृत्यंतरम्—

“कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा । पुरा पुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ॥

“ऋतौ च दृष्टे कन्यैव मृतौ देयेति चापरे । आ गर्भधारणात्कन्या पुनर्देयेति केचन” ॥ इति ।
नारदः—

“उद्वाहिताऽपि या कन्यान चेत्संप्राप्तमैथुना । पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा” ॥ इति ।
यदपि बोधायनः (४।१।१८३)—

“निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्या भर्ता भ्रियेत सः । सा चेदक्षतयोनिः स्यादगतप्रत्यागता सति ॥

“पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति यदपि मनुराह (नारदः १२।९७)—

“नष्टे मृते प्रत्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते” ॥ इति ।
सप्तपदाद्वृद्धर्मपि पुनर्विवाहपराण्येतानि वचनानि युगांतरविषयाणि । यदाह व्यासः—

“ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पंच न कुर्वीत ब्रातृजायां कमंडलुम्” ॥ इति । १५
कतुः—

“देवरात्रं सुतोत्पत्तिः दत्ता कन्या न दीयते । न यज्ञे गोवधः कार्यः कलौ न च कमंडलः” ॥
बोधायनः—

“विधिर्योऽनुष्ठितः पूर्वं क्रियते नैव सांप्रतम् । पुराकल्पः स यद्वच्च विधवाया नियोजनम्” ॥ इति ।
चंद्रिकायामपि—

“देवरेण सुतोत्पत्तिं गोमेधं च कंमडलुम् । अक्षतां पौरुषं मेधं कलौ पंच विवर्जयेत्” ॥ इति ।

“अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया । सपिंडो वाऽसगोत्रो वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात् ॥

“आ गर्भसंभवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् । अनेन विधिना जातः क्षेत्रजः स भवेत्सुतः” ॥ इति ।
याज्ञवल्क्यादिभिरुक्ता देवरसुतोत्पत्तिः कलौ वर्जनीया । गोमेधो गवालंभनम् । कमंडलुं
मृन्मयकमंडलुधारणम् ॥

“कमंडलुद्विजातीनां शौचार्थं विहितः पुरा । ब्राह्मणैः मुनिमुख्यैश्च तस्मात्तं धारयेत्सदा” ॥ इति
बोधायनादिभिरुक्तम् । अक्षता अक्षतयोनिः । पुरुषमेधः कतुविशेषः । एतानि कलौ वर्जये-
दित्यर्थः । अक्षताया वर्जयत्वमाह नारदोऽपि (१२।४६)—

“कन्या चाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता । पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनःसंस्कारकर्मणि” ॥

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ६७)— “अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः” इति । यस्तु ३०
कन्या दोषमनभिधाय प्रयच्छति स राजा दंडन्य इत्याह नारदः (१२।३३)—

“यस्तु दोषवर्तीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्वृपो दंडं पूर्वसाहस्रोदितम्” ॥
पणशतद्वयं सप्तत्यधिकं पूर्वसाहस्रम् । यत्तु याज्ञवल्क्येनोक्तं (आ. ६६)—

“अनाख्याय दद्वोषं दंड्य उत्तमसाहस्रम् । अद्वृष्टां तु त्यजन दंडयो दूषयस्तु मृषा शतम्” ॥ इति ।
तदोषभूयस्त्वाभिप्रायमिति चंद्रिकायाम् ॥

“ साशीतिपणसाहस्रं भवेदुत्तमसाहस्रं ” नारदः (१२।३५)—

“ प्रतिग्रह्य तु यः कन्यामदुष्टामुत्सृजेन्नरः । विनेयः सोऽप्यकामोऽपि कन्यां तामेव चोद्दहेत् ” ॥
विनेयो इण्डय इत्यर्थः । इति विवाहकाले रजोदर्शनादिप्रायश्चित्तम् ॥

अथ कन्यादातृनिर्णयः । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ६३-६४)—

५ “ पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

“ अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृत्तौ । गम्यं त्वभावे दातणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ॥” इति ।
पित्रादीनां पूर्वपूर्वभावे परः परः कन्याप्रदः । पूर्वनाशे प्रकृतिस्थश्चेत्यद्युन्मादादिदोषवान्न
भवति यस्याधिकारः सोऽप्रयच्छन्नभ्रूणहत्यामृतावृत्तावाप्नोतीति यदा पुनर्दर्तृणामभावस्तदा
कन्यैव गम्यं गमनार्हमुक्तलक्षणं स्वयमेव वरयेदित्यर्थः । नारदः (१२।२०-२३)—

१० “ पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमतः पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बांधवस्तथा ॥

“ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥

“ यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमावजेत् । अनुज्ञया तस्य वरं प्रतीतं वरयेत्स्वयम् ॥

“ सर्वगमनुरूपं च कुरुत्यालवलश्रुतेः । सहवर्मं चरेत्तेन पुत्रांश्चोत्पादयेत्ततः ॥

“ स्वतंत्रोऽपि हि यत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्याद्द्वयंत्रवहेतुतः ॥” इति ।

१५ मनुः (५।१५०)—

“ यस्मै दद्यात्पिता कन्यां भ्राता वाऽनुमतौ पितुः । तं शुश्रूषेत जीवतं स्वर्यातं च न लंघयेत् ” ॥ इति ।

एतयोः प्राधान्यप्रतिपादनार्थं न पुनरन्यनिषेधाय । इति कन्यादातृनिर्णयः ॥

अथ विवाहभेदाः । तत्र मनुः (३।८०-८१)—

“ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्येह च हिताहितान् । अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निवौधत ॥

२० “ ब्राह्मो देवस्तथैवार्षिः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः । गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥” ॥

आर्षात्प्राजापत्यस्य अङ्गेऽपि वृन्भंगभयादत्र क्रमभंगः । ब्राह्मादीनां लक्षणमष्टभिः श्लोकैराह
स एव (३।२७)

“ आच्छाय चार्चयित्वा च श्रुतर्शीलवतं स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तिः ॥” ॥

धर्मसाधनत्वाद्विवाह एव धर्मशब्देन प्रतिपाद्यते । ब्रह्मशब्दे धर्मवचनः । धर्मातिशय-

२५ युक्तत्वाद्ब्राह्मत्वम् ।

“ यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ” ॥ (२८)
देवकार्याधिकृताय दानादैवत्वम् ।

“ एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ (२९)

धर्मत आदाय धर्मर्थसादाय न धनार्थं यत्कन्याप्रदानं स आर्षो धर्मः । विक्रयदोषभया-

३० दृष्टिभिरनुकृतेनैवेव विद्या दीयते । शुश्रूषादिकं शिष्यतः किंचिदादीयते च । आर्षेऽपि कन्या
दीयते वरात्किंचिदादीयते च । तेन दानादानसामान्येनार्षत्वम्—

“ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्यतु । कन्याप्रदानमध्यर्च्यं प्राजापत्यो विधिःस्मृतः ॥ (३०)

उभौ युवां सह धर्मचरतं न पृथगिति वाचाऽनुभाष्य अहं गृहाश्रमस्थ एव धर्मं चरिष्यामि

नान्याश्रमस्थ इति वरं प्रतिश्राव्येत्यर्थः । प्राजापत्यो विधीयत इति विधिः विवाहः ।

३५ गार्हस्थ्यप्राधान्यनिबंधनं प्राजापत्यत्वं गार्हस्थप्रधानो हि प्रजापतिः ।

“ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै वाऽपि शक्तिः कन्याप्रदानं स्वाच्छंद्यादासुरो धर्म उच्यते॥(३१)

कन्याया ज्ञातिभ्यः स्वशक्तिः वरस्य शक्तिर्थादिकं दत्त्वा दापयित्वा स्वाच्छंद्याद्वेकशास्त्रमर्यादातिलंघनेन यत्कन्यादानं स आसुरः। परस्वापहारस्वाच्छंद्यनिबंधनमासुरत्वम् । असुरा हि स्वाच्छंद्येन परवित्तमपहरते इति ।

“इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गांधर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः”॥(३२) ५

मैथुन्यः मैथुनपर्यंत अन्योन्यसंयोगः कामसंभवो गांधर्वः । गंधर्वत्वं कामपरत्वनिबंधनम् । गंधर्वा हि कामपराः । “स्त्रीकामा वै गंधर्वा” इति श्रुतेः । स्मरति च भगवान्वाल्मीकिः “तीक्ष्णकामास्तु गंधर्वस्तीक्ष्णकोपा भुजंगमाः” इति ।

“हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशंतीं रुदतीं गृहात् । प्रश्नह कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते”॥(३३)

विवाहविरोधकान्हत्वा छित्वा भित्वा च कन्यां परिभूय यद्वरणं स राक्षसः । हिंसाप्राधान्या- १०

द्राक्षसत्वम् । हिंसाप्रधाना हि राक्षसाः ।

“सुतां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः”॥(३४)

सुसमत्प्रमत्तकन्याभोगनिबंधनं पैशाचत्वम् । पैशाचा हि सुसमत्प्रमत्तानाविश्वंति ।

ब्राह्मादीनां फलमाह स एव (३।३७-३८)—

“दश पूर्वापरान्वश्यानात्मानं चैकविंशकम् । ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकून्मोचयेदेनसः पितृन् ॥ १५

“दैवोढायाः सुतश्चैव सप्तसप्तपरावरान् । आर्षोढायाः सुतस्त्रीस्त्रीनष्ट षट् कायोढजः सुतः”॥

प्राजापत्येनोढायाः सुतः विभक्तिव्यत्ययः । चतुर्षु विवाहेष्वामुष्मिकं फलं प्रत्येकमुक्त्वा ऐहिकं च समुदाये फलं श्लोकद्वयेनाह (३।३९-४२)—

“ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्षेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायंते शिष्टसंमताः ॥

“रूपसत्वगुणोपेता धनवंतो यशस्विनः । पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवंति च शतं समाः”॥ २०

आसुरादिषु चतुर्षु जातपुत्रगुणमाह—

“इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसान्वतवादिनः । जायंते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः”॥

“अनिंदितैः स्त्रीविवाहैरनिंद्या भवति प्रजा । निंदितैनिंदिता नृणां तस्मान्निंद्यानि वर्जयेत्”॥

अननुज्ञातविवाहविषयेयं निंदा इतरथा हि क्षत्रियादिषु गांधर्वराक्षसाद्युपदेशानर्थक्यप्रसंगात् ।

याह्नवल्क्योऽपि (आ. ५८-६१)— २५

“ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥

“यज्ञस्थ ऋत्विजे देव आदायार्षस्तु गोयुगम् । चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजस्तु षट् ॥

“इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने । स कायः पावयेत्तज्जः षट्षष्ठून्श्यान् सहात्मनाम् ॥

“आसुरो द्रविणादानात् गांधर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात्”॥

मनुः (३।२३-२४)— ३०

“षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विद्युद्रयोस्तु तानेव विद्याद्वर्म्यानराक्षसान्॥

“चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः”॥

मतांतरमाह स एव (३।२५)--

“पंचानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविष । पैशाचश्वासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कथंचन”॥

पाश्वात्यानां पंचानां प्राजापत्यादीनां मध्ये त्रयो धर्म्याः । पैशाचश्चासुरश्च द्वावधर्म्याँ
न कर्तव्यौ । कर्तृविशेषानिर्देशादस्य मतस्य सर्वसाधारणत्वं गम्यते । चांद्रिकायाम्—
“ चत्वारो ब्राह्मणस्याद्याः शस्ता गांधर्वराक्षसौ । राजस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः”॥
गर्हितः न कस्यापि प्रशस्त इत्यर्थः । विवाहांतरालाभे पैशाचमाह वत्सः—

५ “ सर्वोपायैरसाध्यः स्यात्सुकन्या पुरुषस्य वा । चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता”॥
आपस्तंबः (२।५।१२।३-४)—“ तेषां त्रय आद्याः प्रशस्ताः । पूर्वः पूर्वः श्रेयान् । यथा
युक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति ” इति । बोधायनोऽपि (१।१।१-१७)—“ अष्टौ
विवाहाः । श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने दीयते स ब्राह्मः । आच्छाद्यालंकृत्यैषा सह धर्म-
श्र्वयतामिति प्राजापत्यः । पूर्वा लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्स आर्षः । दक्षिणासु
१० नीयमानास्तंवेदि क्रत्विजे स देवः । सकामेन सकामायां मिथः संयोगः स गांधर्वो धनेनोप-
तोष्यासुरः । प्रसद्य हरणाद्राक्षसः । सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः । तेषां चत्वारः पूर्वे
ब्राह्मणस्य । तेष्वपि पूर्वः पूर्वः श्रेयान् । उत्तरेषामुक्तरोत्तरः पार्षीयान् । तत्रापि षष्ठसप्तमौ क्षत्रधर्मा-
नुगतौ तत्प्रत्ययत्वात्क्षत्रस्य पंचमाष्टमौ वैश्यशूद्राणाम् । अयन्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवति ।
कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात् गांधर्वमप्येके प्रशंसन्ति । सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात् यथा युक्तो विवाह-
१५ स्तथा युक्ता प्रजा भवतीति विज्ञायते” इति । पूर्वा लाजाहुतिमिति वैवाहिकीनां लाजाहुतीनां
प्रथमाहुत्यनंतरं कन्यास्वामिने गोमिथुनं वरः कन्यावते प्रदाय तस्या एव पुनर्ग्रहणमार्षो नाम
विवाहः । दक्षिणास्विति क्रत्विग्वरणवेलायामेव वरसंपयुक्तम् । कंचिद्वित्विक्तेन वृत्वा दक्षिणाकाले
तदीयभागेन सह कन्यां तस्मै दद्यात्स च तां प्रतिगृह्य समाप्ते यज्ञे शुभनक्षत्रे विवाहं कुर्यात्स देवः ।
उत्तरेषां क्षत्रियादीनां वर्णानां तत्प्रत्ययत्वाद्वन्वलप्रधानत्वात्क्षत्रियस्य । अयन्त्रितकलत्राः ।
२० अयन्त्रितमानियतं कलत्रं येषां ते तथा दारेष्वत्यंतानियमस्तेषां भवति । निकृष्टकृषिशुश्रूषा-
द्यधिकृतत्वात्तयोर्विवाहोऽपि तादृश एवेत्यर्थः । इति गोविंदस्वामी । गौतमोऽपि (४।४-१३)—
“ ब्राह्मो विद्याचारित्रबंधुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृताम् । संयोगमंत्रः प्राजापत्ये सह
धर्मश्र्वयतामित्यार्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यादंतर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्येच्छन्त्या स्वयं संयोगो
गांधर्वो वित्तेनानतिः स्त्रीमतामासुरः । प्रसद्यादानाद्राक्षसोऽसंविज्ञातोपसंगमात्पैशाचश्चत्वारो
२५ धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके” इति । प्राजापत्ये विवाहे सह धर्मश्र्वयतामिति एष संयोगमंत्रः प्रदान-
मंत्र इत्यर्थः । आर्षमपि केचित् प्रशस्तं नेच्छ्रुतिः । तत्रादिशुल्कश्रहणात् । तथा च मनुः (३।५३)—
“ आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुमृषेव तत् । अल्पो वा ऽपि महान्वाऽपि विक्रयस्तावतैःसह” ।
गोमिथुनं शुल्कमाहुः । अनुजानते तन्मृषा तदयुक्तम् । अल्पो वा महान्वा द्रव्यलोभादादीयमानं
शुल्कं विक्रय एवेत्यर्थः । केचिदेवं व्याचक्षते । आर्षे विवाहे गोमिथुनं शुल्कमिति वदंति ।
३० तन्मिथ्या । विक्रयः क्रयसाधनं मूल्यदेशकालाद्यपेक्षयाऽल्पं महद्वा भवति । आर्षे तु गोमिथुनं
परिमाणस्य नियतत्वान्न क्रयक्रीतित्यर्थ इति । तथा च देवलः—

“ पूर्वे विवाहश्चत्वारो धर्म्यास्तोयप्रदानकाः । अशुल्का ब्राह्मणार्हश्च तारयंति द्वयोः कुलम्”॥ इति ।
तथा चापस्तंबः (२।१।३।११)—“ विवाहे द्विहित्रमते दानं काम्यं धर्मार्थं” श्रूयते—“ तस्माद्व-
हित्रमतेऽधिरथं शतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति तस्यां क्रयशब्दः संस्तुतिमात्रं धर्माद्वि-
३५ संबंधः” इति । आर्षे विवाहे द्विहित्रमते दानं क्रचिद्वेदे श्रूयते । तामेव श्रुतिमुदाहरति

तस्माद्वाहित्रमत इति द्वित्रमते रथेनाधिकां गवां शतं देयम् । तत्र शतं द्वित्रमान् मिथुयाकुर्या-
न्मिथ्याकुर्यादित्यर्थः । कन्यायै वराय च क्षेत्रालंकरादिप्रत्यर्पणे तद्रूप्यादानसाम्यगतकर्यवृत्तिं
वितर्थीकुर्यादित्यर्थः । यद्वा मिथुया मिथुनं वरदत्तद्रव्यं मिथुनस्य कुर्यादित्यर्थः ।
मिथ्यार्थत्वं मिथुनार्थत्वं च मिथुया शब्दस्य श्रूयते (आर्थर्व सं. ४।३९९) । “मा देवानां
मिथुया कर्मभागधेयं आपो वा अग्नेऽमिथुयाः मिथुनवान्भवतीति” । तदिदं दानं काम्यं काम- ५
निमित्तं यथा युक्तो विवाह स्तथायुक्ता प्रजा भवतीति (१।१२।८) कष्टितुल्याः पुत्रा यथा
स्युरिति ततश्च धर्मार्थं न क्रयार्थम् । अयज्ञो वा एष योऽपत्नीक ॥ इत्यादिकश्चुतेः पाणि-
ग्रहणादधिग्रहमेधि नोर्वतमिति सपत्नीकस्यैव धर्माधिकारस्मरणाच्च विवाहस्य धर्मार्थत्वेन
तदर्थं दानमपि धर्मार्थमेव यस्तस्यां विवाहक्रियायां क्रयशब्दः कच्चित्स्मृतौ दृश्यते स
संस्तुतिमात्रं द्रव्यप्रदानसाम्यात् । न मुख्यकर्मत्वप्रतिपादनार्थ । कुतः । हि यस्माद्वर्मदेव १०
हेतोः संबंधो दंपत्योरित्यर्थः । एवं च धर्मार्थं दानविधानात् “सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि
अहृष्टार्थानि” इति स्मरणात् “द्वाहित्रमते च स्वदेयमुदकपूर्वमेव दद्याद्वाहित्रमांश्च कन्याम्
अद्वित्रव द्विजातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते” इति स्मरणात् उदकपूर्वमेव दद्यात् “द्वित्रमतेऽ-
धिरथं शतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति” श्रुत्या गोमिथुनादधिकमप्यादाय वरयोषिन्द्रां गृह-
क्षेत्रभूषणादिद्वारप्रत्यर्पणे सति स विवाहो धर्म्य एवेति गम्यते । न चैवम् “आसुरो द्रविणादानात्” ५
इति स्मरणादासुरत्वं शंकनीयं कन्यावतो भोगार्थं द्रव्यादाने तथोक्तत्वात् । तथा च गौतमः
(४।९) “वित्तेनानतिः स्त्रीमतामासुरः” इति । आनतिः कन्यादानं “प्रत्यानुगुण्यं स्त्रीमतम्”
इति वचनात्कन्यायै गृहक्षेत्रादि द्रुत्वा विवाहेऽपि नासुरत्वमिति हरदत्तः । कन्याया भूषणार्थं
छादनाद्यर्थं वराद्वनादानं न दोषावहमित्याह मनुरापि (३।५४) —
“यासां न ददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्हणं तत्कुमारीणामानुशंस्यं च केवलम्” ॥ २०
यासां कन्यानां न ददते नोपजीवन्ति केवलं निश्चितम् । एतदेवाष्टभिः श्लोकैः समर्थयति स
एव (३।५५-६२)
“पितृभिर्विश्वैताः पतिभिर्द्वैरस्तथा । पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥
“यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥
“शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्विसर्वदा ॥ २५
“जामयो यानि गेहानि शपंत्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समंततः” ॥
जामयः स्वसारः । कृत्या अभिचारक्रियाः ।
“तस्मादेताः समभ्यच्चर्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नैर्नित्यं सत्कारेणोत्सवेषु च ॥
“संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च । यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥
“यदि हि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदयेत् । अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ३०
“स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् । अस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते” ॥
यत एवं कन्या भूषयितव्या । अतो ज्ञातिभिर्वराङ्गभूषणार्थं धनादानं न दोषावहमित्यर्थः ।
स्वोपभोगार्थद्रव्यग्रहणे पित्रादीनां दोषमाह स एव (३।५१-५२) —
“न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीयात् शुल्कमण्वपि । गृह्णन्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रीयी ॥
“स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बांधवाः । नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यांत्यधोगतिम्” ३५
नारी शुल्कगृहीता पापीत्याह स एव (९।९८-९००) —

“आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् । शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते च्छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥

“नानुशुश्रूम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु । शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च्छन्नं दुहितृविक्रयम्” ॥

संवर्त्तः—

“कन्याविक्रयिणो मूर्खा महापापस्य कारकाः । पतंति नरके घोरे यावदा भूतसंप्लवम् ॥

५ “क्रयक्रीता तु या कन्या न सा पत्नी विधीयते । सा तु दैवे च पित्र्ये च दासी स्यान्न च साश्रिता ॥

“यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मद्रोहितः । असंभाष्यस्त्वपांकेयः स विप्रो वृषलीपतिः” ॥ इति ।

यमः—

“यो मनुष्यां हि विक्रीय यत्किंचिद्दन्तमृच्छति । तस्या मूत्रं पुरीषं च स परत्रोपजीवति ॥

“कन्याविक्रयिणो मूर्खा इह किल्विषकारकाः । पतंति नरके घोरे दहंत्या सप्तमम् कुलम् ॥

१० “कन्यां तु जीवनार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति । उपभुक्ते पुरीषं च मूत्रं तस्याः परस्य च” ॥ इति ।

ननु च

“शुल्कं प्रदाय कन्यायाः प्रत्यादानविधानतः । वित्तहेतुर्विवाहोऽयमासुरः षष्ठ उच्यते”
इति देवलस्मरणेन शुल्कनिवंधन आसुरो विवाहः । ननु आसुरविवाहः कथं धर्म्यत्वेन मन्वादि-
भिराश्रित इति चेन्न । पूर्वतनविवाहाऽसंभवे आपद्वर्मत्वेन तस्याप्याश्रयणात् । तथां च

१५ तारदः—

“विवाहास्त्वष्टुधा भिन्ना ब्राह्माद्या मुनिसत्तमाः । पूर्वः पूर्वः परो ज्ञेयः पूर्वाभावे परः परः” ॥ इति ।

चंद्रिकायामपि—

“क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते । तथा दैवे च पित्र्ये च दासीं तां काश्यपोऽब्रवीत्” ॥ इति ।

यत्काश्यपवचनम्—

२० “कुविवाहैः कियालोपैर्वदानध्ययनेन च । कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिकमेण च” ॥ इति ।

यदपि मनुवचनं तत्प्रशस्तविवाहसंभवविषयमिति । अत्र केचिद्दाहुः—

“भूमिब्रीहियवाजाश्ववृषभधेन्वनदुहश्चेति स्थावरे विक्रयो नास्ति” इति । च गौतमादिभिः
(अ. ८ सू. १५)—प्रतिषिद्धेऽपि भूमिविक्रये

“भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति । तावुभौ पुण्यकर्मणौ नियतं स्वर्गकामिनौ” ॥

२५ इति भूदानप्रशंसादर्शनाच्च विक्रयोऽपि कर्तव्यो “हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छति मेदिनी”

इति स्मरणात् सहिरण्योदकं दत्त्वा दानरूपेण स्थावरविक्रयं कुर्यादिति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् ।

तद्रित्याऽत्रापि—“कन्याविक्रयिणो मूर्खाः । पैशाचश्वासुरश्वैव न कर्तव्यौ कथंचन” इति
कन्याविक्रयनिषेधात् ।

“नाग्निचिन्नरकं याति न कन्यादो यतः स्मृतः । विश्वजित्संमितो यज्ञः कन्यादानं महाफलम् ॥

३० “ज्योतिष्ठोमातिरात्राणां शतं शतगुणं कृतम् । प्राप्नोति कन्यकां दत्त्वा होममंत्रैस्तु संस्कृताम् ॥

“कनकाश्व तिला नागा दासीगृहमहीरथाः । कन्यका कपिला चैव महादानानि वै दृश ॥

“दशानां तु सहस्राणां युक्तानां धुर्यवाहिनाम् । सुपात्रे विनियुक्तानां कन्यां विद्याच्च तत्समम् ॥

“अन्नविद्यावधूत्राणगोभूरुक्माश्वहस्तिनाम् । दानान्युत्तमदानानि ह्यत्तमद्व्यदानतः” ॥ इत्यादिभिः

कन्यादानप्रशंसादर्शनाच्च द्रव्यदानमन्तरेण ‘कन्यानधिगमे पाणिग्रहणाद्विसहत्वं कर्मसु’ इति

३५ पाणिग्रहणमारभ्यैव विवाहसिध्याग्निहोत्रादिश्रौतस्मार्तकर्माधिकारस्मरणात्तदनुष्ठानायावश्य-

कर्तव्ये च विवाहे “अद्विरेव द्विजातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते” इति स्मरणादुदकपूर्वमेव द्रव्यं दातव्यं दत्वा सहिरण्योदकपूर्वमेव कन्याऽप्यादातव्येति न चासुरादिविवाहेषु सप्तमपदातिक्रमगत्वावेन पतित्वभार्यात्वयोरनुत्पत्तिरिति शंकनीयम् । तत्रापि स्वीकारानंतरमेव संस्कारविधिनात् । देवलः—

“गांधर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः । कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णः समयेनाग्निसाक्षिकम्”॥ ५
गृहपरिशिष्टेऽपि—

“गांधर्वासुरपैशाचविवाहो राक्षसश्च यः । पूर्वं परिश्रयस्तेषां पश्चाद्वैमो विधीयते”॥
पश्चियः स्वीकारः । अत एव न बलादपहारमात्रेग भार्यात्वमित्याह वसिष्ठः (१७.७३)—
“बलतश्चेद्गृह्यता कन्या मंत्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवैदेया यथा कन्या तथैव सा”॥ इति ।
अथ विवाहांगविशेषमाह मनुः (३.४३-४४)—

“पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मजि ॥

“शरः क्षत्रियया धार्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वासोदशा शूद्रया तु वर्णोत्कृष्टस्य वेदने”॥
करेण करस्य ग्रहणं पाणिग्रहणमेव संस्कारः पाणिग्रहणसंस्कारः । उत्कृष्टवेदने सवर्णादुत्तरस्य
वर्णस्य लाभे विवाह इति यावत् ।

अथ शोभनद्वयसंनिपाते संग्रहकारः—

१५

“एकोदराणां पुंसां स्थादिवाहो नैकवत्सरे । भिन्नोदराणां कुर्वीत स्त्रीणां चैव न संशयः”॥
बराहमिहिरः—

“एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे । विवाहो नैव कर्तव्यो गर्गस्य वचनं गथा”॥
एतद्वत्त्रयादर्वाग्विषयम् । यथाह गर्गः—

“एकमातृप्रसूतानामेकस्मिन्नवत्सरे यदि । विवाहो नैव कर्तव्यो निर्गते तु ऋतुव्यये”॥ २६

“ग्रामांतरे तु कर्तव्यः कर्तव्यो नैकवेशमनि”॥ अंगिराः—

“एकमातृप्रसूतानां शुभद्वयमृतुव्यये । न कुर्याद्विष्वेदे तु त्रिमासादूर्ध्वमाचरेत्”॥

“फाल्गुने चैत्रमासे च पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदे त्वदस्य कुर्वीत नर्तुव्यविलंबनम्”॥

“न पुंविवाहे धर्वमृतुव्यये विवाहकार्यं द्वाहितुः प्रकल्पयेत्”।

“न मंडनाच्चापि हि मुंडनं च स्थान्मुडनान्मंडनमन्वगेव”॥ मंडनं विवाहः । मुंडनमुपन-

यनम् । शातातपः—

“मंडनं मुंडनं चैव न कुर्यादिकवत्सरे । मुंडनं प्रथमं कुर्यान्मंडनं तु ततः परम्”॥ श्रीधरीये—

“पुत्रस्य पाणिग्रहणात्परस्ताच्च मासषट्कात्तनयाविवाहः”।

“तद्विवाहादपि नोपनीतिस्तथोपनीतेः परतश्च चौलम्”॥ गर्गः—

“एकमातृप्रसूनां कन्यकापुत्रयोर्द्वयोः । सहोद्राहो न कर्तव्यः तथा नैवोपनायनम्”॥ ३०

स्मृतिरत्ने—

“एकस्मिन्छोभने वृत्ते द्विशुभं न तु कारयेत् । यदि कुर्यात्प्रभादेन तत्र स्थाद्वशुभं धूवश्”॥

पुत्रीविषये विशेषमाहांगिराः—

“उद्वाह्य पुर्वीं न पिता विद्युत्पुत्र्यंतरस्योद्वहनं न जातु”।

“यावद्वत्तुर्थीदिवसंग्रहस्य समापनं तावद्वतो विद्युत्प्रयात्”॥ अर्षः—

१५

“ पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्विनवतुष्यत् । पुञ्चयंतरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः ॥

“ एकस्मिस्तु गृहे कुर्यादेकानेव शुभक्रियाम् । अनेकांस्तु प्रकुर्वणः स नाशमाधिगच्छति ॥

“ द्विशोभनं त्वेषुगृहेषु नेष्टुं शुभं तु कुर्यान्नतो पुरस्तात् ।

“ आवश्यके शोभन उत्सुकश्चेदाचार्यभेदेन तथैव कुर्यात् ” ॥ नारदः—

५ “ शुभकुरुते शोद्वाहात्पश्चात्पुत्रक्रश्यहः । एकतिथ्यामपि प्राह भागवो भिन्नवेलया ॥

“ एकोदरेद्वसुतामुत्योर्विवाहं मासांरे मनुशिष्ठपराशराद्याः ।

“ इच्छुंति भंगदमथशु वद्विग्नेऽग्निर्विवाहात्प्रमेदे ॥

“ एकलग्नेऽपि भिन्नांशे वसिष्ठात्रिवराशराः । द्वयोर्विवाहमिच्छुंति पृथग्ग्रामेऽथ मडपे” ॥

बृहस्पतिः—

१० “ ए हस्मिन्द्रसे त्वेकलग्ने भिन्नांशके तथा । एकलग्नेऽत्ययोर्विवाहः शुभकुद्ववेत् ॥

“ देशभेदात्काचारादिमे धर्माः प्रकीर्तिः । एकलग्ने द्वितीये वा गृहे यत्र द्विशोभनम् ” ॥

“ द्वयोरान्यद्विनष्टे स्यद्वितीयदिति स्थितिः ॥

“ एकमातृप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे । एक एव न कुर्वीत विवाहं वतवंधनम् ॥

“ एकः कर्ता शुभं कुर्यान्न पुञ्चयोः पुञ्चयोरपि । षण्मासे वा चतुर्मासे पूर्णे वर्षे शुभावहम् ” ॥

१५ शातातपः—

“ एकमातृप्रसूतानां नार्णनकार्यद्वयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽवृत्ति” ॥

“ यत्रोपयमनादूर्ध्वं षण्मासाभ्यंतरेऽपि वा । युञ्यद्वाहं न कुर्वीत विवाहाद्वतवंधनम् ” । उपयमनं विवाहः । विवाहाद्वतवंधनं विवाहादूर्ध्वं षण्मासाभ्यंतरे वतवंधनमुपनयनं न कुर्वीत । एतानि वचनानि यमलव्यतिरिक्तविषयाणि । कालदीपे यमलविषये विशेषो दर्शितः—

२० “ भ्रावृद्वये स्वसुयुगे स्वसुभ्रावृयुगे तथा । समानाऽपि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च ” ॥

भ्रावृद्वये यमल इत्यर्थः । अत्र प्रथमज एव ज्येष्ठः ।

यमलयोज्येष्ठचनिरूपणम् । तथा च मनुः (६।१२५-१२६)—

“ सदृशव्विषु जातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्येष्ठचमस्ति जन्मतो ज्येष्ठसुच्यते ॥

“ जन्मज्येष्ठचेन चावहानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैकगर्भेऽपि जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ” ॥

२५ संघ्रहेऽपि—

“ यमयोर्जातयोर्ज्येष्ठचं जन्मतः प्रोच्यते बुधैः । गर्भस्य कस्यचिह्नोके चिराज्जननदर्शनात् ॥

“ यमयोर्जननाज्ज्येष्ठमाधानं चेष्यते बुधैः ” इति । यत्तु

“ यमलौ चैकगर्भे तु च्छ्री वाऽपि पुरुषोऽपि वा । कनिष्ठ आयजातः स्यात्पश्चाज्जातोऽप्रजः स्मृतः ” ॥

इति स्मरणं तत्समभागस्थगर्भव्यतिरिक्तोपर्ययोभागस्थविषयम् ।

३० “ पार्श्वयोः संस्थितौ गर्भो तयोर्यः पूर्वजः स तु । ज्येष्ठ इत्युच्यते सद्विजातकादिषु कर्मसु ” ॥

इति वादरायणीयस्मरणात् । दत्तविषये विशेषः स्मृतयंतरेऽभिहितः—

“ औरसे तु समुत्पन्ने दत्तो ज्येष्ठो न चेष्यते । ” औरसः कनिष्ठोऽपि दत्तविवाहात्पूर्व विवहेदित्यर्थः ।

“ होमपूर्वं तु यो दत्तः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्कन्यां पुत्रादौ न निषेधकृत ॥

३५ “ दातुगोत्रसमुद्भूतां गृहीश्चकुलसंभवः । उद्वहेदशपादूर्ध्वं नोद्वहेदिति गौतमः ” ॥ इति सप्तली-

पुत्रयोस्तु पितुजीवनदशायां जन्मज्येष्ठकमेण विवाहः पितृमरणानंतरं तु विवाहे न क्रमनियम इति केचित् । अथ पुंसवनसंस्कृतस्य जन्ममासज्येष्ठमासयोरुत्सवनिषेधमाहांगिराः—

“ मौजीनिबंधवत्कर्मणी च चूडाकृतिश्च प्रथमो विवाहः ।

“ स्नानं च पुंसः प्रथमस्य नेष्टुं ज्येष्ठाख्यमासेऽपि च जन्ममासे” ॥ कालादशैऽपि— आद्यगर्भोऽत्ययोज्येष्ठमासीनोद्वाहमाचरेत् । प्रथमगर्भप्रसूतयोर्द्वापुंसयोज्येष्ठमासि उद्वाहकर्म ५ नाचरेदित्यर्थः । रत्नमालायामपि—

“ जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसे च कारयेत् ।

“ आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न तु पाणिपीडनम् ” ॥ अत्रिः—

“ जन्मभे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्ठमासाद्य गर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ” ॥
मौज्युद्वाहप्रतिष्ठादीन्केचित्तत्रापि कुर्वते । नारदः— १०

“ जन्ममासे च जन्मर्क्षे न च जन्मदिने तथा । अद्यगर्भसु तस्याथ हुहितुर्वा करग्रहः ॥
“ नैवेद्वाहो ज्येष्ठमासे दंपत्योस्तु परस्परम् । ज्येष्ठमासे तयोरेकज्येष्ठः श्रेष्ठस्तु नान्यथा” ॥ गर्गः—
ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्यया विवाहो न प्रशस्यते । द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तौ ज्येष्ठमेकं शुभावहम् ॥

“ ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहं वहुसंमतम् । आषाढः प्रौष्ठपन्माघो मार्गशीर्षस्तथैव च ॥

“ चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्मणि” । सिंहस्थे गुरौ गुहशुकतौद्वादौ च विवाहनिषेधः । १५
मत्स्यः—

“ सिंहस्थिते सुरगुरावधिमासके च ज्येष्ठे तथाऽद्यतनयस्य तु शुकगुर्वोः ।

“ मौद्ये तथा स्थविरबालकयोश्च कुर्याज्जन्मस्थिते सुरगुरौ न हि मंगलानि” ॥ गर्गः—

“ गुरौ सिंहस्थिते चैव सूर्ये च धनुषि स्थिते । विवाहमपि नेच्छंति मुनयः काइयपादयः ” ॥
धनुर्गतेके विवाहनिषेधः द्वितीयविवाहनिषेधपरः । यतः प्रथमस्य तत्र दक्षिणायनत्वेन निषेधो २०
विहितः । गुरौ सिंहस्थित इत्यत्राप्ययमेव न्यायः । नारदः—

“ गुरौ तु सिंहराशिस्थे भागे भाग्यवती भवेत् । पैत्रेर्यमर्क्षे सा नारी विवाहे विधवा भवेत् ” ॥
एतन्नर्मदोत्तरविषयम् । यदाह व्यासः—

“ नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमंत्रिणि । विवाहं नैव कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे” ॥

एवं च द्वितीयविवाहकर्त्तुर्न दोष इतिपर्यवसन्नम् । श्रीधरीत्रे— २५

“ नर्मदोत्तरभागेषु सिंहस्थेऽमरपूजिते । विवाहादि न कुर्वीत नायं दोषोऽस्ति दक्षिणे ॥

“ सिंहराशौ सिंहभागे यावत्तिष्ठति वाक्पतिः । नर्मदायाम्यकोणेषु न दोषो दक्षिणापथे ” ॥
अर्णले—

“ अन्नप्राशनवैवाहे पुंसो जन्मर्क्ष एव च । जन्ममासे च वर्ज्यं स्यान्नर्मदातीर उत्तरे ॥

“ नर्मदादक्षिणे भागे विवाहादिषु मंगलम् । जन्ममासे शुभं प्रोक्तं वहूनां संमतं कृतम्” ॥ इति ॥ ३०
व्यासः—

“ अन्नप्राशनमातिथ्यं विवाहो वास्तुकर्म च । रात्रावहनि वा कुर्याच्छेषाण्यहनि कारयेत् ॥

“ आषाढः प्रौष्ठपन्माघौ मार्गशीर्षस्तथैव च । चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्मणि ॥

“ मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्ततुरंगमे । क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं मौजीनिबंधनम् ॥

“ मावफालगुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभावहाः । मध्यमाः कार्तिको मार्गशीर्षको निंदिताः परे ॥ ३५

“न कदाचिद्दशक्षेषु भानोराद्रीप्रवेशनात् । पौषे चैत्रे शुजौ मार्गे नेति प्राह बृहस्पतिः ॥

“श्रावणं केचिदिच्छंति नेच्छुत्यन्ये महर्ययः । कन्याकुमकुलीरस्थि रवौ क्षौरं विवर्जयेत् ॥

“आषाढादिच्चतुर्मासांश्चान्द्रान्पौषं च वर्जयेत् । सार्वकालिकमिच्छंति विवाहं गौतमादयः”॥

आपस्तंवः (१२।१२)—“सर्वत्वो विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदावम्”

५ इति । शैशिरौ मावकालगुनौ निदावस्य शीष्मस्य यश्वोत्तमोऽत्य आषाढस्तानेतान्वीन्मासान्परिहाप्य वर्जयित्वा सर्वत्वो विवाहस्य काल इत्यर्थः । आश्वलायनश्च—“सार्वकालिकमेके विवाहमिच्छंति” इति । संग्रहे—

“कार्तिकाश्वयुजौ मासादुद्वाहे दक्षिणायने । शंसंति श्रवणं चान्ये मासास्त्वन्ये विगर्हिताः”॥

अत्र व्यवस्थामाह । व्यासः—“अधर्म्या ये विवाहास्ते संमताः सार्वकालिकाः” इति । दक्षः—

१० “राक्षसासुरगांधवीपैशाचा ब्राह्मगस्य तु । निषिद्धे तिथिमासेऽपि संमता इति निश्चयः”॥

गृह्यपरिशिष्टे “धर्म्येष्वेव विवाहेषु कालप्रतीक्षणं नाधर्म्येषु” इति ॥

वोधायनः—

“यस्मिन्काले विरोधोऽस्ति ज्योतिषोक्तागमोक्तयोः । ज्योतिषोक्तं विहायैव स्मृतिचोदितमाचरेत्”॥

व्यासः—

१५ “विष्णोः प्रस्थापनोत्थानमध्येनैवोपनायनम् । विवाहं नैव कुर्वीत नैव कुर्यान्महोत्सवम्”॥

स्मृत्यर्थसारे—

“अंधः श्वित्री च कुनखी हीनांगः पंगुरेव च । कालप्रदौ भवेयत्र कुलक्षयकरं हि तत्”॥

कालप्रदः मुहूर्तविधाता । देवलः—

“देवोत्सवे प्रवृत्ते तु न मनुष्योत्सवो मतः । तस्मिन्प्रामे न कुर्वीत कुर्याच्चेत् स विनश्यति”॥

२० इति गोभन्द्रयसविप्रातादिनिष्ठगणम्॥ऋद्धिपरीक्षामाह आपस्तंवः—(गृ.सू.१३।१५-१८)

“शक्तिविषये द्रव्याणि प्रतिच्छन्नान्युपनिधाय बूयादुपस्पृशेति । नानावीजानि संसृष्टानि वेद्याः

पांसून्दरेत्रालोषः शकुच्छामशानलोषमितिपूर्वेषामुपस्पर्शने यथालिंगमृद्धिरूपमं परिचक्षते”॥इति।

नानावीजानि व्रीहियवादिवीजानि संसृष्टान्येकस्मिन्नृत्यिष्टे क्षितान प्रतिच्छन्नानि कृत्वा

स्थापयित्वा वेद्याहतान् पांसून्दरेत्रास्यसंपन्नादाहतं लोषिं शकुच्छमशानलोषं च पृथक्-

२५ पिंडेषु निश्चिप्य प्रतिच्छन्नानि एकस्मिन्भाजने निधाय कन्यां ब्रूयात् एषां पिंडानामेकमुपस्पृशेति

पूर्वेषां तूर्जामुपस्पर्शने यथायोग्यमृद्धिः । नानावीजानामुपस्पर्शने प्रजासमृद्धिः वेद्याः पांसूनां

यज्ञसमृद्धिः । क्षेत्रलोषस्य सस्यसमृद्धिः । शकुतश्च पशुवृद्धिः । उत्तमं स्मशानलोषं परिचक्षते

गर्हन्ते शिरा इत्यर्थः । आश्वलायनः (१।५।४-६) “अष्टौ पिंडान्गृहीत्वा ऋतमये प्रथमं

जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपथतां यत्सत्यं तद्वश्यतामिति

३० पिंडानभिमंत्य कुमारीं ब्रूयादेषामेकं ग्रहणेति । क्षेत्राच्चेदुभयतः सस्याद्गङ्गीयात् अन्न-

वत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्यात् । गोषात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो

ह्रदात्सर्वसंपन्ना देवनात्कितवी चतुष्पथादिप्रवाजिनीरिणादधन्या शमशानात्पतिष्ठनी”॥ इति

शमशानपिंडस्पर्शने तस्या एव वैधव्यं भविष्यतीत्यर्थः । हारीतः—

“प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहित्रयम् । न चैकजातयोः पुंसोः प्रयच्छेदुहित्रद्वयम्”॥ इति ।

३५ “पितुः स्वसारं मातुञ्च मातुलानीं स्नुषामपि । मातुः सप्तनीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥

आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छेस्तु गुहतलपगः ॥”। इति दोषस्मरणात्साक्षात्परंपरया वा “श्वश्रः पूर्वजपत्नी च मातुतुल्याः प्रकीर्तिताः” “पितृपत्न्यः सर्वा मातराः” इत्यतिदेशोन वा ताटशी नोद्वाहेत्यर्थः । कन्यादानकालमियमकमः संग्रहकारः—

“भुक्तां समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीयहणं तथा । उपोषितः स वै दद्यादर्चिताय द्विजातयः” ॥
इति भुक्तोद्वाहस्मरणमर्मविवाहविषयम् । तदाह व्यासः— ५

“गांघर्वासुरयोरेव भुक्ता तु परिणीयते । ब्राह्मादिषु विवाहेषु भोजनं नेति काश्यपः ॥

“ब्राह्मादिषु विवाहेषु पूर्वं होमः प्रशस्यते । कन्यास्वीकरणं पञ्चात् अत्ययस्वासुरादिषु ॥

“स्वगृह्योक्तविधानेन पौर्वापर्यव्यवस्थितिः” ॥ व्यासः—

“दद्यात्पूर्वमुखः कन्यां गृहीयादुत्तरामुखः । देपत्योर्वर्धते चायुर्दातुश्चैव विवर्धते” ॥
स्कंदोऽपि— १०

“नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो वारिपूर्वकम् । उद्दमुखाय व दद्यात्कन्यां चैव यवीयसीम्” ॥
वासिष्ठस्तु विशेषमाह

“प्राक्प्रत्यङ्गमुखयोश्चैव दात्रयाहकयोः स्थितिः । उद्दाहे चैव गोदानादानयोरेवमेव हि ॥
आश्रेयपुराणे—

“दद्यात्तु प्राङ्मुखस्तस्मै वरः प्रत्यङ्गमुखो वधूम् । गृहीत्वा शोभने लम्पे ईक्षेदापादमस्तकम्” ॥ १५
आश्वलायनः—

“वरस्योदक्षस्थितां कन्यां प्राङ्मुखीं प्राङ्मुखायताम् । समभ्यर्च्य पिता दद्यात्तत्पाणौ मंत्रवज्जले ॥

“दद्यात्प्रत्यङ्गमुखः स्थित्वा गृहीत्वा प्राङ्मुखोंजलिम्” ॥ बोधायनगद्ये— अत्र सृतीनां विरोधे
विकल्पो द्रष्टव्यः । व्यासः—

“आच्छाद्यालंकृतां कन्यां गृह्णन् वामकरेण तु । गोत्रमादौ तु संकीर्त्य प्रपितामहपूर्वकम्” ॥ २०

“प्रपितामहपूर्वाय फलमुद्दिश्य दापयेत । नांदीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ॥

“नामसंकीर्त्येद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्” ॥ इक्षः— “नामगोत्रे समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम्”
इति । जमद्ग्निः— “कन्यां वामके धृत्वा प्रपितामहपूर्वकम्” इति ॥ देवपुराणोऽपि—

“गोत्रं नाम तु संकीर्त्य कीर्त्येत्प्रपितामहम् । पितामहं च पितां कन्यामेदं वराय च ॥

“आसीनायात्वियास्तिष्ठन् गृह्णामीत्यस्तिष्ठन्तः । गृहीयात्पाणिमुत्तानं सांगुष्ठांगुलिदक्षिणाम्” ॥ इति ॥ २५
औपासनात्पूर्वमग्निनाश पुनर्विवाहः । संग्रहे—

“पूर्वमौपासनारंभादग्निनाशो यदा भवेत । पुनर्विवाहः कर्त्तव्यः परतस्तु न विद्यते” ॥ “ऋग्वे-
दिनां प्रवेशहोमात्पूर्वं यजुर्वेदिनामौपासनारंभात्सामवेदिनां लेखाहोमात्पूर्वमग्निनाशो पुनर्विवाहः”
इति बोधायनः— “अथ चेदौपासनारंभात्प्राक् ज्वलनस्य नाशः पुनर्विवाहं कुर्वीत” इति ।
पुनर्विवाहकल्पोऽपि तेनैव व्याख्यातः— ३०

“अङ्गकुरं च प्रतिसरं वरणं च प्रतिग्रहम् । वाससा परिधानं च कर्मण्येतानि वर्जयेत्” ॥ इति ।
उपनयनविवाहजातकर्मश्मशानाग्निनाशो प्रायश्चित्तमाह बोधायनः— “अथ यद्युपनयनाग्निविवाहाग्निर्जातकर्माग्निः स्मशानाग्निरा चतुर्थादा द्वादशाहादा संचयाद्वा तस्मात्सर्वं
तत्प्रहतेति प्रोक्ष्य संदिलमन्तर्गाग्निमपसमाधाय संपरिस्तीर्य प्रायश्चित्तं जहोत्ययाश्वाग्ने पंच

होता ब्राह्मण एक होता मनस्वर्तीमिदाहुती महाव्याहृतिव्याहृतयश्च प्रायाश्चित्तं जुहुयात्” इति बोधायनगृह्ये—

“ औपासनारंभकालभाव आपस्तंवः (श. सू. ३.७.१९)—

“ सायं प्रातरत ऊर्ध्वं हस्तेन्ते आहुती तंडुलैर्यवैर्वा जुहुयात् ” इति । अत ऊर्ध्व-५ माघेयस्थालीपाकांताद्विवाहाहृष्ट्वं रात्रावौपासनस्यारंभः । यदि नव नाड्यो नातीताः । अतीताश्वेद-परेव्युः सायमेवाग्निहोत्रवेदायामिति गृह्यतात्पर्यदर्शने । स्मृतिरत्ने—

“ व्रेधा कृत्वा यामिनीं पूर्वमगे स्थालीपाको नित्ययुक्तो द्वितीये—

“स्थालीपाको नैव युक्तस्वर्ताये नैव स्थाली नैव नित्यो विवाहे” ॥ नित्य औपासनहोमः ।

व्यासः—

१० “ रात्रौ विवाह उत्पन्ने वन्हिं परिचरेत्तदा । रात्रावर्तीतकालश्वेत् श्वः सायं तदुपक्रमेत् ॥

“ प्रातर्होमः संगवांते काले त्वनुदिते तथा । सायमस्तमिते होमकालस्तु नवनाडिका ” ॥ इति ।

अथ स्थालीपाकोपक्रमः । तत्रापस्तंवः (३.७-१८)—“ एवमत ऊर्ध्वं दक्षिणावर्जमुषोषितम्यां पर्वमु कार्यः । पूर्णपात्रसु दक्षिणेत्येके ” इति । अत ऊर्ध्वमाग्नेयस्थालीपाकात् परमित्येवं वर्दताग्नेयस्थालीपाकानन्तरं शेषहोमात्पूर्वं पर्वसंभवेऽपि आग्नेयस्थालीपाकः

१५ कार्य इत्युक्तं भवति । यथाहुः—

“ विवाहशेषमध्ये तु पर्वण्युत्पतिते सति । तस्मिन्बपि च कर्तव्यः स्थालीपाको यथाविधि ॥

“ तत्र यद्यप्यमावास्या विवाहात्स्यादनन्तरम् । यदि वा पौर्णमासी स्यात् स्थालीपाकक्रियामिति ” ॥ इति । अत्रामावास्यायामपि स्थालीपाकस्मरणमाग्निपौर्णिमास्यां मौद्यादिदोषदुष्टत्वे द्रष्टव्यम् । तदाह गौतमः—

२० “ पाकयज्ञस्य चारंभमन्वारंभणमेव च । पौर्णमास्यां यजेत्पूर्वं दर्शनैव कथंचन ॥

“ मौद्यादि दोषमासे तु पौर्णमास्यां यजेत्कथम् । दर्शनैवाऽपि यजेत्पूर्वं पौर्णमासीममापि ॥

“ अतिकालांतरारंभो यजमानस्य पापकृत् । आयुः त्रियं यशो हन्यात् तस्मात्तौ न व्यतिक्रमेत् ” ॥ यावद्दर्शं पौर्णमासस्य कालत्वाद्वितीयं पूर्वमेव पंचम्यादौ द्वितीयां चतुर्दशीं सप्तदशीं विनैव त्विति निषेधात् पौर्णमासस्थालीपाकं कृत्वा स्वकाले त्वमामपि यजेत् । न तु प्रतिपदि पौर्णमासमपि सह यजेद्विन्यर्थः । यनु

“ मौद्ये वाऽप्यधिमासे वा ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनन्तरपर्वणि ” ॥

इति स्मरणम् । यदपि—

“ आषाढेऽप्यधिमासे वा चंक्रांतौ ग्रहणेऽपि वा । अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनन्तरपर्वणि ” ॥

इति तत्समनन्तरपर्वण्यवश्यकर्तव्यताप्रतिपादनपरम् । मौद्यादौ तु दोषमरणात् । यथाहुः—

३० “ आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा । तत्रारंभणीया स्यादिति वृद्धेन भाषितम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे च—“ वसंतकालेऽपि मलमासादिकं चेत् कर्मन्वारंभो नास्ति अन्वारंभणादिकं न कर्तव्यम् ” इति । अत्रान्वारंभणं स्थालीपाकः ।

“ उपरागोऽधिमासो वा यदि प्रथमपर्वणि । नाहरेत्प्रथमामिष्ठिं मौद्ये च गुरुशुक्रयोः ॥

“ स्थालीपाकक्रिया कुर्याद्विवाहादुत्तरायणे । पितृमासचतुष्केषु यदि कुर्याद्विनश्यति ॥

“ आरंभं दर्शपूर्णेऽध्योरग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठामपि कर्मद्यं मलमासे विवर्जयेत् ॥

“ प्रारब्धे तु वृतीयादौ प्रोक्तदोषो न विद्यते । क्रतुत्रयमतिकम्य स्थालीपाकं विना कृतम् ॥

“ अजस्रं लौकिकं विद्यान्मासत्रयमथापि वा ” ॥ इदं देशांतरगमनविषयम् ।

“ क्रतुमेकमतिकम्य स्थालीपाकं विना कृतम् । अजस्रं लौकिकं विद्यादिति वेदविदो विदुः ” ॥

इति स्मरणात् । इति स्थालीपाकोपक्रमनिरूपणम् । अथाधिवेधनम् । तत्र मनुः (१८०-८३)

“ मध्यपाऽसश्चवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् । व्याधिता चाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थग्री च सर्वदा ॥ ५

“ वंध्याऽष्टमेधिवेद्याद्वे दशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननी सद्वस्त्वप्रियवादिनी ॥

“ या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः । सानुजाप्याऽधिवेत्तव्या नावमान्या च कहिंचित् ॥

“ अधिविज्ञा तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यः संनिरोद्धव्यात्याज्या वा कुलसन्धिधौ ” ॥

त्यागः जनककुले प्रेषणम् । याज्ञवल्क्यः (आ. ७३)—

“ सुरापी व्याधिता धूर्ता वंध्याऽर्थद्वन्यप्रियंवदा । स्त्री प्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ” ॥ १०

यस्यां हि विद्यमानायां भार्यातरपरिग्रहः साऽधिवेत्तव्येत्यर्थः ।

“ अधिविज्ञा तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् । यत्रानुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते (७४) ॥

“ आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् । त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्वयो भरणं स्त्रियाः ” ॥ (७६)

“ त्यजन्नधिविन्दन् स्वस्य धनस्य वृतीयांशं दाप्यः । निर्धनस्तु स्त्रिया भरणं ग्रासाच्छादनादि दाप्य इत्यर्थः । पराशरमाधवीये— ॥ १५

“ धर्मविघ्नकरीं भार्यामिसतीं चातिकोपिनीम् । त्यजेद्वर्मस्य रक्षार्थं तथेवाप्रियवादिनीम् ” ॥

त्यजेदाधिविन्देत् । दक्षः—

“ प्रथमा धर्मपत्नी स्याद्वितीया रतिवर्धिनी । दृष्टमात्रफलं तस्यामदृष्टं नोपलभ्यते ॥

“ धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् । दोषेष्वपि न दोषः स्यादन्योद्वाहे विजानतः ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ एकामुक्तम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थः पूर्वोदामपरां वहेत् ” ॥

बोधायनः (२२१५९)—

“ अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्वस्त्वप्रियवादिनीम् ” ॥

दशम इत्यादार्तवानंतरं वेदितव्यं न तु पाणिग्रहणात् । आपस्तंवः (२२११२-१३)—

“ धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतराभावे कार्या । प्रागगन्याधेयात् ” इति । श्रौतेषु स्मार्तेषु च २५

कर्मसु श्रद्धाभक्तिश्च धर्मसंपत्तिः पुत्रवत्वं प्रजासंपत्तिः एतद्युक्ते दारे सति अन्यां भार्या नोद्वहेत् ।

धर्मप्रजयोरन्यतरस्याभावे कार्या उद्वाह्या । अत्र दारे सतीति वचनान्मृते तस्मिन्प्रागृद्धर्वं चाधाना-
त्सत्यामपि पुत्रसंपत्तौ धर्मसंपत्त्यर्थं दारग्रहणं भवत्येव ।

“ दारशब्दस्यैकवचनस्यौगश्चछांदिसः । शातातपः—

“ मध्यपानप्रवृत्ता च दीर्घरोगा च या भवेत् । प्रतारिकाऽनपत्या स्त्री प्रसूः पुरुषभाषिणी ॥ ३०

“ अर्थग्री च पतिद्वेषी स्त्री तिष्ठत्यपि चोद्वहेत् ” । पादेन वाऽक्षरप्रियोगो भवत्यार्थः । रामायण-
देवीमहात्म्ययोस्तथादर्शनात् । स्मृत्यंतरे—

“ व्याधितां स्त्रीप्रजां वन्ध्यामुन्मत्तां विगतार्त्तवाम् । अदुष्टाऽर्हति इत्यकुं तीर्थतो न तु धर्मतः ” ।

तीर्थं योनिः । गर्गः—

“गृही स्यादेकपत्नीकः सकामी चेद्वहेत्पराम् । वृतीयां नोद्वहेत्कन्यां चतुर्थीमपि चोद्वहेत्” ॥
अर्कविवाहः ।

“वृतीयामुद्वहेत्कन्यां मोहादशानतोऽपि यः । धनधान्यायुषां हानिः रोगी स्याद्यदि जीवति ॥

“वृतीयोद्वाहसिध्यर्थमर्कवृक्षं समुद्वहेत् । ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा गच्छेद्यत्रैव तिष्ठति ॥

५ “यथार्ह शोभनं कृत्वा कृत्वा भूमिं च शोभिताम् । वस्त्रेण तंतुना वेष्ट्य ब्राह्मणस्तं परिश्रयेत् ॥

“स्वशाखोक्तविधानेन होमान्तेऽग्निं स्व आत्मनि । आरोप्यैव वरो धीरो ब्रह्मचर्यं चरेत् उद्यहम् ॥

“एकाहमपि वा कन्यामुद्वहेदविशंकितः” । अयं च द्वितीयाद्विवाहः प्रजासंपत्यभावे
मृतायां वा द्रष्टव्यः । श्रुतिः—“जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्क्रिणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन
देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः । तस्मादेको द्वे जाये विंदते तस्मादेको बव्हीर्जाया विंदते” इत्यादि

१० श्रुतितो धर्मप्रजार्थमनेकभार्यापरिग्रहावगमात् ।

द्वितीयविवाहकालः । गार्यः—

“भार्यातिरविवाहः स्यादयुग्मे वत्सरे शुभः । युग्मे भर्तुविनाशाय गार्यस्य वचनं यथा” ॥

वासिष्ठः

“भार्याहीनस्तु वैवाहं कुर्यात्तस्मिंस्तु वत्सरे । वत्सरांतरिते कुर्याद्यनांतरितेऽपि वा” ॥

५ युग्मेऽप्ययुग्ममासे वा शौनको मुनिरब्रवीत्” ॥

अथ परिवेदनम् । गर्गः—

“सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्वारसंग्रहः । आवस्थयं तथाऽधानं पतितस्त्वन्यथा भवत्” ॥

आवस्थयमावस्थ्याधानम् । आधानं गार्हपत्याद्याधानम् । यमः—

“पितृव्यपुत्रान्सापत्नान्परपुत्रांस्तथैव च । दाराग्निहोत्रधर्म्यर्षु नार्थमः परिविंदतः” ॥

२० परपुत्रा इत्तकीतादयः । शातातपः—

“कृबि देशांतरस्थै च पतिते भिक्षुकेऽपि वा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदनं” ॥

कात्यायनः—

“देशांतरस्थकृबिकवृषणानसहोदरान् । वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥

“जडमूकांधबधिरकुब्जवामनखेटकान् । अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसक्तांश्च कामतः ॥

२५ “धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतःकारिणस्तथा । कुहकोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति” ॥

खेटकः भग्नदोःपादद्वयः । अभार्या नैष्ठिकब्रह्मचारिणः । कामतः कारिणः स्वेच्छयैव विवाहान्निवृत्ताः ।
तेषामपि परिविन्दन्वं नास्तीति प्रतिभाति । यद्यपि जडमूकादीनामपि विवाहोऽस्ति तथापि
परिविन्दन्न दुष्यति । पराशारः

“द्वादशैव तु वर्षाणि ज्यायां धर्मार्थयोर्गतः । न्याय्यः प्रतीक्षितुं ब्रात्रा श्रूयमाणः पुनः पुनः ॥

,० धर्मार्थयोः धर्मार्थमर्थार्थं च देशांतरं गतः । जीवतीति पुनः पुनः श्रूयमाणः द्वादशवर्षाणि
प्रतीक्षय इत्यर्थः । वासिष्ठोपि—“अष्टौ दशद्वादशवर्षाणि ज्येष्ठब्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः
प्रायश्चित्तीभवति” इति । अनिविष्टमकृतविवाहाग्निहोत्रम् । कार्यान्तरार्थं देशांतरगतविषये
अष्टौ दश वेति पक्षद्वयम् । धर्मार्थमर्थार्थं वा गतविषये द्वादशवर्षाणीति विवेकः । विद्या-
ग्रहणार्थं गतविषयेऽपि गौतमः (अ. १८ सू. १७-१८)—“विद्यासंबन्धे ब्रातरि चैवं ज्यायसि
५ यदीयान् कन्यागन्युपयमेष्विति” । शंखः—

“ज्येष्ठे तिष्ठत्यनूद्वे वा अभिहोत्राधिकारिणि । अनुज्ञया विनाऽधानं विवाहं नैव कारयेत्” ॥
संग्रहे—

“देशांतरगते ज्येष्ठे द्वादशाब्दं निरीक्ष्य तु । पश्चात्कनितो विधिवत्कुर्याद्वै दारसंग्रहम्” ॥
एवं प्रतीक्षणमुन्मत्तादिव्यतिरिक्तविषयम् ।

उन्मत्तादीनां विवाहनिराकरणम् । तथा चंद्रिकायाद्—
“उन्मत्तः किल्वर्धी कुटी पतितः क्लीद उब वा । राजयक्षमासयादी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम्” ॥
“मनोन्मत्तजड्क्लीवपतितानां द्विजन्ननाम् । नोद्वाहो नैव संस्कारो नाशोचं नोद्वक्तिया ॥

“रंभाविवाहः कर्त्तव्यस्तदल्लभेऽर्कवास्या । विवाहं मनुजाः कुर्युरित्येतन्मनुरवर्वात्” ॥
मनुशातातपौ (३।७१)—

“दाराभिहोत्रसंयोगं कुरुते योऽयजे स्थिते । परिवेत्ता स विजेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः” ॥ १०
पराशारः (४।२०)—

“परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविवते । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः ॥

“कुव्जवामनषंद्वेषु गङ्गदेषु जडेषु च । जात्यंधे विरिषे सूक्ष्मे न दोषः परिवेदने (२३) ॥

“पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनार्गमुतस्तथा । दाराभिहोत्रसंयोगं न दोषः परिवेदने (२४) ॥
“परिवेत्तुर्न चाग्निस्तु न वेदा न तपांसि च । न च आद्वं कनिष्ठस्य या च काऽन्या विहृषिता” ॥ १५
विवाहाधिकारणयां ज्येष्ठायां सत्यां कनिष्ठाया उद्वाहो न कार्यः । विहृषितायां तु ज्येष्ठाया-
मनुद्वायामपि कनिष्ठायां उद्वाहो न दोषायेति ।

“ज्येष्ठायां यद्यनूद्वायामुह्यते त्वनुजा भवेत् । सैवाग्रेदिधिष्ठेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता” ॥
बोधायनोऽपि (२।१।३९)—

“परिवित्तिः परिवेत्ता च या चेनं परिविद्धति । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः” ॥ २१
कन्यायाः पातित्ये सति कृतप्रायश्चित्ताया एव विवाह इत्याह यज्ञः—

“स्त्री यदा वालभादेन महापापं करोति हि । प्रायश्चित्तवतस्यार्थं पित्रा तु व्रतचारिणीम् ॥

“उद्वेदभिस्तपां तामन्यथा पतितस्तु सः” ॥

पतितादीनां धर्मनिरूपणम् फतितैः सह योनिसंबंधे पातित्यमाह ध्यात्वः—
“संदत्सरेण पतति संसर्गः कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत्” ॥ २५

“याजनं योनिसंबंधं तथैवाध्यापनं द्विजः । कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनमेव वा” ॥

देवलः—“याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सह भोजनम् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥

आपस्तंबः (१।२।१५)—

“न पतितैः संव्यवहारो विवते” इति । कृतप्रायश्चित्तैरपि पतितैरुत्पादितानां
पुत्राणामपि पातित्यमस्तीति पूर्वपश्पूर्वकं प्रतिपाद्यति स एव (१।२।१८-१८)—“अथा- ३०
भिशस्ताः समवसाय चरेयुर्धर्म्यमिति सांशित्येतरेतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवह-
मानाः । पुत्रान्सनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रवजतास्मदेवं ह्यस्मत्स्वार्याः संप्रत्यपत्स्यन्तेत्यथापि न संद्रियः
पताति । तदेतेन वेदितव्यधंगहीनो हि सांगं जनयति । मिथ्यैतदिति हारीतः । दधिधानीसधर्मा स्त्री
भवति । यो हि दधिधान्यामप्रयतं पय आतच्य मंथति न तेन धर्मकृत्यं क्रियते । एवमशुचि शुद्धं
यन्निवर्तते न तेन सह संप्रयोगो विवते” इति । अभिशस्ताः पतिताः समवसाय चरेयुः । अवसानं ३५
गृहम् समित्येकीभावे । ग्रामाद्वहिरेकस्मिन्प्रदेशे गृहाणि कृत्वा चरेयुः । धार्म्यं धर्म्यं वक्ष्यमाणं

वृत्तमिति सांशित्य संशितां तीक्ष्णां बुद्धिं कुत्वा निश्चित्येत्यर्थः । इतरेतरं याजयन्त इतरे-
तरमध्यापयन्तः परस्परं विवाहसंबंधं कुर्वतश्चेयुर्वर्तेराग्निति । अथ ते पुत्रान् संनिष्पाद्य ब्रूयुः ।
हे पुत्राः अस्मद्स्मन्तः विप्रवजत विवाहं प्रकर्षेण च ल्लेहसुत्सृज्यार्थसमीपं गच्छत । एवं ह्यस्मत्सु
अस्मासु आर्याः शिष्टाः संप्रतिपत्स्यते संप्रतिपत्तिं करिष्यन्ति । आर्यणामप्येतद्भिप्रेतं भविष्यति
५ यस्माद्स्माभिरव दत्तनीयं कर्मनुष्ठितं न च भवद्विन् च पतितेनोत्पादितस्य पातित्ये मन्य-
त्वात् । एतदेवोपपादयति । अथापि न सेंद्रियः पतति । न हि पतितो भवन्निंद्रियेण सह पतति ।
पुरुष एव पतति नेंद्रियं शुद्धिति । तदनंतरोक्तमर्थरूपदेतेन वक्ष्यमागेन निर्दर्शनेन वेदितव्यं ।
पातित्यम् । चक्षुराद्यंगहीनोऽपि सांगं चक्षुराद्विमंतं जनयति । एवमधिकारविकलः साधिकारं जन-
यिष्यति । स्त्रिया अपि कारणत्वात्स्याश्च दोषाभावात् । द्रूषयति मिथ्यैतदिति । एतदनंतरोक्तं
१० मिथ्या न युक्तमिति हारीतो मन्यते । हारीतश्चहणं पूजार्थं । दधि धीयते यस्यां सा दधिधानी ।
स्थाली । तथा सधर्मा सदृशी स्त्री भवति । ततः किं । यो हि पुरुषो दधिधान्यां स्थाल्यामप्रयतं
श्वाद्युपहतं पथ आतच्य तक्राद्यातं च तेन संकृत्य । मंथति न तेन तदुत्पन्नमष्टादिना धर्मकृत्यं
यागादिकं क्रियते । एवं पतितसंबद्धेनाशुचि शुद्धं श्रियां निषिक्तं शोणितेनाकं यन्निर्वर्तते येन
रूपेण निष्पद्यते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते शिष्टानामित्यर्थः ।

१५ वोधायनः (२।१।३-२) — “संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्सव्यः”
इति । स एव (२।१।४३-५१) — “अथ पतिताः समवसाय धर्माश्वरेयुरितरेतरयाजका
इतरेतराध्यापका मिथो विवाहमानाः पुत्रान्संनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रवजतास्मन्त एवमार्यनिपि ।
संप्रतिपत्स्यथेत्थापि न सेंद्रियः पतति तदेतेन वेदितव्यमंगहीनोऽपि सांगं जनयेन्मिथ्यैतदिति
हारीतः । दधिधानीसधर्माः स्त्रियः स्युर्यो हि दधिधान्यामप्रयतं पथ आतच्य मंथति न तच्छिष्टा
२० धर्मकृत्येषूपयोजयत्येवमशुचिशुद्धं यन्निर्वर्तते न तेन सहसंप्रयोगो विद्यते अशुचिशुद्धोत्पन्नानां
तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तिः । पतनीयानां त्रुटीयोऽशस्त्रीणामंशस्वृतीयः इति ॥ समानायामप्युत्पन्नौ
पुत्र एव पतति न दुहिता । तथा च । वासिष्ठः (१७।५१-५३) — “पतिनोत्पन्नाः पतितो भवंत्यन्यत्र
स्त्रियाः । सा हि परगामिनी । तामशुद्धमुपेयात्” इति । अशुद्धां कृतप्रायश्चित्तामुपेयाद्वित्यर्थः । तथा
च याज्ञवल्क्यः (प्रा. २६।१) — “कन्यां समुद्देहेषां सोपहारामकिंचनाम्” इति । एषां ब्रह्महादी
२५ नामकिंचनामशुद्धाम् । हारीतेऽपि — “तस्य तु कुमारीमहोरात्रोपितां प्रातः शुद्धामहतेन
वाससाऽच्छादितां नाहमेतेषां मम नेते द्वति त्रिस्तच्चैरभिधानां तीर्थं स्वगृहे वोद्दहेत्” इति ।
दारसंग्रहस्य फलमाह । याज्ञवल्क्यः (आ. ७८) —
“लोकानंत्यं दिवः प्रातिः पुत्रयोऽवश्योत्तरकैः । यस्मात्स्मात्स्विद्यः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः” ॥
पुत्रादिभिः लोक आनंत्यं वंशस्याविच्छिन्द्र अग्निहोत्रादिभिश्च स्वर्गप्राप्तिरेतद्वयं यस्मात् स्त्रीभ्य एव
३० भवति तस्मात्स्विद्यः सेव्याः उपभोग्याः प्रजार्थं रक्षितव्याश्च धर्मार्थमित्यर्थः ।

स्त्रीरक्षणक्रमः । अनुः (९।२-१७) —
“अस्वतन्नाः स्त्रियः कार्याः पुरुषेः रवेदिवानिशम् । विषये सज्जमानाश्च संस्थाप्य ह्यात्मनो वशे ॥
“पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति योवने । पुत्रस्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति” ॥ इति ।
‘पुत्रस्तु स्थविरीभाव’ इत्यनेन सत्यपि भर्तरि पुत्रेणैव पालनं कार्यमिति प्रतीयते । “वृद्धौ च
३५ मातापितरौ” इत्यादिना तस्यैव पालनाधिकारविधानात्स्वातंत्र्यं च स्वरक्षन्नयोग्यकारविधा-
यिनीत्वम् ।

“ सूक्षेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्वयोहिं कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ (५) ५
 “ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्मसुत्तमम् । यतंते रक्षितुं भार्या भर्त्तरां दुर्वला अपि ॥ (६)
 “ स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्मं प्रजाञ्चेव जायां रक्षन्हि रक्षति ॥ (७)
 “ पतिर्भार्या प्रविश्य स्वां गर्भो मूत्रेह जायते । जाययास्तद्वि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥
 “ यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविवद । तस्मात्प्रजाविच्छुद्यर्थं स्त्रिया रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ५
 “ न कथियोपितः शक्तः प्रसद्य परिक्षितुम् । एतेषुपाययोर्गैस्तु शक्ताः स्युः परिक्षितुम् ॥
 “ अर्थस्य संप्रहे चैनां व्यये चैव निश्चोन्नयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपक्षक्षां च पारिणद्यस्य चेष्टणे ॥
 “ अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरात्मकारिषिः । आत्मानमात्मनः यास्तु रक्षेदुस्ताः सुरक्षिताः ॥
 “ पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽन्नम् । स्वप्नोऽन्योऽहवासञ्च नारीणां दूषणानि पद् ॥
 “ नैता रूपं प्रतीक्षंते नासां वयसि संस्थितिः । विहूपं रूपवंतं वा पुमानित्यव भुंजते ॥ १०
 “ पौश्रल्याच्चालच्च नेस्नेहाच्च स्वसादतः । रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्वुष्वेता विकुर्वते ॥
 “ एवं स्वमावं ज्ञात्वाऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥
 “ शश्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्या च स्त्रिभ्यो मनुरकल्पयत् ॥
 “ यादृग्गुणेन भर्त्ता स्त्री संयुज्येत यथाविधि । तादृग्गुणा सा भवति सनुद्रेणेव निन्नगाः ॥ (२२)
 “ प्रजनार्थी महाभागाः पूजार्हा ग्रहदीपतयः । स्त्रियाच्च यस्य गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ (२३) १५
 “ प्रजनार्थी स्त्रियः सृष्टा संतानार्थं च मानवाः । तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतो पतन्या सहोदितः ॥ (२४)
 “ उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । ग्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिवंधनम् ॥ (२५)
 “ अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुक्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि ॥ (२६)
 “ विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः । अवृत्तिकर्षिताः हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिभव्यपि ॥ (२७)
 “ विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममाहिता । प्रोषते त्वदिधायैव जीवेच्छिष्टपैरगर्हितः ॥ (२८) २०
 “ यदि स्वाश्वापराश्वैव विद्वरन्योपितो द्विजाः । तासां वर्णकमेतत् स्याऽज्जयैषं पूजा च वेहमनि ॥ (२९)
 “ भर्तुः शरीरशुश्रूषा धर्मकार्यं च नैत्यकद् । स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्त्रजातिः कर्थंचन ॥ (२३)
 “ यस्तु तत्कारयेन्मोहात्स्वजात्या स्थितयोऽन्यया । यथा ब्राह्मणचंडालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ (२७)
 “ तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसो तु द्रुतकियो । यथा नातिवेरतां तां नियुक्तावितेरतम् ॥ (१०२)

दक्षः—

२५

“ ग्रहाश्रमात्परो नास्ति यदि भार्या वशानुगा । तथा धर्मार्थकामाख्यं त्रिवर्गकलमश्चुते ॥
 “ आनुकूल्यं कलत्रस्य स्वर्गो भवति निश्चितम् । प्रातिकूल्यं कलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥
 “ स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतद्दुरागः परस्परम् । नक्तमेकं विरक्तं चेत्तस्मात्कष्टतरं तु किम् ॥
 “ ग्रहाश्रमः सुखस्तस्य पत्नीमूलं हि तत्सुखन् । सा पत्नी या विविजा तु चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥

“ दुःखांतिकः कलिर्भेदविनिपीडापरस्परम् । प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ३०
 “ जलूकावत्तियः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः । सुपूजिता सुखाद्वाऽपि पुरुषं द्युपकर्षति ॥
 “ जलूका रक्तमादत्तं केवलं सा तपस्विनी । इतरा तु धनं चित्तं मांसं वर्यं तथा सुखम् ॥
 “ साशंका बालभावे तु योवने विषयोन्मुखी । वृणवन्मन्यते पश्चाद्वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥
 “ अकार्यं वर्तमाना सा स्नेहेन न निवारिता । आवार्या तु भवेत्पश्चाद्यथाव्याधिरूपेक्षितः ॥
 “ अनुकूला सदा हृष्टा दक्षा साध्वी प्रजापतिः । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ ३५

“ प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा । भर्तुः प्रियकरी या तु सा भार्या इतरा जरा ॥

“ अदुष्टां विनतां भार्या यौवने यः परित्यजेत् । सप्तजन्म भवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः पुनः ॥

“ दरिद्रं व्याधितं सूर्खं भर्तां याऽवमन्यते । सा शृता जायते स्त्री श्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

“ जीवे भर्तारि या नारी उपेष्य व्रतचारिणी । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

५ “ जीवभार्या शिशुब्रातृमित्रदाससमाप्तिता । यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोकेऽपि गौरवम् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ७५)—

“ वृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सेह कीर्तिमवामोति मोदते चोमया सह ॥

“ स्त्रिभिर्भर्तुवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः । आ शुद्धेः संप्रतीक्षयो हि महापातकदूषितः ॥ (७७)

“ भर्तृश्रावपितृज्ञातिश्वशूखशुरदेवरैः । वंशुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ (८२)

१० “ संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्गमुखी । कुर्याच्छुशुरयोः पादवंदनं भर्तृतत्परा ” ॥ (८३)

संयतोपस्कराः स्वस्थानावस्थापितदृष्टुपलोलूसलादिगृहोपकरणवर्गाः ।

प्रोषितभर्तृकस्त्रीधर्मः । प्रोषिते भर्तृक्या कर्तव्यमाह स एव (अ. ८४-८८)—

“ क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥

“ रक्षेत्कन्यां पिता विक्रां पतिः पुत्रस्तु वार्धके । अभावे ज्ञातयस्तेषां स्वातंत्र्यं न क्वचित्स्त्रियाः ॥

१५ “ पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेंद्रिया । इह कीर्तिमवामोति प्रेत्य चानुक्तमां गतिम् ॥

“ सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ” ॥

सत्यां सवर्णायामसवर्णी नैव धर्मकार्यं कारयेत् । सवर्णस्वपि बह्विषु धर्म्ये विधौ धर्मानुष्ठाने ज्येष्ठया विना ज्येष्ठां मुक्त्वा इतरा मध्यमा कनिष्ठा वा न नियोक्तव्येत्यर्थः । शांखः—

“ नानुका गृहान्निर्गच्छेनानुक्तरीया न त्वरिता व्रजेन्न परपुरुषमभिभावेतान्यत्र वणिकप्र-
२० व्रजितवृद्धवैद्येभ्यो न नाभिं दर्शयेदा गुल्काद्वासः परिदृश्यान्न स्तनौ विवृतौ कुर्यान्न हसेद-
पावृतं भर्तारं तद्वधून्वा न द्विष्यान्न गणिकाधूर्ताऽभिसारिणीप्रव्रजितप्रेक्षणिकामायामूल-
कुहककारिकादुःशीलादिभिः सहैकत्र तिष्ठेत्संसर्गेण हि चारित्र्यं दुष्यति ” इति । पराशः

“ दरिद्रं व्याधितं सूर्खं भर्तारं याऽवमन्यते । सा शुनी जायते शृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

“ पत्यौ जीवति या नारी उपेष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

२५ “ अवृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् । सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

“ नास्या जपतपोहोमदानव्रतमसादयः । ल्लीणां पतिपराणां तु पत्यौ जीवति किंचन ॥

“ तदाज्ञया तु कर्तव्यमकार्यमपि चेतया । भर्तुरप्यवलितस्थ कार्याकार्यमजानतः ॥

“ पत्न्याप्याज्ञा तु कर्तव्या पतितस्य तु सर्वदा ” ॥ इति । आश्वलायनः—

“ बांधवानां स्वजातीनां दुर्वृतं कुरुते तु या । गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत् क्वचित् ॥

३० “ यत्पापं वद्वहत्यायां द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ ”

पतिव्रताधर्मः । शार्करेयः—

“ नारी खल्वननुज्ञाता पित्रा भ्रात्रा सुतेन वा । निष्कलं तु भवेत्स्या यत्करोति व्रतादिकम् ” इति ।

कात्यायनः— “ भार्या भर्तुर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत् ” इति । महाभारतेऽपि पतिशुश्रूषापराया

उत्तमां गतिमुक्त्वा व्रतादिपराया अन्यस्या भार्यायास्तदभावं ज्ञापयितुमुदाहृतम्—

३५ “ यमोऽथ लोकपालांस्तु वभाषे पुष्कलं वचः । मा शुचस्त्वं निवर्तस्व न लोकाः संति तेऽनवे ॥

“ स्वधर्मविधुरा नित्यं कथं लोकान् गमिष्यसि । देवतं हि पतिर्नार्याः स्थापितः सर्वदेवतः ॥
“ मोहेन त्वं वरारोहे न जानीषे स्वदेवतम् । पतिमत्या त्रिया लोके धर्मः पत्यर्पितस्त्वति ” ॥
मनुरापि (५१५४)—

“ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते यत्रु तेन स्वर्गं महीयते ॥
“ अनृतावृतुकाले च मंत्रसंस्कारकृत्यतिः । सुखस्य नित्यदातेह परलोके च योषितः ॥(१५२) ५
“ अशनादि पयः पथ्यं भर्ता यच्च विवर्जितम् । आत्मनश्च तया तत्स्याच्छयनं चासनं तथा ॥
“ अशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । न त्रिया परिवर्ज्यः स्यात्सततं देववत्यतिः ॥(१५३)
“ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा । पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥(१५४)
बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता । न स्वातंड्येण कर्तव्यं कार्यं किंचिद्गृहेष्वपि ॥(१५५)
“ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने । पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत स्वतंत्रता ॥ (१५६) १०
“ पित्रा भर्ता सुतैर्वाऽपि नेच्छेद्विरहमात्मनः । एवां हि विरहेण स्त्री हीने कुर्यादुभे कुले ॥ (१५७)
“ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यं च दक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ” ॥(१५८)

कात्यायनः—

“ अग्निहोत्रादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्द्वात्मत्वे च ज्येष्ठया गार्हिता न चेत् ॥
“ तथा वीरसुवामासामाज्ञासंपादिनी च या । दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ १५
“ दिनक्रमेण वा कर्म यथाज्येष्ठमशक्तिः । विभज्य सहसा कुरुर्यथाज्ञानमशक्तिः ” ॥

धर्मसारे—

“ यद्गृहे कलहो नास्ति पूज्यंते यद्गृहे स्थिताः । तद्गृहे वसते लक्ष्मीर्तियं पूर्णकलान्वितां ” ॥

द्व्यासः—

“ कुरुषो वा कुवृत्तो वा दुःस्वभावोऽथ वा पतिः । रोगान्वितः पिशाचो वा मध्यपः क्रोधनोऽथ वा ॥ २०
“ वृद्धो वाऽथ विदग्धो वा मूर्कोऽधो वधिरोऽपि वा । रौद्रो वाऽथ दरिद्रो वा कदर्याकुत्सितोऽथ वा ॥
“ कातरः कितवो वाऽपि ललनालंपटोऽपि वा । सततं देववत्पूज्यः साध्या वाक्यायकर्मभिः ॥
“ अहंकारं विहायार्थं कामक्रोधां च सर्वदा । मनसो रंजनं पत्युः कार्यमन्यस्य वर्जनम् ” ॥
रत्नावलयात् —

“ न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सुहजनाः । गतिर्भवति सत्त्वीणां पतिस्त्वेकः परा गतिः ” ॥ २५
द्व्यासः—

“ द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षावेक्षणं तथा । असत्प्रलापो हास्यं च दूषणं कुलयोषिताम् ॥
“ सकामं वीक्षिताऽप्यन्यैः प्रियैर्वाक्यैः प्रलोभिता । स्पृष्टा वा जनसंमई न विकारमुपैति या ॥
“ पुरुषं सेवते नान्यं मनोवाक्यायकर्मभिः । लोभिताऽपि परेणार्थैः सा सती लोकभूषणम् ॥
“ दैन्येन प्रार्थिता वाऽपि वरेन विधृताऽपि वा । वस्त्रादैर्वासिता वाऽपि नैवान्यं भजते सती ॥ ३०
“ वीक्षिता वीक्षते नान्यं हसिता न हसत्यपि । भाषिता भाषिते नैव सा साध्वी साधुलक्षणा ॥
“ रूपयौवनयुक्ताऽपि गीतचृत्येऽपि कोविदा । स्वासुरुपं नरं दृष्टा न याति विकृतिं सती ॥
“ सुरुपं तरुणं रम्यं कामिनीनां च वल्लभम् । या नेच्छति परं कांतं विज्ञेया सा महासती ॥
“ भुक्ते भुक्तेऽथ या पत्यौ दुश्खिते दुश्खिता च या । मुदिते मुदिताऽत्यर्थं प्रोषते मलिनांवरा ॥
“ सप्ते पञ्चाङ्ग या झोते पर्वग्रेत षष्ठग्रन्ते । त्राप्तं त्राप्तं त्रिप्ते त्रिप्ते ॥ ३१

“ भक्तिं श्वशुरयोः कुर्यात्पत्युश्चापि विशेषतः । धर्मकार्येऽनुकूलत्वमर्थकार्येषु संयमम् ॥

“ प्रागलभ्यं कामकार्येषु शुचित्वं निजविग्रहे । मंगलं संमतं पत्युः सततं प्रियभाषणम् ॥

“ भाव्यं मंगलकारिण्या गृहमंडनशीलया । गृहोपस्करसंस्कारतज्जया प्रतिवासरम् ॥

“ क्षेत्राद्वानाद्वा ग्रामाद्वा गृहं भर्तरिमागतम् । प्रत्युत्थायाभिनन्देच्च स्वासनेनोदकेन च ॥

५ “ प्रसन्नभांडमृष्टान्ना काले भोजनदायिनी । संयता गुप्तयाऽन्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥

“ गुरुणां पुत्रमित्राणां बंधूनां कर्मकारिणाम् । आहूतानां च भूत्यानां दासीदासजनस्य च ॥

“ अतिथ्यभ्यागतानां च भिष्ठुकाणां च लिंगिनाम् । आसने भोजने दाने संमाने प्रियभाषणे ॥

“ तत्तद्गुणानुसरेण प्राप्ते काले यथोचितम् । दक्षया सर्वदा भाव्यं भार्यया गृहमुख्यया ॥

“ गृहव्ययाय यद् द्रव्यं दिशेत्पत्न्याः करेपतिः । निर्वर्त्य गृहकार्यं सा किञ्चिद्बुध्याऽवशेषयेत् ॥

१० “ दानार्थमप्तिं द्रव्ये लोभात्किञ्चिन्न धारयेत् । भर्तुराजां विना नैव स्वबंधुभ्यो दिशेद्वनम् ॥

“ अत्यालापमसंतोषं परव्यापारसंगताम् । अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानं च वर्जयेत् ॥

“ यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न खादति । यच्च भर्ता न चाश्वाति सर्वं तद्वर्जयेत्सती ॥

“ तैलाभ्यंगं तथा स्नानं शरीरोद्वर्तनक्रियाम् । मार्जनं चैव दंतानामलकानां च कर्त्तनम् ॥

“ भोजनं वमनं निद्रां परिधानं च वाससाम् । प्रारंभं मंडनानां च न कुर्यात्पश्यति प्रिये ॥

१५ “ आहूता या तु वै भर्ता स्त्री न याति त्वरान्विता । सा ध्वांक्षी जायते नूनं दशजन्मानि पंच च ॥

“ कामाद्रोषान्मत्सराद्वा भर्तां याऽवमन्यते । सा सप्तजन्मकं यावन्नारकी स्यान्न संशयः” ॥

अत्रिः—

“ न व्रतेनोपवासेन धर्मेण विधिना न च । नारी स्वर्गप्रवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥

“ जीवितेनाथ वित्तेन भर्तां वंचयेत्तु या । क्रिमियोनिशतं गत्वा पुल्कसी जायते ततः ॥

१० “ जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रवज्या मंत्रसाधनम् । देवताराधनं चैव स्त्री शूद्रपतनानि षट् ” ॥ व्यासः—

“ हरिद्रां कुंकुमं चैव सिंदूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च तांवूलं मंगल्याभरणं शुभम् ॥

“ केशसंस्कारकवरीकरकण्ठविभूषणम् । भर्तुरायुष्यविच्छंती इषयेन पतिव्रता ॥

“ प्रातःकाले तु या नारी दद्याद्रव्यं विवस्वते । सत जन्मनि वैधव्यं सा नारी नैव पश्यति ॥

“ कृत्वा मंडलकं बाह्ये तूष्णिमिवाक्षतादिभिः । पूजयेत्सततं यावत्तस्यास्तुष्यन्ति देवताः ॥

२५ “ यद्गृहं राजते नित्यं मंगल्येनुलेपनैः । तद्गृहे वसते लक्ष्मीः नित्यं पूर्णकलान्विता ॥

“ न ददाति तु या नारी ज्येष्ठायै प्रत्यहं बलिम् । भोजयाद्भावथाशक्ति सा प्रेत्य नरकं वजेत् ॥

“ अवश्यमेव नारीभिः ज्येष्ठायै बलिकर्मणा । प्रीणनं प्रत्यहं कार्यं पुत्रपौत्रधनेषुभिः ” ॥

वाल्मीकिः—

“ न पिता नात्मजां नात्मा न माता न सर्वीजनः । इह प्रत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥

१० “ न कृतं न कुलं विद्यां न इत्तं नापि संश्लेष्म् । स्त्रीणां गृहाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥

“ साध्वीनां तु स्थितानां हि शिले सत्ये श्रुते शमे । स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥

“ नातंत्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः । नापतिः सुखमेषेत या स्यादपि शतात्मजा ॥

“ नगरस्थो वनस्थो वा पापी वा यदि वा शुभः । यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥

“ दुःशीलः कामवृत्तो वा धनवान्यदि वाऽधनः । स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥

५ “ पतिशुश्रूषणं नार्यस्तपो नान्यद्विधीयते ” ॥ व्यासः—

“ पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुखा । न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च ॥

“ पतिव्रता धर्मरता रुद्राञ्येव न संशयः । तस्याः पराभवं कर्तुं शक्नोति न जनः क्वचित् ” ॥
वोधायनः—“ भर्तृहिते यतमानः स्वर्गलोकं जयेत् ” इति । इति । अथ गर्भिणीधर्माः—
याज्ञवलक्यः (आ.७९)—“ षोडशार्तुनिशः स्त्रीयां तस्मिन्युगमासु संविशेषं ” इति ।
पराशरः (४।१३-१४)—

“ क्रतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपहर्षति । सा मृता नरकं याति विद्वा च पुनः पुनः ॥

“ क्रतुस्नातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । वोशायां भ्रूजहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ” ॥ इति ।

पूर्वमेव गर्भाधानं सविस्तरमभिहितम् । स्मृतिक्रान्तिकायाम् ()—

“ नावस्करेषूपविशेन्मुत्सलोक्यलादिषु । जलं च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत् ॥

“ वत्मीके नाधितिष्ठेत न चोद्दिव्यमना भवेत् । विलिखेन्न नस्यैर्मूर्मिं नांगरेण न भस्मना ॥ १०

“ न शयालुः सदा तिष्ठेद्वायामं च विवर्जयेत् । न तुषोंगरभस्नास्थिक्यलेषु समाविशेत् ॥

“ वर्जयेत्कलहं लोके गात्रभंगं तथेव च । न मुक्तकेशी तिष्ठेत्तु नाशुचिः स्यात्कदाचन ॥

“ न शयीतोत्तरशिरा न चैवाधःशिरा क्वचित् । न वस्त्रहीना नोद्दिग्ना न चार्द्रचरणा सर्ती ॥

“ नामंगलयं वदेद्वाक्यं न च हास्यादि किंचन । कुर्याच्छुशुरयोर्नित्यां पूजां मंगलतत्पर ॥

“ तिष्ठेत्प्रसन्नवद्ना भर्तुः प्रियहिते रता ” ॥ स्मृतिरत्ने—

“ संध्ययोर्नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या तु प्रयत्नतः । न स्नातव्यं न गंतव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥

“ न शयालुः सदा तिष्ठेत्खट्टाघायां विवर्जयेत् । सर्वोषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥

“ कृतरक्षा सुभूपा च वास्तुपूजनतत्परा । दानशीला वृतीया या पार्वत्या नक्तमाचरेत् ॥

“ इतिव्रता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी । यस्तु तस्या भवेत्पुत्रः स्थिरायुर्वृद्धिसंयुतः ॥

“ अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ” ॥ याज्ञवलक्यः (आ. ७९)—

“ द्वौहृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं वाऽपि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ” ॥
सुश्रुतेऽपि—“ ततः प्रभृति व्यायामव्यवसायातितर्पणदिवास्वन्नरात्रिजागरणशोकभयारोहण-
वेगधारणकुकुटासनशोणितमोक्षणानि परिहरेत् । अभिलघितं इत्वा वीर्यवंतं चिरायुषं पुत्रं
जनयति ” इति । ततः प्रभृति गर्भग्रहणप्रभृतीत्यर्थः । तद्ग्रहणं च श्रमादिलिंगैवगंतव्यम् ।
अन्यान्यपि तत्रैतोक्तानि—“ सद्यो गृहीतगर्भायां श्रमोऽग्लानिपिपासासक्तिस्पंदनं पुत्रं २५
जनयति शुकशोणितयोः संवंधे स्फुरणं च योन्याः ” इति । बृहस्पतिरपि—

“ सद्यो गृहीतगर्भायां श्रमः स्याद्योऽभिजायते । पिपासा च ततो ग्लानियोन्यां तु स्फुरणं भवेत् ” ॥

काश्यपः—

“ गर्भधारणमारभ्य व्यायामव्यसनानि च । तत्क्षणं च दिवा स्वप्नं रात्रौ जागरणं तथा ॥

“ गजाश्वारोहणं शोकं वेगं धारणमेव च । विरेचनं नैव कुर्यात्क्षाराद्यन्नं च वर्जयेत् ” ॥ ३०

गर्भोपनिषद्—“ क्रतुकाले प्रयोग एकरात्रोषितं कलिलं भवति सतगात्रोषितं बुद्धुं भवत्य-
र्धमासाभ्यंतरेण पिंडो भवति मासाभ्यंतरेण कठिनो भवति मासद्वयेन शिरः कुरुते मासत्रयेन
पादप्रदेशो भवत्यथ चतुर्थे मासेऽगुलजठरक्टिप्रदेशो भवति पंचमे मासे षष्ठवंशो भवति षष्ठे
मासे नासाक्षिप्रोत्राणि भवन्ति सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवत्यष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति
पितृरेतोतिरिक्तात्पुरुषो भवति मातुरेतोतिरिक्तात्पुरुषो भवत्युभयोर्वीर्यतुल्यत्वान्पुसको भवति ३५

ब्याकुलितमनसाऽन्धाः खंजाः कुञ्जा वामना भवत्यन्योन्यवायुपीडितानां शुक्रदैवे स्त्रियो
योन्या युग्माः प्रजायंतेऽथ नवमे मासि सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति । पूर्वजातिस्मरो भवति कृताकृतं
च कर्म भवति शुभाशुभं च कर्म विन्दति ।

“नानायोनिसहस्राणि द्वष्टा चैव ततो मया । आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ॥
५ “जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः । अहो दुःखोदयौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाष् ॥”

“यदि योन्याः प्रमुच्चामि सांख्ययोगं समाश्रये । अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥

“यदि योन्याः प्रमुच्चामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् । अशुभक्षयकर्तारं फलशक्तिप्रदायिनम् ॥

“यदि योन्याः प्रमुच्चामि भजेन्नारायणं विभुम् ॥

“यन्मया परिजनस्यार्थं कृतं कर्म शुभाशुभम् । एकाकी तेन दद्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥

१० “एवं जंतुस्त्रियोनिशतं प्राप्य योनिद्वारियंत्रेणैव पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु
वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदार्णी स्मरति जन्मभरेण न च कर्म शुभाशुभम्” इति ।

याज्ञवल्क्यः (प्रा. ७५)

“प्रथमे मासि संक्लेदभूताया तु विमूर्च्छितः । मासे द्वितीये बुद्धुदस्तृतीये चौद्रियैर्युतः ॥

“आत्मा गृह्णात्यजः सर्वं वृतीये स्यद्दते ततः । स्थैर्यं चतुर्थं त्वंगानां पंचमे शोणितोद्धवः ॥

१५ “षष्ठे बलस्य वर्णस्य नखरोम्यां च संभवः । मनश्चेतन्ययुक्तोऽसौ नाडीस्त्रायुशिरायुतः ॥

“सप्तमे चाष्टमे चैव त्वंडांसस्मृतिमानपि । पुनर्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति ॥

“अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्विष्म्युचते । नवमे दशमे वाऽपि प्रबलैः सूतिमारुतैः ॥

“निःसार्थनेवाण इव यंत्रिद्रिष्टेण सत्वरः” । इति । संक्लेदभूतः द्रवभूतः । बुद्धुदमीषत्कठिनम् ।

“हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषद्रक्तं सपितकम् । ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छति” ॥

२० इति लक्षितमोजः । अष्टमे मासि चंचलतया मातरं गर्भं च पुनः पुनर्वर्जनं अतस्तत्र जातो
स्त्रियत इत्यर्थः ।

अथ विधवाधर्मः । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ८६)—

“पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः । हीना न स्यादिना भर्तीं गर्हणीयाऽन्यथा भवेत्”॥

भर्त्री विना भर्तृरहिता पित्रादिरहिता न स्याद्यस्मात्तद्रहिता गर्हणीया निंवा भवेत् ।

२५ **आश्वलायनः—**

“मृते भर्तृर्यपुत्रा तु व्रालपुत्रा च यांश्गना । वंधूनाश्रित्य सा जीवत्संयता जनकादिकान्” ॥

एतच्च ब्रह्मचर्यपक्षे । “भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणम्” इति विष्णुस्मरणात् ।

व्यासः (अ. २५ सू. १५)—

“पत्यौ मृते या योषिद्वैधव्यं पालयेत्कचित् । सा पुनः प्राप्य भर्तरिं स्वर्गभोगान्समश्रुते ॥

३० “विधवाकवरीबंधो भर्तृवंधाय कल्पते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया तया ॥

“एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा पक्षव्रतमथापि वा ॥

“मासोपवासं वा कुर्याच्चांद्रायणमथापि वा । कुर्यात्कृच्छ्रं पराकं वा तपस्कृच्छ्रमथापि वा ॥

“यवान्नैर्वा फलाहारैः शाकहारैः पयोघृतैः । प्राणयात्रां प्रकुर्वाति यावत्प्राणः स्वयं वजेत् ॥

“पर्यकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । तस्माद्दूशयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥

३५ “न चांगोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया कचित् । गंधद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा कचित् ॥

“ तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकेः । तत्त्वितुस्तत्त्वितुश्चापि नामगांधाभिपूर्वकम् ॥
“ विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिकुद्धचा न चान्यथा । पतिभेदं सदा ध्यायेहिष्णुरुपधरं परम् ॥
“ एवं चर्यापरा नित्यं विधवाऽपि शुभा मता । एवं धर्मपरा युक्ता विधवाऽपि पतिवता ॥

आश्वलायनः—

“ जपेच्च रुद्रवत्सा तु नमेत्रविमथावनो । दीपं च भर्तुचिंता रथान्नात्यस्या वा विधीयते ॥ ५
“ जपश्च प्रणवस्तस्य वैदिकस्तु विधीयते ” ॥ पराशारः—

“ मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ॥
ब्रह्मचारिणः ते प्रसिद्धाः । मनुः (५।१५३)—

“ कामं तु क्षणयेद्देहं पुष्पमूलफलं शुभेः । न च नामापि युक्तायात्पत्यो प्रते परस्य तु ॥
“ मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । स्वर्गं गच्छत्यपुत्रा च यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ॥ इति ॥ १०
“ तांदूलोऽभर्तुक्त्रीणां यर्तानां ब्रह्मचारिणम् । एकेकं मांसतुल्यं स्यात् मिलितं तु सुगसमम् ॥
आपस्तंबः “ यावज्जीवं प्रेतपत्न्युद्देश्योपस्पर्शनमेकभुक्तमधःशाश्या ब्रह्मचर्ये आग्नेयमधु-
मांसवर्जनं च ” इति । इति विधवाधर्माः ॥

अथानुगमनम् । तत्र विष्णुः (२५।१४)—

“ भर्तरि प्रते ब्रह्मचर्ये तदन्वारोहणमेव वा ” इति । पैतृकं च यत्र मैषा प्रदीयते । कुलत्रयं १५
पुनात्येषा भर्तरिं याऽनुगच्छति ” ॥ तत्र पराशारः—

“ तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भ्रतां याऽनुगच्छति ” ॥
तावत्कालं तावत्सहस्रं संवत्सरम् । तथा च हारीतः—

“ मृते भर्तरि या नारी धर्मशीला पतिवता । अनुगच्छति भर्तारं शृणु तस्यास्तु यत्कलम् ॥

“ तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्त्यद्विसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २०

“ मातृकं पैतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तरिं याऽनुगच्छति ” ॥

न केवलं स्वयमेवानुगमने स्वर्गं वसति किंतु स्वभर्तरिं पापफलभोगाय नरकमार्गाभिमुख-
मपि स्वकीयेन प्रदलसुकृतेनोद्धरतीत्याह पराशारः—

“ व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बिलात् । एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सङ् मोदते ” ॥

चिकांडी—

२५

“ आपे दुष्कृतकर्माणं समुद्धृत्य च तत्पतिम् । यावत्स्वलोमसंख्याऽस्ति तावत्कोऽन्युनानि च ॥

“ भर्त्रा स्वर्गे सुखं भुक्ते रममाणा पतिवता । यमदूताः पलायने पतिमालोक्य दूरतः ” ॥ इति ।
तथा च शंखांगिरसौ—

“ तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्सर्गं भर्तां याऽनुगच्छति ॥

“ व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बिलात् । तद्वुद्धृत्य सा नारी सङ् तेनैव जोदते ॥ ३०

“ तत्र सा भर्तुपरमा स्तूपमानाऽप्सरोगणैः । क्रीडते पतिना सार्धं यावदिनाश्चतुर्दश ॥

“ ब्रह्मघो वा कृतघो वा मित्रघो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तद्वुद्धृत्य मृता तु च ॥

“ मृते भर्तरि या नारी स मारोहद्वृताशनम् । साऽरुंधतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥

“यावच्चामौ मृते पत्यौ स्त्री नात्माने प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात्कथंचन”॥ इति।
अङ्गिराः—

“ साध्वीनामेव नरीणामभिप्रपतनाहृते । नान्यो धर्मो हि विज्ञेयो मृते भर्तरि कहिंचित् ॥

“आर्तादिर्वेष मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा । मृते चियेत वा पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता” ॥

५ उपमन्युः—

“अनपत्या च या नारी ब्राह्मणा यदि वेतरा । तस्या नान्या गतिः प्रोक्ता सहानुगमन हृते”⁴ अब विज्ञानेश्वरीये (पृ. २३ पं. २७-२८) “अयं च सर्वासां स्त्रीणामबालापत्यानामाचांडालं साधारणो धर्मः । भर्तारं याऽनुगच्छति इत्यविशेषेणोपादानात्” इति । स्मृतिरत्नेऽपि—“धर्मोऽयं सर्वनारीणां पत्युक्तित्यधिग्रहणम् । अन्यत्र गर्भिणीबालाऽपत्ययुक्ताभ्य एव च” ॥ इति ।

और्वः—

“ वालापत्याश्च गर्भिण्यो हृष्टव्यार्त्तेन एव च । रजस्वला राजसूता नारोहंति चितांशुभे ” ॥

स्मृत्युत्तरे

“बालापत्या त या नारी भर्ता सह न मंदिरं जना । अजस्वलः त गच्छेदु गंत्रिकक्षे त गर्भिणीं”॥ अन्यत्र त-

“ सार्वत्रिका सूतिका वाऽपि भव्यानुभव्योत्तुका । सद्यः शुद्धिमवाप्नोति भर्तुः पापापहारिणी ॥

१५ “बालापत्या तु या नारी सूतिका वा रजस्वला । यर्वासामपि च स्त्रीणामेष साधारणो विधिः॥”
इति गर्भिण्या निषेध एव । बालापत्यार्द्दनां विकृत्य इत्याहुः । पृथक्त्रितिविषयमित्यन्ये । तत्
कृपोतास्थ्यानव्याजेन इर्ष्यति । यातः ।

“पतिव्रता संप्रदीप्तं प्रविवेश हुताशनम् । ततश्चित्रांगधरं भर्तौर्य साऽन्वयत” ॥

“ततः स्वर्गं गतः पक्षी भार्यया सह संगतः । कर्मणा पूजितस्तत्र रमे च सह भार्यया” ॥ इति ॥

२० ननु ब्राह्मण्या अनुगमननिषेधोऽसि स्मर्यते । तत्र पैठीनसिः—

“सृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरेषां तु वर्णानां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः” ॥

विराट—

“अनुवर्त्तत जीवितं नानुयायान्मृतं पतिम् । जीव्य भर्तुहिंतं कुर्यान्मरणादात्मधातकी”॥

अंगिराः—

^{३५} “या स्त्री ब्राह्मणजातीया सूतं पतिमनुवर्जेत् । मा स्वर्गमात्मधानेन नात्माने न पति वयेत्” ॥

व्याप्रपतिः -

“न ब्रियेत् सर्वं भर्त्ता ब्राह्मणी शोकमोहिता । प्रब्रजयार्गतिमाप्नोति मरणादात्मघातकी”॥इति ॥

एवमादीन वचनानि पृथक्चित्यधिरहणविषयाणि इति विज्ञानेष्वरीये (पृ. २४ पं. १८-२९)

माधवीयस्मृतिरत्नादिषु व्यवस्थापितानि । अत एवोशक्ताः ॥

३० “पृथक्कचिति समारुद्ध्य न विप्रां गंतुर्महति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः”॥इति ।

यत्त्वपराके—

“देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्यम् । निधायोरसि सश्रद्धा प्रविशेज्ञातवेदसम् ॥

“दयितं याऽन्यदेशस्थं मृतं श्रुत्वा पतिव्रता । समारोहति दीपेऽग्नौ तस्याः शक्तिं निबोधत ॥

“यदि प्रविष्टो नरकं बद्धः यात्रौः सुदारुणैः । संप्राप्तो यातनास्थानं गृहीतो यमकिंकरैः ।

३५ “तिष्ठते निवशो दीनो वेष्ट्यमानः स्वर्कर्मभिः ॥

“ व्यालग्राही यथा सर्पे विलादगृह्णात्यशंकितः । सा तं भर्तारमादाय दिवं याति सती च या ॥
“सा भर्तुपरमा स्वर्गे स्तूयमानाऽप्सरोगणैः । कीडते पतिना सार्वं यावदिंद्राश्वतुर्दश” ॥
एतत्पृथक्चितिमरणं ब्राह्मणव्यातिरिक्तविषयम् । यत्तु “ तस्मादुह न पुराषुयः स्वर्ग-
कामी प्रेयादिति ” श्रुतिविरोधादनुगमनमयुक्तमिति तच्च “ न स्वर्गकाम्यायुयः प्राङ् न
प्रेयादिति ” स्वर्गफलोद्देशेनायुषः प्रागायुर्व्ययो न कर्त्तव्यः मोक्षार्थिना । यस्नादायुषः शेषे ५
सति नित्यनैमित्तिककर्मानुष्टानेन क्षपितांतःकरणकलंकस्य श्रवणमनननिदिध्यासनसंपत्तौ
सत्यामात्मज्ञानेन नित्यनिरतिशयानंदव्रह्मप्राप्तिलक्षणमोक्षसंभवस्तस्मादनित्याल्पस्वर्गार्थनायु-
र्व्ययो न कर्त्तव्यमित्यर्थः । अतश्च मोक्षमनिच्छेत्या स्वर्गार्थिन्या अनुगमनं द्युक्तं इतीतर-
काम्यानुष्टानवदिति ” विज्ञानेश्वरः (पृ. २४) । इदं चानुमरणं पतिव्रतयाऽनुष्टिनमुक्तरीत्या
दंपत्योरुभयोः श्रेयो हेतुः । पापीयस्यानुष्टिं चेत्पापक्षयेहेतुर्भवते । तथा च व्यासशातातप्ते— १०

“ अवमत्य च या पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तते याश्च सततं भर्तृगां प्रतिकूलतः ॥

“ भर्त्रानुमरणं काले याः कुर्वते तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्यान्मोहात्सर्वाः पूता भवत्युत ॥

“ आदिप्रभृति या साध्वी भर्तुः प्रियपरायणा । ऊर्ध्वं गच्छाते सा तत्र भर्त्रानुमरणं गता” ॥ इति ।

पुराणसारे— ब्राह्मणीं प्रति नारदः—

“ पापं यदि कृतं भद्रे परपूरुषसेवनात् । तथाऽन्यस्यापि पापस्य नाशो वन्हिप्रवेशनात् ॥ १५

“ पतिव्रता धर्मपत्नी भर्तुशुश्रूषणे रता । याऽनुगच्छति भर्त्रा सा स्वर्गं यात उभौ ध्रुवम् ” ॥ इति ।

गूढव्यभिचारिणीं प्रत्याह याज्ञवल्क्यः (आ. ७०)—

“ हताधिकारां मलिनां पिंडमात्रोपजीविनीम् । परिभूतामधःशथां वासयेद्यभिचारिणीम् ” ॥

पिंडमात्रजीविनीं प्राणयात्रामात्रभोजनमधःशय्यामास्तरणाऽविहीनस्थलशायिनीं परिभूतां
धिकारभर्त्सनकुत्सना वेश्मन्येव वासयेत् । मनुः (५।१३०)— २०

“ अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिलंबयेत् । सेह निंशामवाप्नोति परलोकाद्विहीयते ॥

“व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंयताम् । सुगाल्योनिं प्राप्नोति परोगैश्च पीडयते ॥ (१६३)

“ पतिं हित्वाऽपकृष्टं स्वमुक्तुष्टं योपसेवते । निंयैव लोके भवति परपूर्वेति चोच्यते ॥ (१६२)

“नान्योत्पन्ना प्रजा स्त्रीह नान्यस्यान्यपरियहः । नाद्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्दर्तोपदिश्यते” ॥ (१६१)

श्रुतिर्थपि— “तस्मान्नैका द्वौ पती विंदते” ॥ इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ७२)— २५

“ व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गम्भीर्त्यागो विधीयते । गर्भमर्तुवधादौ च तथा महाति पातके ” ॥

ऋतादृतौ शुद्धिरित्येतन्मानसव्यभिचाराभिप्रायम् । “रजसा स्त्री मनोदुष्टा” इत्युक्त्वात् ‘गर्भे
त्याग’ इति शूद्रकृते गर्भे त्यागः ।

“ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजाता विशुद्धयांति प्रायश्चित्तेन नेतराः” ॥

इति मनुस्मरणात् । तथा गर्भवधे भर्तुवधे महापातके च आदिग्रहणाच्छ्यादिगमने १०
च त्यागः ।

“ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या । पतिद्वाँ च विशेषेण जुंगितोपगता च या” ॥ इति ।
जुंगितः प्रतिलोमजः । प्रतिलोमसांकर्यं त्यागश्च उपभोगधर्मकार्ययोः । न तु सर्वथा तस्या ‘विप्रदृष्टां
स्त्रियं भर्ता निंहृथ्यादेकवेशमनि” इति नियमात् । उदानाः— “व्यभिचारिणीं भार्या कुवेलपिंड-
परिभूतां निवृत्ताधिकारं चाद्रायणप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं चाचारयेत्” इति ।

याह्ववल्क्यः—“ यत्पुंसां परदारेषु तच्चैनां चारयेद् ब्रतम् ” इति । भृगुः—

“ अशीतिर्यस्य वर्षणि ब्रालो वा उप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हति स्त्रियो ध्याधित एव च ॥ ” इति ।

मनुः (११।१८९)—“ कृतनिर्णेजनां चैतां न जुगुप्सेत कर्हिचित् ।

“ सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गंधर्वश्च शुभां गिरम् ॥ ” “ पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः ॥ ” इति ।

- ५ कृतनिर्णेजनां चैतां कृतप्रायश्चित्तां परिणयनात्पूर्वं सोमगंधर्वाग्नयः स्त्रियो यथाक्रमं तासां शौचमधुरवचनसर्वमेध्यत्वादीनि दक्षवंतस्तस्मात्स्वियः सर्वत्र स्पर्शनालिंगनादिषु मेध्यकरा इत्यर्थः । यस्त्वंतेरपौ निमित्तं दारान्परित्यजति या च भर्तारं परित्यजति । तयोर्निष्कृतिमाहापस्तं वः (१।२।८।१९-२)—“ दारव्यतिक्रमी खराजिनं बहिर्लोमं परिधाय ” दारव्यतिक्रमिणे भिक्षाम् इति सप्ताग्नाराणि चरेत्सा ब्रूत्तिः षण्मासान् । स्त्रियास्तु भर्तृव्यतिक्रमे • कृच्छ्रद्वादशरात्राभ्यासस्तावंतं कालम् इति । इति स्त्रीधर्मः ॥

गृहस्थधर्मानाह इक्षः— (३।१-१३)

“ विधा नव गृहस्थस्य ईषद्वानानि वै नव । नव कर्माणि तस्यैव विकर्माणि तथा नव ॥

“ प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाशानि पुनर्नव । सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥

“ अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा । नवका नवनिर्दिष्टा गृहस्थोन्नातिकारकाः ॥

५ “ विधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहबागते । मनश्चक्षुर्मुखं वाक्यं सौष्ठुद्यं दद्याच्चतुष्टयम् ॥

“ अभ्युत्थानमिहागच्छ पूर्ववादः प्रियंवदः । उपासनमनुवज्या कार्याण्येतानि यत्नतः ॥

“ ईषद्वानानि चान्यानि भूम्युदकं तृणानि च । पादशौचं तथा स्नानमासनं शयनं तथा ॥

“ किञ्चिद्देयं यथाशक्त्या नास्यानश्चन्तु वसेत् । स जलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥

“ संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् । वैश्वदेवे क्षणातिथ्यमुद्घृत्यापि स्वशक्तिः ॥

• “ पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्त्रिनाम् । गुरुमातृपितृणां च संविभागो यथार्थतः ॥

“ एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः । अनृतं परदारश्च तथा भक्ष्यस्य भक्षणम् ॥

“ अगम्यागमनापेयपानं स्नेयं च हिंसनम् । अश्रौतकर्मचरणं मैत्रधर्मबहिष्कृतम् ॥

“ नवेतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥

“ पैशून्यमनृतं मायां कामं क्रोधं तथा प्रियम् । द्वेषं संगं परद्रोहं विकर्माणि विवर्जयेत् ॥

५ “ नृत्यं गीतं कृषिः-सेवा वाणिज्यं लवणं क्रयः । मृतकर्मयुधीयं च न प्रशस्तानि कर्मसु ॥

“ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुनभेषजम् । आयं दानावमानं च नव गोप्यानि सर्वदा ॥

“ प्रायोऽयमृणशुद्धिश्च दायभागश्च विक्रयः । कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् ॥

“ मातपित्रोर्मुरोर्मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथविशेषेष्यो दत्तं तु सफलं भवेत् ॥

“ धूर्ने दंदिनि मञ्जे च कुवैद्ये कितवे शउ । चातुर्चारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥

० “ सामान्यं याचितं न्यासमाधिदरांश्च तद्वन्मै । भयदानं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति ॥

“ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा । यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥

“ नवकस्य च वेत्तारमनुष्टानः परं द्विजैः । इह लोके परत्रापि श्रीश्वैनं न विमुचति ” ॥

अथ गाहस्थ्यप्रशंसा ।

तत्र मनुः (६।८९)—

१ क्ष-सव्यतानि नैवेव च । २ सुधा इति मुद्रितपाठः । ३ क्ष-द्ययानि । ४ क्ष-दृध्नम् ।

५ क्ष-परम् ।

“ सर्वेषामेव चैतेषां वेदश्रुतिविदानतः । गृहस्थ उच्यते शेषः स व्रीनेतान्विभर्ति हि ॥ ॥
वेदश्रुतिविदानतः वेदश्रुत्या प्रत्यक्षेण विवानतः । वैदिकानामाधानादीनां कर्मणां गृहस्थमधि-
कृत्य विवानस्य प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वादित्यर्थः । स एव (३।९०)—

“ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥

“ संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुद्दन् । नियतो वेदमध्यस्यन्पुत्रेश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ (९५) ५

“ पुन्नास्त्रो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु सः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥

“ एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्ये परमोऽसृहः । संन्यासेनापादन्त्येनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ (९६)

अत्र संन्यासः काम्यकर्मत्यागः । तथा चोक्तं भगवद्वीतासु (१८।२)—

“ काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवथो विदुः । नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥ (१८।७)

“ यज्ञोदानं तपश्चैव न त्याजं कार्यमेव तद् । यज्ञोदानं तपश्चैव यावतानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५) १:

“ एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थं निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ (६)

“ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः । लिङ्घते न स पापेन पद्मपत्रमिवाभसा ॥ (५।१०)

“ कायेन मनसा बुध्वा केवलैरिद्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वा ॥ ५।११ ॥

“ युक्तः कर्मकलं त्यक्त्वा ग्रांतिमाप्नोति नैषिकीम् । अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निवध्यते ” ॥ इति।

बृक्षः (५।१२)--

“ गृहस्थो हि क्रियायुक्तो न गृहेण गृही भवेत् । न चापि पुत्रदाराद्यैः स्वकर्मपरिवर्जितः ॥

“ देवश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते । गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥

“ यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जंतवः । तथा गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥

“ चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते । सीदमानेन तेनेह सीदंत्यन्येऽपि ते त्रयः ॥

“ मूलप्राणो भवेत्सकंदः स्कंधाच्छाखाः सपट्टवाः । मूलैर्नैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ २०

“ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ” ॥ राजेति शेषः

“ राजा चान्यैष्विभिः पूज्या रक्षणीयश्च सर्वदा ।

“ दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता । एते यस्य गुणाः संति गृहस्थो मुख्य उच्यते ” ॥

ब्यासः —

“ नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्वित्यं यज्ञोपवीतवान् । सत्यवादी जितकोष्ठो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २५

“ संध्यास्नानरतो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः । अनयूर्युद्दिदृतिं गृहस्थः प्रत्यवर्धते ॥

“ वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः । सावित्रीजप्यनिरतः श्राद्धकुन्मुच्यते गृही ॥

“ मातापित्रोहिते युक्तो गोत्राक्षणहिते रतः । यज्ञवा च देवभक्तश्च ब्रह्मलोके महीयते ॥

“ त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्पेत्सततं सुरान् ॥

“ विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः । गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥ ३०

“ यथाशक्ति चरेत्कर्म निंदितानि च वर्जयेत् । विद्यूय मोहकलिङ्गं लब्ध्वा योगमनुक्तमम् ॥

“ गृहस्थो मुच्यते वंधानात्र कार्या विचारणा ” । इति । पराशरः—

“ निवापेन पितृनर्चन्यज्ञैर्वांस्तथातिथीन् । अन्नैर्मुनीश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥

“ बलिकर्मणां च भूतानि वात्सल्येनासिलं जगत् । प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितात् ॥

“ भिक्षाभुजस्तु ये केचित्परिवाह्वान्वचारणः । तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठंते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥ ३५

“यस्तु सम्यक्करोत्येतं गृहस्थः परमं विधिम् । स्वकर्मवंधमुक्तोऽसौ लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्”॥इति ।
थाङ्गवल्क्यः (प्रा. १९०-१९३)—

“वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः । श्राद्धोपवासस्वातंश्चमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥

“स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु । द्रष्टव्यस्त्वथ मंतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥

५ “न एवमेनं विद्यन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः । उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥

“क्रमात्ते संभवंत्यर्चिरहः शुक्रं तथोत्तरम् । अयनं देवलोकं च सवितारं सवैद्युतम् ॥

“ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानवो ब्रह्मलौकिकान् । करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ॥

“यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो नराः । धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥ (१९५)

“पितृलोकं चंद्रमसं वायुं वृत्तिं जलं महीम् । क्रमात्ते संभवंतीह पुनरेव वजंति च ॥ (१९६)

१० “न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥(२०५)”

इति । सर्वेषामाश्रमिणामात्मसाक्षात्कारे सति तत्प्रातिरूपासकानायार्चिरादिगमनद्वाग तत्प्राप्तिः । कान्यकर्मनुष्टायिनां तु धूमादिमार्गेण स्वर्गवासिः । कर्मक्षये पुनरावृत्तिः । न केवलं परिवाज एव मुक्तिः किंतु कर्मिणस्तत्त्वज्ञाननिष्ठस्य गृहस्थस्यापीत्यर्थः । श्रूयते च—“ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति तत्वं इत्थं विद्युर्ये चेवेऽस्ये श्रद्धातप इत्युपासते तेऽर्चिष-१५ मभिसंभवंत्यर्चिषो हरेत आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुद्दिति भासास्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यप्रादित्याच्चन्द्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनात्मब्रह्मगमयत्येष देवयानः पंथा इत्यथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूमभिसंभवंति धूमाद्रात्रीं रात्रेरपरपक्षप्रक्षायान् षड्दक्षिणोति मासांस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवंति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तदेवानामन्नं तदेवा भक्षयन्ति २० तस्मिन्यावत्संपातमुवित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निर्वर्तते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुभूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वा भूत्वा भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिभवनस्पतयस्तिलमाघा इति जायन्ते इतो वै खलु तांनिष्प्रपतनं यो यो ह्यन्नमत्ति यो यो रेतः सिंचति तद्वय एव भवति तद्वय इह रमणीयचरणाभ्याशेन ह रमणीयां योनिमापद्यरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा अथ य इह कपूयचरणाभ्याशो हयन्ते कपूयां योनिं २५ मापद्यरन्ब्राह्मणयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वेति । उपासकाः क्रमादग्न्याद्यभिमानिदेवतास्थानेषु मुक्तिमार्गभृतेषु विश्रम्य तैः प्रस्थापिताः परं पदं प्राप्नुवंति” । आर्चिर्वन्हिर्विद्युत्तेजः । ये पुनार्बहिर्तैर्यज्ञादिभिः स्वर्गफलभोक्तारः क्रमाद्वूमादिचंद्रपर्यंतपदार्थभिमानिर्देवताः प्राप्त्य पुनरेवाकाशादिद्वागेण शुक्रत्वमवाप्य संसारिणो योनिं वजंतीत्यर्थः । मनुः (२१९)—

“श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्ति भानवः । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्” ॥ इति ।

३० भगवानपि—

“वर्णश्रिमविधिं क्रृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः । तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्धवा याति शिवं पदम्”॥इति । बोधायनः (२.२१)—“नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलानवर्जी ॥

“क्रतो च गच्छन्त्रिपित्रच जुञ्हन्नब्राह्मणश्चयवते ब्रह्मलोकात् ॥

“आयुषा तपसा युक्तः स्वाध्यायेज्याप्रायणः प्रजामुत्पादयुक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेऽद्विषयः॥(२.११३)

“स्वाध्यायेन ऋषीन् पूज्या सोमेन च पुरंदरम् । प्रजया च पितृनपूर्वनिनृणो दिवि मोदते ॥ (२९४)

“पुत्रेण लोकान्जयति पौत्रेणानंत्यमश्वते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिगोहयेत्” ॥ इति ॥ (२९५)

विज्ञायते च (२९७-११)— “जायमनो वै ब्राह्मणः त्रिभिः क्षणवा जायते पितृभ्य इत्येव-
मृणसंयोगवेदो दर्शयति । वंधमृणमोक्षं च प्रजायां चायत्तं पितृणां चानुकर्षणं प्रजायां दर्शयति ।
अनुत्सन्धः प्रजावान्भवति यावदेनं प्रजासुगृह्णते तावदेवाक्षय्यान् लोकाङ्गनयति सत्युत्रमुत्पाद्य ॥
आत्मानं तारयति सप्तवरान् सप्तपूर्वान् षडन्यानान् सप्तमान् सत्पुत्रमधिगच्छानस्तारयत्येन सः
भयात् तस्मात्प्रजासंतानमुत्पाद्य फलमवाप्नोति तस्माद्यत्नवान्प्रजामुत्पाद्येऽत्मना फललाभाय
तस्मात्पुत्रं चोत्पादात्मानमेवोत्पादयेत्” ॥ इति ॥

विज्ञायते—“आत्मा वै पुत्र नामासीत्येवं द्वितीय आत्मा जीवता द्रष्टव्यो यः पुत्रमुपादयति” इति ॥
बोधायनः (२३२९)—“ऐकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजनन्वादितेरेषाम्” इति ॥ १९

गौतमोऽपि (३२)—“तेषां गृहस्थो यो निरप्रजनन्वादितेरेषाम्” इति । ऐकाश्रम्यं
चाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्वार्हस्थ्यस्येति च ॥ (३२५) । तेषां चतुर्णामाश्रमाणां गृहस्थो
योनिरुत्पत्तिस्थानम् गृहस्थेनैवोत्पादिताश्चतुर्भिराश्रमैरधिक्रियंते नेतरसंतषामप्रजनन्वान् ।
शास्त्रेण प्रजोत्पादनस्य निषिद्धत्वादतस्तैरतिकांतनिषेधैरुत्पादिता अपि आश्रमेष्वनाधिकाग्नि-
अंद्वालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसास्तेषां जातापत्यानि चंडालैः सह वासयेत् इति ॥
शातातपस्मरणात् । ऐकाश्रममिति सर्वेषु वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुण्याणिष्ठितिहासेषु गृहस्था एवाग्नि-
होत्रिणः प्राचुर्यं विधीयन्ते स्तूयन्ते च । ततो गार्हस्थ्यस्य प्रत्यक्षविधानात्स एवेक आश्रमः । इतरे
तु तत्राशक्तानां विधीयन्ते इति बहव आचार्या मन्यन्ते । तथा च गीता (३२०)

“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः” इति ।

आपस्तंबोऽपि (२९२३।१०-१२;२९२४।१-८)—“त्रैविद्यवृद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति ॥
निष्ठा । तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपश्वाज्यपयः क्षपालपत्नीसंबंधान्युच्चैर्नीचैः कार्यमिति तैर्विरुद्ध-
आचारोऽप्रमाणमिति मन्यन्ते । यन्तु स्मशानमुच्यते नानाकर्मणांमिषोऽते पुरुषसंस्कारो विधीयते ।
ततः परमनन्त्यं फलं स्वर्गशब्दः श्रूयते । अथाप्यस्य प्रजातिमृतमान्नाय आह । प्रजामनु-
प्रजायसे तदु ते मर्त्यमृतमिति । अथापि स एवायं विरुद्धः पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते दृश्यते-
ऽपि च सारूप्यं देहत्वमेवान्यत् । शिष्टेषु कर्मसु वर्तमानाः पूर्वेषां सांपरायेणाकीर्तिं स्वर्गं च ॥ २५
वर्धयन्त्येवमवरोवरः परेषामा भूतसंप्लवान्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गं वीजार्थी भवतीति भविष्यत्पुराणे—
“अथापि प्रजापतेर्वचनम् त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं अद्वां तपो यज्ञमनुप्रदानम् । एतानि
कुर्वते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसते अन्यत् प्रशंसन्निति” ।

अयमर्थः । व्यवयवा विद्या त्रयो वेदाः । तान्येव पाठतश्चार्थतश्च विंदति ते त्रैविद्यास्ते
पक्षज्ञानास्त्रैविद्यवृद्धास्तेषां वेदा एव प्रमाणमतींद्रियेऽर्थ इति निष्ठा निर्णयः । यथाह भगवान् ॥ ३०
जैमिनिः—(११) “चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः” इति । ततश्च तत्र वेदेषु यानि कर्माणि श्रूयन्ते
व्रीह्यादिसंघान्युच्चर्क्षक्त्वा क्रियते उपांशुयजुषेत्यवंप्रकाराणि तैर्विरुद्ध आचारः प्रमाणं न
भवतीति ते मन्यन्ते । एतदुक्तं भवति । सर्वेषु वेदेषु सर्वासु शास्त्रासु चाग्निहोत्रादीनि कर्मण्येव
तात्पर्यतो विधीयन्ते । अतो गार्हस्थ्यमेव श्रेष्ठं यदि वेदाः प्रमाणमिति । यन्तु गृहस्थानां श्वशानं

श्रूयते इमशानानि भेजिर् इति स एष नानाकर्मणामग्निहोत्रादीनामते पितृमेधास्यपुरुषसंस्कारो
विधीयते । न तु पिशाचा भूत्वा इमशानमेव सेवत इति । कुत इत्यत आह ततः परम इति ।
इमशानकर्मणोऽनंतरमपरिमितं स्वर्गशब्दवाच्यं फलं श्रूयते 'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽजसा
स्वर्गं लोकमेति' । अथापि अपि चास्य युहस्थस्य प्रजातिप्रजासंतानममृतममरणमान्नायो वेद
आह 'प्रजामनुप्रजायस' इति । हे मर्त्य मरणधर्मन्प्रजां जायमानामनु त्वं प्रजायसे
प्रजास्तपेण जायते तदेव ते अमृतममरणमिति न त्वं म्रियसे यतस्त्वं प्रजास्तपेण
वर्तसे । उपपञ्चं चैतदित्याह 'अथापि स एवायम्' इति । अपि च स एवायं
पृथग्विरुद्धः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते । स एव द्विधा भूत इति लक्ष्यते । दृश्यते हि सारूप्यं च
द्वयोर्देहमात्रं तु भिन्नदेहत्वमिति । स्वार्थिकस्त्वप्रत्ययः । ते पुत्राः शिष्टेषु चोदितेषु कर्म-
स्ववस्थिताः पूर्वेषां पितृपितामहादीनां सांपरायेण परलोकेन संबद्धानां कीर्तिं स्वर्गं च वर्ध-
यन्ति । एवमवरोवः परेषां कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयति । भूतसंपूर्वो महाभूतप्रलयः । अतस्मात्ते
पुत्रिणः स्वर्गजितो भवन्ति । प्रलयानंतरः सर्गः पुनः सर्गस्तत्र संसारबीजार्थः प्रजा भवन्तीति
भविष्यत्पुराणे पठ्यते । अथापि अपि च गार्हस्थमेव वरिष्ठमित्यत्र प्रजापतेर्वाक्यमपि
भवति । त्रयी विद्यां वेदानामध्ययनं ब्रह्मचर्यमनिषिद्धकाले स्त्रीसंगमनं प्रजाति प्रजोत्पादनं
अनन्द्वामास्तिवयं तप उपवासादि यज्ञमग्निहोत्रादीनि सोमयागांतानि कर्मण्यनुप्रदान-
मतवेदिदानमतानि ये कुर्वते तैरित्सह स्मः । त एवास्माकं सहायाः अन्यदाश्रमांतरं प्रशंसन्पुरुषो
रजः पांसुभूत्वा ध्वंसते नश्यतीति यथैवैते हि शिष्टेषु कर्मसु वर्तमानाः पुत्राः पूर्वेषां कीर्तिं
स्वर्गं च वर्धयन्ति तथा प्रतिषिद्धेषु वर्तमाना अकीर्तिनगकं च वर्धयेत ।

तत्रापि स एव (२२४९—)—“तत्र ये पापकृतस्त एव ध्वंसंति यथा पर्ण वन-
स्पतेर्न परान्हिंसति । नास्यास्मिन्लोके कर्मभिः संबद्धो विद्यते । तथा परस्मिन्कर्मक्लैस्तदेतेन
वेदितव्यम् । प्रजापतेर्वाक्यामिति सर्गोऽयम् । तत्र ये पुण्यकृतसंषां प्रकृतयः परा ज्वलन्त्य
उपलभ्यन्ते स्यात् कर्मावियवनं तपसा वा कश्चित्सशरीरोऽतवंतं लोकं जयति संकल्पसिद्धिश्च
स्यात् न तु तज्ज्येष्यमाश्रमाणाम्” इति ।

“तत्र प्रजासंताने ये पापम्य कर्त्तारस्त एव ध्वंसंति न परान्पित्रादीनिंहंसति यथा पर्ण वनस्पतेः
कीटादिभिर्भिर्षितं तदेव पतति न वनस्पतिं शाखां वा पातयति । तद्वदस्य पित्रादेः पूर्वपुरुषस्या-
स्मिन्लोके पृत्रकृतैः कर्मभिः संवंधां न विद्यते । यथा पुत्रकृतेषु कर्मसु पित्रादेः कर्तृत्वं नास्ति
तथा परस्मिन्लोके कर्मक्लैरपि संवंधां नास्तीत्यर्थः । तत्पापकृत एव ध्वंसन्तीत्येतदर्थस्तप-
मतेन वक्ष्यमाणहेतुना वेदितव्यम् । प्रजापतेर्हिण्यगर्भस्य ऋषीणां च मरीच्यादीना-
मयं सर्गः देवतादिस्तिर्यगतस्त चाध्वस्ता एव स्वं स्वे पदे वर्तते । अत्रोदाहरणमाह ।
१० तत्र ये पुण्यकृतां वसिष्ठादयस्तेषां प्रकृतयः शरीराणि परा उत्कृष्टा ज्वलंत उपलभ्यते
द्विवि यथा सप्तर्षिमंडलम् । श्रूयते च “सुकृतां वा एतानि ज्योतिङ्गषि यन्नक्षत्राणि” इति ।
इदं प्रमाणं न पुत्राणां ध्वंसे पूर्वेषां ध्वंस इति कर्मावियवेन पुण्यकर्मणामेकदेशेन भुक्तशेषेण
तपसा वा तविणे कश्चिदाश्रमांतरवर्तीं सह शरीरेणांतवंतं लोकं जयतीति यत्तत्स्यात्संभवेदपि
संकल्पादेव सिद्धिश्च स्यात् तत्राश्रमांतरस्वं ज्यैष्टक्षयं कारणमित्यर्थः । अनेन गार्हस्थ्यप्रशंसा
कृतोति द्रष्टव्यम् । यतः स एवाह “तेष यथोपदेशाप्रदज्ञो चर्चात् लोकं ——” ॥

तेष्वाश्रमेषु सर्वेषु यथाशास्त्रमव्ययः समाहितमना वर्तमानः क्षमममयं पदं गच्छतीत्यथः ॥
वसिष्ठः—

“ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ” ॥ इति ।
इति गृहस्थधर्मा: । अथ वानप्रस्थधर्मा: । मनुः (३।१)—

“ एवं गृहाश्रमे स्थिरत्वा विधिवत्सनातको द्विजः । वने वसेन् नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ ५

“ संत्यज्य आम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छद्भूमि । पुत्रेषु भार्या निश्चिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ (३)

“ द्वितीयमायुषो भागमुषित्वा तु गृहे द्विजः । तृतीयमायुषो भागं गृहमेर्दी वने वसेत् ॥

“ उत्पाद्य धर्मतः पुत्रानिष्टा यज्ञैश्च शक्तिः । दृष्ट्वापत्यस्य चायत्यं ब्राह्मणोऽगण्यमाविशेषत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (प्रा. ४५)—

“ सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वाऽनुगतो वनम् । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साम्राज्यः सौपासनो वजेत् ” ॥ १०
संवर्त्तः—

“ गच्छेदेवं वनं प्राज्ञः सभार्यो हेक एव वा । गृहीत्वा चाग्निहोत्रं तु होमं तत्र न हापयेत् ॥

“ कुर्याच्चरुपुरोडाशा वन्यैर्वा मेध्यसेविभिः । भिक्षां तु भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥

“ वेदविद्याव्रतस्थांश्च श्रोत्रियान्वेदपारगान् । योजयेद्द्रव्यकद्येषु विपरीतास्तु दर्जयेत् ॥

“ गायत्रीमात्रसारोऽपि वरो विप्रः सुयंत्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वर्द्धा सर्वशी सर्वविक्रीया ॥ १५

“ कुर्याद्दृश्यननं नित्यमग्निहोत्रपगयणः । इष्टीः पर्वाग्नायणीयाः प्रकुर्यात्प्रतिपर्वत् ॥ ”

हारीतः—

“ गृहस्थः पुत्रपौत्रादि दृष्ट्वा पलितमात्मनः । भार्या पुत्रेषु संस्थाप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥

“ जटाश्च विभूयान्नित्यं नखरोमाणि धारयेत् । अग्निहोत्रं च जुहुयात्पञ्चयज्ञान् समाचरेत् ॥

“ वन्याचैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा । वीतरंगो भवेन्नित्यं स्नात्वा त्रिष्वणं ज्ञाचिः ॥ २०

“ सर्वभूतानुकंपी स्यात्प्रतिग्रहविवर्जितः ” ॥

मनुः (६।८-२३)—

“ वसीत चर्मचीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा । जटाश्च विभूयान्नित्यं समश्रुलोमनस्वानि च ॥

“ यद्दक्षः स्यात्ततो दद्याद्विलिं भिक्षां च शक्तिः । अम्मूलफलमक्षाभिर्चयेदाश्रमागतम् ॥

“ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादांतो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकंपनः ॥ २५

“ वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि । दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥

“ कक्षेष्ट्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् । तुरायणं च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च ” ॥

ऋक्षेष्टिः नक्षत्रेष्टिः । तुरायणं संवत्सरसाध्यः क्रतुविशेषः । दाक्षायणं दश विकृतिः । क्रमश-
स्तत्र तत्र काले ।

“ वासंतशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्तैः स्वयमाहतैः । पुरोडाशांश्चरुं चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ३०

“ देवताभ्यश्च तद्वत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः । शेषमात्मनि युंजीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥

“ स्थलजोदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च । मेध्यवृक्षोऽद्वानन्यान् लेहांश्च फलसंभवान् ॥

“ त्यजेदाश्वयुजे मासे मुन्यन्तं पूर्वसंचितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥

“ न फालकृष्टमश्रीयादुत्कृष्टमपि केनचित् । न ग्रामजातान्यार्ताऽपि पुष्पाणि च फलानि च ॥

“अग्निपकाशनो वा स्यात्कालपक्षुगेव वा । अश्मकुद्गो भवेद्वाऽपि दंतोलूखलिकोऽपि वा” ॥
फलादीन्यश्मनि निपीड्य ये भक्षयन्ति ते अश्मकुद्गाः । दंतैरेवोलूखलकार्यं ये कुर्वति ते
दंतोलूखलिकाः ।

“सद्यः प्रक्षालिको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा । षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा” ॥
५ प्रतिदिनं जीवनं संपाद्यं भुक्त्वा अश्वस्तनिको हस्तप्रक्षालनं यः करोति स सद्यः प्रक्षालिकः ।

“नक्तं वाऽन्नं समश्चीयाद्विवा वाऽहृत्य शक्तिः । चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद्वा षष्ठाष्टमाशनः ॥

“चांद्रायणविधानैर्वा शूद्धे शूद्धे च वर्तयेत् । पक्षांतयोर्वाऽप्यश्चीयाद्यवाग्गू कथितां सङ्खृत् ॥

“पुष्पमूलफलैर्वाऽपि कैवलैर्वर्तयेत्सदा । कालपक्षैः स्वयं शीर्णिर्वैसानसमते स्थितः ॥

विखनसा ग्रोक्तं तंत्रं वैखानसमतय् । तत्र हि वानप्रस्थधर्मस्य पूर्ण उपदेशः ।

१० “भूमौ विपरिवर्त्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेष्टुपयन्नपः ॥

विपरिवर्त्तेत शयीत । प्रपदैः पादांगुल्यायैः । अप उपयन्त्र त्रिष्वणस्नायी ।

“ग्रीष्मे पंचतपस्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशकः । आर्द्रवासास्तु हेमंते क्रमशो वर्धयंस्तपः” ॥

व्यासः—

“एकपादेन तिष्ठेत्तमरीचीः प्रपिबेत्तदा । पंचाग्निर्धूमपो वा स्याद्वृष्टपः सोमपोऽथ वा” ॥

१५ “पयः पित्तेच्छुक्लपक्षे शूद्धे पक्षे च गोमयम् । शीर्णिर्पर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ॥

“जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञनविचिंतकः । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं स्वपत्नीं प्रति संश्रयेत् ॥

“यस्तु पत्न्या समं गत्वा भेद्युनं कामतश्चरेत् । तद्वतं तस्य लुप्येत् प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥

“तस्यां यो जायते गर्भं न संस्पृश्यो द्विजातिभिः । न वेदेऽप्यधिकारोऽस्ति तद्वंशे योऽप्यजायते” ॥

विष्णुः (३३६)—

२० “त्रिविदं नरकस्येह द्वारां नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्वयं त्यजेत्” ॥

एवं गृहस्थसमस्य धर्मा उक्ताः ।

अथ भिक्षुसमस्य वानप्रस्थस्य धर्मानाह मनुः (६१२५-३०)—

“अग्निस्वात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि । अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिमूलफलाशनः ॥

“अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः । शरणे त्वममश्वैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥

२५ “तापसेष्वेव विप्रेषु याद्वार्थं भैक्षमाचरेत् । गृहमेघिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥

“ग्रामादाहृत्य वाऽश्चीयादृष्टौ ग्रासान्वने वसन् । प्रतिगृह्य पुरुषैव पाणिना शक्लेन वा” ॥

शक्लेन भिन्नभांडशक्लेन ।

“एतांश्वान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरभ्यसेच्छुद्धये द्विजः” ॥

प्रकारांतरमाह स्त एव (६१३-३२)

३० “अपराजितां वाऽप्यास्थाय व्रंजेद्विशमजिम्हगः । आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः” ॥

अपराजितां प्रागुदीचीश ।

“आसां महर्षिचर्यणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुष्म । वीतशोकोऽभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते” ॥

याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५५)—“वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेदा वर्ष्मसंक्षयात् ”

व्यासः—

“महाप्रस्थानिकं वाऽयं कुर्याद्दनशनं तु वा । अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविद्यै स्मृतः”॥

“ यस्तु सम्यग्मिमाश्रमं जिवं संश्रयत्यशिवपुंजनाशनम् ॥

“ तापहंत्रमलमैश्वरं पदं याति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः” ॥

हारीतः—

“ अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रवजेदुक्तरं दिशम् । आ देहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः” ॥ ५

“ स्मरन्तीद्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥

“ तपो हि योऽसावकगोद्रुतम्यो वने वसन्सत्वसमाधियुक्तः ।

‘ विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं युगणम्’ ॥ इति ।

अयं च वानप्रस्थाश्रमः “ देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमश्वहः ” इति कलौ निषिद्धः ।

इति वानप्रस्थधर्मनिरूपणम् ।

१०

अथ यतिधर्मः ।

तत्र मनुः (दा३३३४)—

“ वनेषु तु विहत्यैवं तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिवजेत् ॥

“ आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोत्वे जितेद्रियः । भिक्षाचलिपरिश्रांतः प्रवजन्प्रेत्य वर्धते” ॥

हुतहोमः कृतसमिदाधानाग्निहोत्रहोमः । भिक्षाचलिपरिश्रांतः । भिक्षाचरणवेश्वदेववलिहरणाभ्यां १५

परिश्रांतः । आश्रमादाश्रमं गत्वा ब्रह्मचार्याश्रमाद्वाऽस्थयं ततो वानप्रस्थाश्रमं गत्वेत्यर्थः । ब्रह्मचर्या गार्हस्थये कृत्वा वानप्रस्थमकृत्वाऽपि संन्यासः कर्तव्यः । नान्यथेत्याह स एव (दा३५-३७)

“ कणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥

“ अधीत्य विधिवदेवान्पुत्राश्वेत्याद्य धर्मतः । इष्टवा च शक्तिं यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥

“ अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथाऽत्मजान् । अनिष्टा चैव यज्ञैस्तु मोक्षमिच्छन्वजत्यधः” ॥ २०

मोक्षं मोक्षसाधनं संन्यासाश्रमम् । अनेन पूर्वोक्तश्वतुराश्रमसमुच्चयपक्षः पाक्षिक इति योतयति ।

तथा च याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५६-५७)—

“ वनाद्गृहाद्वा कृत्वेष्टि सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तद्वेते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥

“ अधीत्वेदो जपकृतपुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्ष मनः कुर्यात् नान्यथा ” ॥

व्यासः—

२५

“ एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत्कमात् ॥

“ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाघेयीमथ वा पुनः । दांतः पक्कघायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्” ॥

संवर्त्तः—

“ उषित्वैवं वने सम्यग्वित्तृष्णः सर्वस्तुषु । चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्वत्तहोमो जितेद्रियः ॥

“ संसेव्य चाश्रमान्सर्वान्जितक्रोधो जितेद्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थवित् द्विजः” ॥ ३०

हारीतः—

“ एवं वनाश्रमे तिष्ठस्तपसा दग्धकिल्बिषः । चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥

“ इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रवजेत्पुनः” ॥

दक्षः—

“ सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रनिषेविताः । यथोक्तकारिणं विप्रं नयंति परमां गतिम् ॥ ३५

“ त्रयाणामानुलोम्यं स्यात्प्रातिलोम्ये न विद्यते । प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः”॥
आपस्तंबोपि (२१२१२)—“ तेषु सर्वेषु यथोपदेशमव्यग्नो वर्तमानः क्षेमं गच्छति ” इति ।

बोधायनस्तु विकल्पमाह (२१०२-७)—“ अत एव ब्रह्मचार्यवान्प्रवजती-
त्येकेषामथ शालीनयायावराणामनपत्यानां विधुरो वा प्रजां स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा सत्पत्या
५ ऊर्ध्वं सन्न्यासमुपदिशंति वानप्रस्थस्य वा कर्मविरामे ” इति ।

गौतमोऽपि (३।१)—“ तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते ” इति । वसिष्ठः—“ चीर्णब्रह्मचर्यो
यमिच्छेत्तमावसेदत् ” इति । चतुर्णामाश्रमाणां मध्ये यमिच्छेत्तत्रैव निष्ठां यायादित्यर्थः ।

उशनाः—

“ आचार्येणाभ्यनुज्ञातश्चतुर्णामेकमाश्रमम् । आविमोक्षद्विरस्य सोऽनुतिष्ठेदथाविधि”॥ इति ।

१० अंगिराः—

“ सन्न्यसेद्ब्रह्मप्रचर्येण सन्न्यसेद्वा गृहादपि । वनादा सन्न्यसेद्वानातुरो वा तु दुःखितः ”॥

यमः—

“ चीर्णवेदवतो विद्वान्त्राहणो मोक्षमाश्रयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु चरेषु स्थावरेषु च ”॥

“ उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः । प्रवजेद्ब्रह्मचर्यात् यदिच्छेत्परमां गतिम् ”॥

१५ “ जातपुत्रो गृहस्थो वा विदितात्मा जितंद्रियः ”॥

कात्यायनः—

“ ब्रह्मचर्याद्गृहाद्वाऽपि वनादा सन्न्यसेद्विजः । पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य मृतपत्नीक एव वा ॥

“ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ वा पुनः । विरक्तः सर्वकामेभ्यः परिव्रज्यां समाश्रयेत् ”॥

विष्णुपुराणेऽभविष्यत्पुराणेऽपि—

२० “ गृहीतविद्यो गुरुवे दत्वा च गुरुदक्षिणाम् । गार्हस्थ्यमिच्छन्मूपाले कुर्याद्वारपरिग्रहम् ॥
“ ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् । वैसानसो वाऽपि भवेत्परिव्राङ्गथवेच्छया ”॥

महाभारतेऽपि—

“ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽपि वा पुनः । य इच्छेत्तमोक्षमादातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत् ”॥ इति ।

आरण्यकोपनिषदि—“ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थो वा लोकाग्निमुदराग्नौ
२५ समागमेयेत् ” इति । जात्रालिश्रुतिस्तु चतुर्णां त्रयाणां द्वयोर्वा समुच्चयमाह—“ ब्रह्मचर्यं
समाप्य गृही भवेत् । गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रवजेयदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव गृहाद्वा
वनादा ” इति । गार्हस्थ्येनेतराश्रमवाध्य गौतमबोधायनाभ्यां दर्शितः (३।३५)—“ ऐकाश्रम्यं
त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थ्यस्य ” इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः (प्रा. पृ. १९९-२००)—“ एषां च समुच्चयविकल्पबाधं पक्षाणां
३० सर्वेषां श्रुतिस्मृतिमूलत्वादिच्छया विकल्पः । अतो यत्कैश्चित्पंडितं मन्यैरुक्तं यावज्जीवमग्निहोत्रं
जुहोतीत्यादिप्रत्यक्षश्रुतिसिद्धगार्हस्थ्येनेतराश्रमवाधः गार्हस्थ्यानाधिकृतपंगवंधादिविषयमाश्रमां-
तरमिति तत्स्वाध्यायाध्ययनवैधुर्यनिबन्धनमित्युपेक्षणीयम् । किं च यथा विष्णुक्रमाज्यावेक्षणा-
द्यक्षमतयाऽधर्मपंगवादीनां श्रौतेष्वनधिकारः तथोदकुंभाहरणभिक्षाचर्याद्यक्षमत्वात्कथमधं पंगवादि-
विषयतयाऽश्रमांतरनिर्वाहः ।

ऋणानि त्रीण्यपकृष्टयेत्यादीनि वचनानि अनपाकृतऋणत्रयस्वगृहस्थस्य प्रवज्याया-
मनधिकार इत्येवंपराणि । यदा तु ब्रह्मचर्यतिद्वजति तदा न प्रजोत्पादनादिनियमः ।
अकृतदारपरिग्रहणस्य तत्रानधिकाराद्वागप्रयुक्त्वाच्च विवाहस्य ।

“ ननु जायमानो वै ब्राह्मणादिभिः० प्रजया पितृभ्य इति । जातमात्रस्यैव प्रजोत्पादना-
दीनि दर्शयति नैवं न हि जातमात्रोऽकृतदारपरिग्रहो यज्ञादिषु अधिक्रियते तस्मादधिकारी ५
जायमानो ब्राह्मणादिर्यज्ञादीननुतिष्ठेदिति तस्यार्थः । अतश्चोपनीतस्य वेदाध्ययनमेवावश्यकं-
कर्मकृतदारपरिग्रहस्य प्रजोत्पादनादीति निवद्यमिति यस्य समुच्चयानुष्ठानसामर्थ्यं नास्ति
तस्यायमाश्रमविकल्पः ॥ इति ॥ स्मृतिचंद्रिकायाम्—

“ अधीत्य विधिवदेवान्पुत्रानुत्पाद धर्मतः ॥” इत्यादीनि वचनानि वस्य एहिकामुष्मिक-
भोगेष्वादावेव वैराग्यं न जायते तद्विषयाणीति स्मृतिरत्मादावभिहितम् । अन्ये त्वद्ययननियोग- १०
निवृत्त्युत्तरकालं यस्य पुरुषस्य यदा वैराग्यं जायते तस्याश्रमिणोऽनाश्रमिणो वा तदैव संन्यास
इति वदन्ति । तथा च जावालश्रुतिः—“ अथ पुनरवती व्रती वा स्नातको वोत्सन्नाश्चिराश्चिर-
नाश्चिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत्तथायदातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत् ” इति ।
बृहस्पतिः—

“ संसारमेव निःसारं द्वृष्टा सारदिवक्षया । प्रवजेदकृतोद्वाहः परं वैराग्यमाश्रितः ॥ ” ॥ १५
पराशरः

“ परिवज्या तु वैराग्यात्कर्तव्या विधुरादिभिः । विधिनैव च कुर्वीत संन्यासमिह बुद्धिमान् ॥ ” ॥
अंगिराः—

“ विरक्तः संन्यसेद्विद्वाननिष्टुऽपि द्विजोत्तमः । प्रकृतुमय शक्तोऽपि जुहोतियजतिक्रियाः ॥

“ अंधः पंगुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद्विजः । सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते ॥ ” २०

“ पतेदेवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति । पुनर्दरक्रियाभावे मृतभार्यः परिवजेत् ” ॥ इति ।
अंधपंग्वोः संन्यासविधानं विरक्तिप्रशंसार्थं न पुनस्तत्प्राप्त्यर्थम् ।

“ आरूढपतितो व्रात्यः कुनखी इयावद्दंतकः । श्वर्यी तथाऽग्निकलो न तु संन्यासमर्हति ” ॥
दक्षस्मरणात् अंगिराः—

“ यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासमिच्छन्ति पतितः स्याद्विपर्यये ” ॥ २५
हारीतः—

“ विरक्तः प्रवजेद्वीमानसंरक्तस्तु गृहे वसेत् । सरागो नरकं याति प्रवजन्हि द्विजाधमः ” ॥

व्यासः—

“ यस्यैतानि सुगुप्तानि जिव्होपस्थोदरं करः । संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥

“ परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि । सर्वेषांविनिर्मुक्तः स भैक्ष्म भोक्तुमर्हति ॥ ” ३०

“ पूजितो वंदितश्चैव सुप्रसन्नो यथा भवेत् । तथा चेत्ताङ्गमानस्तु तदा भवति भैक्षमुक् ” ॥

क्रतुः—

“ अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् । इति भावो भवेद्यस्य तदा भवति भैक्षमुक् ॥

१ खण्ड-रनुत्सन्नाश्रिवा को ।

“ यस्मिन्क्षांतिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम् । आकिंचिन्यमदंभश्च स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥

“ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम् । कर्णणा मनसा वाचा तदा भवति भैक्षमुक् ” ॥
माधवीये पराशरे—

“ परिभोगात्परिच्छेदात्परिपूर्णविलोकनात् । परिपूर्णफलत्वाच्च परिवाजक उच्यते ॥

५ “ परितो ब्रजते नित्यं परं वा ब्रजते पुनः । हित्वा चैवं परं जन्म परिवाजक उच्यते ” ॥

व्यासः

“ प्रवृत्तिलक्षणं कर्म ज्ञानं संन्यासलक्षणम् । तस्माज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेद्दिह बुद्धिमात् ” ॥

मनुः (६।९४)—

“ दशलक्षणं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदांतान्विधिवच्छुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥

१० “धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः । न्हीर्विद्या सत्यमकोधो दशकं धर्मलक्षणम्” ॥(९२)

धृतिः स्वधर्मापरित्यागः । क्षमा अवमानसहत्वम् ॥

दक्षः—“ तस्मात्यक्तकषायेण कर्त्तव्यं दंडधारणम् । इतरस्तु न शक्नोति विषयैश्वाभिभूयते ” ॥

जावालिः—

“ संन्यासनिश्चयं कृत्वा पुनर्न च करोति यः । स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतः षण्मासान्वृत्यनंतरम् ॥

१५ “ संन्यासं पातयेद्दस्तु पतितं न्यासयेत्तु यः । संन्यासविघ्नकर्त्ता च त्रीनेतान्पतितान्विदुः ॥

“ संप्रत्यवसितानां च महापातक्किनां तथा । ब्रात्यानामभिश्वस्तानां संन्यासं नैव कारयेत् ॥

“ व्रतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायत्र्यज्ञितम् । सत्यशौद्धपरित्रयं संन्यासं नैव कारयेत् ” ॥

बृहस्पतिः—

“ अतीतात्र स्मरेद्दोगम् तथाऽनागतानपि । प्राप्तांश्च नाभिनंदेद्यः स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥

२० “अन्तस्थानीन्द्रियाण्यन्तर्बहिष्ठान्विषयान्वहिः । शक्नोति यः तदा कर्तुं स कैवल्याश्रमे वसेत् ” ॥

आतुरसंन्यासविधिः । अंगिराः—

“ उत्पन्ने संकटे घोरे चोरव्याघादिगोचरे । भयभीतस्य संन्यासमंगिरा मुनिरब्दीत् ” ॥

सुमंतुः—

“ आपत्काले तु संन्यासं कर्त्तव्य इति शिष्यते । जर्याऽभिपरीतेन शत्रुभिर्विधितेन च ॥

२५ “आतुराणां च संन्यासे न विविन्नेव च किया । प्रेवमात्रं समुच्चार्यं संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥

“ संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात् सवनेषु त्रिषु क्रमात् । त्रीन्वारांस्तु त्रिलोकात्मा शुभाशुभविशुद्धये ॥

“ यत्किद्वन्द्वकं कर्म कृतमश्चन्तो मया । प्रमादालस्यद्वोषांवत् तत्सर्वं संत्यजाम्यहम् ॥

“ एवं संचित्य भृतेभ्यो दृश्याभयदक्षिणाम् ।

“ पद्भ्यां कराम्यां विरहन्नाहं वाकान्वानसैः । करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः ” ॥

३० संग्रहे—

“आतुराणां संन्यासे संकल्पसावित्रिविवेशनपाणिहोमप्रैषोच्चारणाभयदानानि विहितानि॥” इति ।

विष्णुः

“संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । न तत्क्रतुशतेनापि प्राप्नुं शक्नोति मानवः ” ॥ इति ।

अंगिरा:—

“आतुराणां विजेषोऽस्ति न विदिनेव च किमा । प्रेयसावस्तु संन्यास अतुराणां विदीयते ॥

श्रुतिरपि— “यद्यतुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्देशे” इति ॥

संन्यासफलनिष्पणम् । संन्यासफलम् यद्य—

“ये च संतानजा दोषा ये च स्युः कर्त्तव्यभद्रः । संन्यासस्तान्देहेत्सर्वास्तुयाग्निविकांचनम्” ॥ ५

मनुः (५.१०७)—

“मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी देवेन हुद्ध्यति । रजसा श्री मनो हृषा संन्देशेन द्विजोन्मः ॥

“यो दत्त्वा सर्वाभ्येभ्यः प्रब्रह्मस्यभ्यं गृह्णात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मदादितः ॥ (५.३९)

“यस्मादपीह भूतानां भयं नोत्यवते क्रचित् । तस्य इहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कृतश्चन ॥ (४०)

“यदा भावेन भवति सर्वभवेन निस्तृहः । तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च दात्मतन्म” ॥ (८३) १०

याज्ञवल्क्योऽपि (प्रा. ३२)—

“अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् । शोध्यस्य मृच्छ तोयं च संन्यासोऽथ द्विजन्मनाम्” ॥

पराशरः—

“द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलमेदिनौ । परिवाद् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥

“संन्यस्तं ब्राह्मणं हृषा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मंडलं भित्वा परं स्थानं प्रयास्यति” ॥ १५

व्यासः—

“द्वे रूपे वासुदेवस्य चरं चाचरमेव च । चरं संन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिकम्” ॥

विष्णुः—

“एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते । न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं क्रतुशतैरपि” ॥

दक्षः—

२०

“त्रिंशत्परान् त्रिंशदपरान् त्रिंशच्च परतः परान् । सद्यः संन्यसनादेव नरकाद्वायते पितृन्” ॥

अंगिरा:—

“षष्ठिं कुलान्यतीतानि षष्ठिमागामिकानि च । कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत्” ॥

यमः—

“ज्ञानेन मुच्यते भिक्षुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् । नरकं विषयासंगाद्रयो मार्गास्तपस्त्रिनाम्” ॥ २५

व्यासः—

“दिव्यतेजोमयः श्रीमान्सूर्यचंद्राग्निमंडलम् । भित्वा प्रयाति संन्यासी स्वर्धमप्तिपाहनात्” ॥ इति ।

तथा च श्रुतिः—

“त्याग एव हि सर्वेषां जोक्षसाधनमुक्तम् । त्यजतैव हि तत् ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्षपरं पदम्” ॥ इति ।

“संन्यस्य सर्वकर्माणि सर्वमात्मावदोधनः । हत्वा विद्यां धियेवेयात्तद्विष्णोः परमं पदम्” ॥ इति । च ३० तैत्तिरीयके श्रूयते (नारायणोपनिषद्)

“न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनके अमृतत्वमानशुः” इति । आधानादिकर्मणा प्रजया

धनेन च अमृतत्वमपवर्गं नानशुर्नाश्वुवते किंतु त्यागेनव एक इति अधिकारिदौर्लभ्यं दर्शयति ।

पूर्वमधीतवेदा अधिगतसांगवेदार्था अनुष्ठितयथोदितसकलवर्मणो विशुद्धांतःकरणा जितेदिया

अनंतरं संत्यक्तकर्मणो वेदांतवाक्यश्रवणादिजनितब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानाः केचिदेवामृतत्वमश्ववंत इत्यर्थः । तथा च तत्रैव श्रूयते—

“वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ।

ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले परामृतात्परमिमुच्यन्ति सर्वे” ॥ इति ।

५ ब्रह्मणो लोके दर्शने सति परांतकाले पश्चिमजन्मसमाप्तिकाले परामृतात्परमुत्कृष्टं तदेवा-मृतमरणधर्मं ब्रह्म तस्मादनुभवगोचराद्ब्रह्मणो हेतोः परिमुच्यन्तं इत्यर्थः ।

बृहदारण्यकेऽपि—“एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छन्तः प्रवजन्ति” । इति । प्रकृतमात्मानमेव लोकमिच्छन्तः प्रवजेयुरित्यर्थः ।

जावालश्चतौ—

१० “अथ परिवाङ्गवर्णवासो मुङ्डोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोही भैश्चमाणो ब्रह्मभूयाय भवति” इति ।

“शतं कुलानां पुरतो बभूव तथा पराणां च शतं समग्रम् ।

एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विप्राः ॥

“संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानं वैराग्यात्प्रकृतौ लयः । ज्ञानात्कैवल्यमाप्नोति तिस्रस्ता गतयः स्मृताः” ॥ इति । अस्मिंश्चाश्रमे ब्राह्मणस्यैवाधिकारः ।

१५ ‘आत्मन्यमीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेद्गृहात्’ । ‘एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः’ ॥

इति उपक्रमोपसंहाराभ्यां भनुना ब्रह्मणस्यैवाधिकारप्रतिपादनात् । “ब्राह्मणाः प्रवजन्ति” ॥ इति श्रुतेश्चायजन्मन एवाधिकारो न द्विजातिमात्रस्येति विज्ञानेश्वरः (पृ. १९९ पं. २४-२६)

अत्रिरपि—

“न तावन्मुच्यते दुःखान्जन्ममृत्योश्च बंधनात् । यावन्न धारयेद्विप्रो विष्णवं लिंगमाद्रात् ॥

२० “मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिंगधारिणम् । बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते” ॥ इति । वैष्णवलिंगधारणं संन्यासः । द्यासः—

“चत्वार आश्रमश्वेते ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिः । गार्हस्थं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थत्रयस्मृताः ॥

“क्षत्रियस्यापि कथिता य आचारा द्विजस्य हि । ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थयमाश्रमद्वितयं विशः ॥

“गार्हस्थयमुदितं चैकं शूदस्य परिकीर्तिभ्व” ॥ इति । अन्ये तु “त्रयाणां वर्णानां चत्वार आश्रमा

२५ इति” सूक्ष्मकारादिवचनाद्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः । द्यासोऽपि—

“ऋणत्रयमपाकृत्य निर्ममो निरहंडुतिः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वाऽथ वजेद्गृहात्” ॥ इति ।

द्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः । क्षत्रियवैश्ययोः प्रवज्यानिषेधवचनानि काषायदंडनिषेधपराणीति स्मृतिरत्नेऽप्यभिहितम् । द्यासः—

“अद्याधेयं गवालंसं संन्यासं पलपेतुकम् । केवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत्” ॥ इति ।

३० तस्यापवाद्याह स्त एव

“यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्द्वः प्रवर्तते । तावन्नचासोऽग्निहोत्रं च कर्तव्यं तु कलौ युगे” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां ब्रजेत्” ॥

बृहद्वपरिशिष्टेऽपि—“मुमुक्षुरात्मविशुद्धये एकं तप्तकृच्छ्रं कृत्वा अनाश्रमी चतुरः

३५ प्राजापत्यान्” इति ।

बोधायनः— “अनाश्रमी चतुरः कृच्छ्रानात्मशुद्ध्यर्थं विद्यादाश्रमी तस्कृच्छ्रमेकम्” इति ।
स्मृतिसारे—

“कुर्याच्चत्वारि कृच्छ्राणि संन्यासेष्मुरनाश्रमी । आश्रमी कृच्छ्रमेकं तु कृत्वा संन्यासमहति”॥इति ।

जीवश्राद्धादिलिङ्गणम् । व्यासः—

“देयं पितृभ्यो वेदेभ्यः स्वपितृभ्योऽपि यत्नतः । दत्त्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाश्रमे ॥ ५

“इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा । अग्नीन् स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रवजेत्पुनः” ॥

बोधायनः—

“दैवं चैवार्षिकं दिव्यं पितृं मातृकमानुषम् । भौक्तिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्विपेत्”॥

अग्निः—

“दैवमार्षे ततो दिव्यं मानुषं भौतिकं तथा । पितृणां दिव्यमातृणामात्मनो वृद्धितत्परः” ॥ १०

शौनकः—

“दैवं च वार्षिकं चैव दिव्यं मानुषमेव च । भूतश्राद्धं पितृश्राद्धं मातृणामात्मनस्तथा॥

“एकैकस्मिन्दिने कुर्यादिकैकं श्राद्धमर्थवत् । नांदीमुखविधानेन विधिरेषां प्रकीर्तिः ॥

“वसवोऽष्टौ स्मृतास्तत्र रुद्रा एकादशापि च । तथैव द्वादशादित्या दैवश्राद्धे तु देवताः॥

“मरीचिरव्यंगिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । प्रचेताश्च वसिष्ठश्च आर्षे सभूगुनारदः” ॥ १५

“दिव्ये हिरण्यगर्भोऽपि विराट् प्रजापतिरेव च । सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातनः ॥

“कपिलश्चासुरिश्चैव वोद्गुः पञ्चशिखस्तथा । एते मानुष्यके आद्वे मनुष्याः सप्त देवताः ॥

“पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एतानि पञ्च भूतानि भूतश्राद्धे तु देवताः॥

“पितृश्राद्धे कव्यवाढनलः सोमोऽर्यमातथा । अग्निष्वात्ता ब्रह्मिष्वदः सोमपाश्चैव देवताः॥

“गौरी पद्मा शर्ची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातृश्राद्धे तु देवताः” ॥ २०

“आत्मश्राद्धे देवता तु परमात्मा प्रकीर्तिः” ॥ इति ॥ अग्निः—

“पार्वणं च यथा वृद्धिश्राद्धं कुर्याद्यथाविधि । एकैको मंत्रवात्पिंडो देयस्तूष्णीमथापरः ॥

“सर्वमंत्रेषु कर्तव्यं नांदीमुखविशेषणम् । उत्थायै च ततो विद्वान्वृष्टपुष्टेन चेतसा ॥

“प्रदक्षिणं ततः कृत्वा नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् । क्षंतद्यमिति तान्वूयात्प्रणम्य शिरसा नतः ॥

“संन्यासार्थं मया श्राद्धं कृतमेतद्विजोत्तमाः । अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं यास्यामि शाश्वतीम्” ॥ २५

ततः परेषुः पुण्याहवाचनपूर्वकं वपनं कुर्यात् । संन्यासक्रमः । तदाह शौनकः—

“पूर्वेषु नीदीमुखं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा पुण्याहं वाचयित्वा केशश्मश्रुलोम-
नस्वानि वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा होमादिद्वयव्यतिरिक्तद्वयजातं पुत्रादिभ्यो
दत्त्वा दंडादीनि संनिधाय देवायतने ग्रामे वा पुलिने वाऽरण्ये^१ वा स्थित्वा वृक्षाणे नमः इन्द्राय
नमः आत्मने नमः अंतरात्मने नमः परमात्मने नम इति ब्रह्मांजलिं कृत्वा मानसं जपित्वाऽपि ३०
उपस्पृश्य दर्भीजलिं कृत्वा वेदादीजपित्वा सकुमुष्टिं प्राश्याप आचम्य ‘ओं भूः सावित्रीं
प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ३१ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ३२ सुवः
सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ३३ भूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितु-
र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्’ इति जपित्वा किंचनाप्राश्य पुरस्तादादित्यस्या-

१ क-प्य । २ क-थ्ये । ३ खग-प्रवेशयामि ।

— — — — —

स्तमयादाज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वेऽग्नौ ॐ भूर्भुवः सुवः स्वाहेति पूर्णाहुतिं हुत्वा सायमग्निकार्यं कृत्वाऽग्न्युत्तरदेशेषु पात्राणि सादयित्वा दक्षिणदेशे दर्भान्संस्तीर्य कृष्णाजिनं चांतर्धाय तस्यां रात्र्यां जागरणं कृत्वेति “आपो हि षष्ठा मयो भुवः” इति द्वाभ्यां इमश्चुरोमनखानि च गौदानिकविधानेन सर्वमंत्रान्नियोजयेत् ॥

- ५ “शेषस्य कर्मणः सिध्यै केशान्सप्ताष्ट वा पुनः । संरक्ष्य वापयेत्सर्वं केशश्चमश्चुनखानि च” ॥ इति कात्यायनस्मरणात् । सप्ताष्ट वा केशान् स्थापयित्वा वापयेत् । दक्षिणजानुनि उत्तानं वाक्षहस्तं कृत्वा तदुपरि सपवित्रानुत्तानदक्षिणहस्तनिधानं ब्रह्मांजलिः “संहत्य हस्तावध्येयः स हि ब्रह्मांजलिः स्मृतः” इति भनुस्मरणात् (२।७।) । तथा कृत्वा ‘ब्रह्मणे नम’ इत्यादि मनसा जपेदित्यर्थः । सकुमुष्टिप्राशनं प्रणवेन कृत्वाऽचम्य नाभिमभिमंत्रयेत् ।
- १० तथा ब्रह्मचरिशिष्टे “अथ सकून्प्राश्याचम्य नाभिमभिमंत्रयेत् । “आत्मने स्वाहा अंतरात्मने स्वाहा प्रजापतये स्वाहा” इति । ततः पयोदधिघृतानि त्रिवृत्कृतानि ‘त्रिवृदसि’ इति मंत्रेण प्रथमं प्राशीयात् । ‘त्रिवृदसि’ इति द्वितीयं ‘संवृदसि’ इति तृतीयं ‘आपः पुनंतु’ इत्युदकं प्राशीयात्तदलाभ इति ।

- अत्र बोधायनः (२।१०।१४-२।)—“पुण्याहं स्वस्त्यूद्दिमिति” वाचयित्वा केशश्चमश्चुलोम-
१५ नखानि वापयित्वा उपकल्पयते यष्ट्यचः शिक्यं जलपवित्रं कस्तंडलुं पात्रमित्येत्समादाय ग्रामांते ग्रामसीमांतेऽग्न्यगरे वाऽऽज्यं पयोदधीति त्रिवृत्प्राश्योपवसेदपो । वा ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमां भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॐसुवः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति पच्छोर्धर्चर्चशस्ततः समस्ताव्यस्ताश्वाश्रमादाश्रममुपनीय ब्रह्मभूयो ब्रह्मभूतो भवतीति विज्ञायते पुरादित्यस्यास्तमयाद्वार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्यपचनमाहत्य
२० ज्वलंतमाहवनीयमुद्भूत्य गार्हपत्ये आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वत्याहवनीये पूर्णाहुतिं हुत्वा ओं स्वाहेत्येत्तद्विज्ञानवाधानभितिविज्ञायतेऽथ सायं हुतेऽग्निहोत्रे उत्तरेण गार्हपत्यं वृणानि संस्तीर्यं तेषु द्वंद्वं न्यंचि पात्राणि सादयित्वा दक्षिणेनाहवनीयं ब्रह्मायतने दर्भान्संस्तीर्यं तेषु कृष्णाजिनं चान्तर्धायैतां रात्रिं जागर्ति य एवं विद्वान्ब्रह्मरात्रमुपोष्य ब्राह्मणोऽनभीन्समारोप्य वा प्रमीयते सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यामिति” । अयमर्थः । पूर्वाङ्गे
२५ वयनं कृत्वा अपगङ्ग उपकल्पयते आर्जयति यष्ट्यादीन्यष्ट्यः दंडाः शिक्यं रज्जुनिर्मितं भिक्षापात्रधारणम् ।

“कुशकार्पासमृत्रैर्वा क्षोमसूत्रं ग्रथापि वा । कुशलैर्यथितं शिक्यं पद्माकारसमन्वितम् ॥
“पट्टपादं पंचपादं वा चंद्रदयविशोभितम्” ॥ इति स्मरणात् ।

जलपवित्रमुदकशोधनार्थं वस्त्रं विकेशं सितमस्पृष्टं सर्वतो द्वादशांगुलम् ।

- ३० “द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि सर्वतोऽष्टांगुलं तु वा । प्रादेशमात्रं वा सूक्ष्मकार्पसैः कृतमवणम्” ॥

“चंद्रालाद्यकृतं चेतत्स्मृतं जलपवित्रकम्” ॥ इति स्मरणात् ।

पात्रं भैक्षाचरणार्थं अलाकुमृन्मयादि । आदिशब्द आसनाद्युपलक्षणार्थम् ॥

“चतुरसं वर्तुलं वाऽप्यासनं दारवं शुभम् । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिचारणाम्”

इति स्मरणात् । त्रिवृत्प्राशनमंत्रः ॥ “ॐ भूः सावित्रीम्” इति “आश्रमादाश्रमम्”

- ३५ इति वचनात्रिवृत्प्राशनादूर्ध्वं प्रत्यापत्तिर्स्तीति दर्शयति । ब्रह्म सावित्री । तया पूतः ब्रह्मभूयो

भवति । त्रिवृत्प्राशनेनैव संन्यास इत्यर्थः । ब्रह्मान्वाधानमिति यथा दर्शयूर्णमासयोरन्वाधानं तद्वदेतदपि ब्रह्मप्रवेशस्येति ।

दिनांतरकृत्यमाह शौनकः—“ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय यथाविधि स्नात्वा प्रातरग्रीकार्य कृत्वा व्याहृतीः जपित्वा ‘तरत्समन्दीधावति’ इति सूक्तमप्सु जपेत्” इति ।

दत्तात्रेयः—

“ब्रह्मरात्रीं ततो नीत्वा पौर्णमास्यां द्विजोत्तमः । प्रातर्हृत्वा स्वकल्पेन कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥

“प्राजापत्यां प्रतिपदि त्विष्टि कुर्याद्यथाविधि । ततो विप्राय दद्यात्तु सर्ववेदसदक्षिणाम्” ॥

शौनकः—“प्राजापत्ययेष्टा पुनराहवनीयमुद्धृत्य प्राणापानौ समौ कृत्वा सर्वं निदधाति । यच्च पूर्तौ यच्च प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोऽहं देवकिलित्वात्स्वाहा । अयं ते योनिर्गतिय इत्यात्मन्याग्नीन् समारोपयति प्राणेन गार्हपत्यमपानेन दक्षिणाग्निं व्यानेनाहवनीयमुदानेना- १० वसथ्यं समाने सभ्यं पुनराहवनीयं गत्वा ‘अभ्यः संभूत’ इत्यादित्यमुपस्थायोत्तरेण गृहान्निष्क्रमेत्” इति ।

आत्रेयः—“मृन्मयान्यश्ममयानि चाप्सु जुहुयाद्वरवे तैजसानि दद्यात्” इति ।

बोधायनः—“अथ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय काल एव प्रातरग्रीहोत्रं जुहोत्यथ पृष्ठचांस्तीत्वाऽपि: प्रणीय वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धिः संपद्यतेथाऽहवनीयेऽ १५ ग्रीहोत्रद्रव्याणि प्राक्षिपत्यमृन्मयान्यश्ममयानि गार्हपत्येरणीभवतो न तन्मनसावित्यथात्मन्यग्नीन्समारोपयते “या ते अग्ने यज्ञिया तनूः” इति त्रिस्त्रिरेकैकं समाजित्रीति शौनकः । अथ पुत्रं दृष्ट्वा जपति ‘त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक’ इति । स पुत्रः प्रत्याह “अहम् ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक” इति ।

बद्धचपरिशिष्टे—अथ पुत्रान्सुहृदो बधून्प्रत्याह न मे कश्चिन्नाहं कस्यचित् इति २० जलाशयं गत्वा “एतस्मादाश्रमात्संन्यासाश्रमं गच्छामि” इति संकल्पयेत्ततः अप्सु चोदकाहुति द्वयमाह कपिलः—“अद्द्रः स्वाहा पुत्रेषणाया वित्तेषणाया लोकेषणायाच्च व्युत्थितोहं स्वाहेत्यभ्य एवापः पाणिना हुत्वा” इति ।

बोधायनः—“अथ यज्ञोपवीतं विसृज्याद्द्विः संस्तुयाप्सु जुहोति । वेदांतविज्ञान” इति ।

आरण्यकोपनिषदिच्च च ‘उपवीतं भूमावप्सु वा विसृजेत्’ इति ।

२५

काठकश्चुतिः—“सशिखान्केशान्निष्कृत्य विसृज्य यज्ञोपवीतं भूः स्वाहा” इति ।

अत्रार्थर्वणी श्रुतिः—“ब्रह्मसूत्रमहमेवेति विद्वान्विवृत्सूत्रं त्यजेत् । विद्वान्यं एवं वेदसंन्यस्तं मयेति त्रिः कृत्वा ‘अभ्यं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते’” इति ।

बद्धचपरिशिष्टे तु “प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नर्धवाहुर्ब्रूयात् । ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः संन्यस्तं मया । ॐ सुवः संन्यस्तं मया । ॐ भूर्भुवःसुवः संन्यस्तं मया” इति ।

३०

“त्रिस्त्रिपाणुत्रिर्मध्यमं त्रिरुच्चैः” इति ।

प्रकारांतरमाह शौनकः—“ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया” इति ‘मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेणोक्त्वा- अभ्यं सर्वभूतेभ्यो मत्तः’ इति प्राङ्मुख उद्ङ्मुखः पूर्णाजलिं निनयनं कृत्वा यथाधिकारं यथाविधि दंडादि गृहीत्वा स्वर्धमनिष्ठो भवेत्” इति ।

बोधायनस्त्वाह “अथांतर्वेदितिष्ठन्नो भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति त्रिरूपांशूक्ता-निर्मध्यमं त्रिरुच्चैः ‘त्रिष्ट्या हि देवाः’ इति विज्ञायते ‘अभयं सर्वे भूतेभ्यो मत्त’ इति चापां पूर्णमंजलिं निनयति” ॥ इति । अत्र यमः—

- “दत्वा तोयांजलिं विप्रो भक्त्या संप्रार्थ्येद्वरिमि । सर्ववेदात्मके तोये तोयाहृतिमहं हरे ॥
- ५ “दत्वा सर्वेषणां त्यक्त्वा युष्मच्चरणमागतम् । त्राहि मां सर्वलोकेश गतिरन्या न विद्यते ॥
- “संन्यस्तं मे जगन्नाथ पाहि मां मधुसूदन । पाहि मां सर्वसर्वेश वासुदेव सनातन ॥
- “संन्यस्तं मे जगद्बोने पुंडरीकाक्ष मोक्षद । अहं सर्वभयं दत्वा भूतानां परमेश्वर ॥
- “युष्मच्चरणमापन्नस्त्राहि मां पुरुषोत्तम” ॥ इति ।

“ततो दिगंबरो भूत्वा गच्छेत्किंचिदुद्भुत्तमुखः । जिज्ञासुश्चेत्परावृत्या तिष्ठेदाचार्यदर्शने” ॥

- १० ततो दारकपात्रं कौपीनं बहिर्वासः कंथां दंडं च क्रमेणैकं प्रणवेनैव दद्यात् । ततः इंद्रस्य वज्रोऽसि वार्चन्नः शर्म यच्छ यत्पापं तन्निवारय, इति दंडं संप्रार्थ्य, सखा मा गोपाय । इति दंडं धारयेत् ॥ आर्थर्वणी श्रुतिः—“सखा मा गोपाय नः सखायोऽसीद्रस्य वज्रोऽसि” इत्यन्येन मंत्रेण कृत्वोर्धर्वं वैणवं दंडं कौपीनं प्रतिग्रहेत्” इति ।

- १५ भैत्रायणी श्रुतिरपि “इंद्रस्य वज्रोऽसीति त्रीन्वैणवान्दंडान्दक्षिणे पाणौ धारयेदेकं वा” इति । आरुणिश्रुतिरपि “काममेकं वैणवं दंडं धारयेत्” ॥ इति ।

बोधायनः (३२२६)—“सखा मा गोपायेतिदंडमादने, “यदस्य पारेरजस” इति शिक्यं गृह्णाति, ‘येन देवाः पवित्रेण” इति जलपवित्रं गृह्णाति, ‘येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्’ इति कमंडलुं गृह्णाति, सप्तव्याहृतिभिः पात्रे गृह्णाति इति” ।

- अन्ये तु प्रकारांतरं वर्णयन्ति । नांदीश्राद्धं कृत्वा परेद्युरुपोष्य सप्ताष्ट वा केशान्परि-२० हृत्य कण्ठादुपरि वापयित्वा नखनिकृंतनं च कारयित्वा स्नात्वाऽचम्य पुण्याहं वाचयित्वा पुत्रादिदायातिरिक्तं स्वद्रव्यं होमार्थं दक्षिणार्थं च स्थापयित्वा ब्राह्मणेभ्यः सर्वसं दत्वा ततो दोरकौपीनाच्छादनानि प्रक्षालय सलक्षणं मुद्रासहितं वैणवं दंडं जलपात्रं च सञ्चिधाप्य देवायतनादौ स्थित्वा ब्रह्मांजलिं कृत्वा ॐ नमो ब्रह्मणे० बृहते करोमि इति त्रिर्जपित्वा ब्रह्मयज्ञवत् वेदादि जपित्वा “ॐ नमो ब्रह्मणे नमः ॐ इंद्राय० ॐ सोमायः० ॐ प्रजापतये० ॐ २५ आत्मने० ॐ अंतरात्मने० ॐ परमात्मने नमः” इति सकुमुष्टित्रयं प्रणवेन प्राश्याचम्य

- “ॐ आत्मने स्वाहा ॐ अंतरात्मने स्वाहा ॐ ज्ञानात्मने स्वाहा ॐ परमात्मने स्वाहा ॐ प्रजापतये स्वाहो” इति नाभिं स्पृष्टा जपेत् । ततः पयो दधि सर्पिः प्रत्येकं त्रिवारं प्रणवेन प्राश्याचम्य प्राङ्मुख उपविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा यथाशक्ति जपं कुर्यात्तत आदित्यास्त-मयात्पूर्वमेव वक्ष्यमाणं ‘पुरुषसूक्तहोमार्थमग्निं प्रतिष्ठापयेत् । पुरुषसूक्तहोमविरजाहोमो तंत्रेण ३० करिष्य’ इति संकल्प्य स्वे स्वेऽग्रावाज्यभागांतं कृत्वा “भूः स्वाहा” इति । पूर्णाहुतिं जुहुयात्ततः सायंसंध्यामुपास्य सायमग्निकार्यं कृत्वा अग्नेदक्षिणतो दर्भान्संस्तीर्यं कृष्णाज्जिनं च वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रासीनो गायत्रीं जपन्जागरणं कुर्यात् । ततो ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय स्नात्वाऽचम्य स्वाग्नौ चरुं श्रपयित्वाऽभिघार्य बन्धिव्यर्यसाद्य व्याहृतिं पुरुषसूक्तं च जपेत् । प्रजापतये स्वाहा इंद्राय स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा इति जपित्वा पुण्याहं

वाचयित्वा सुवेणाज्यं गृहीत्वा अग्रये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्रये स्वाहा इति हुत्वा प्रयासाय स्वाहा इति द्वादशाज्याहुतीः प्राणाय स्वाहा इति पंचाज्याहुतीहुत्वा स्वशास्वापुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं समिदभाज्याहुतिं क्रमेण जुहुयत्ततो विरजाहोममाज्येन चरणा च कुर्यात् । स्विष्टकृतं हुत्वा उपरिष्टात्तंत्रं कृत्वा ॐ स्वाहा इति पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्पिर्मिश्रं चरुं प्राइयाचम्य ब्रह्मोद्वासनं कृत्वा आचार्याय दक्षिणां दत्त्वा प्रातः संध्यामुपास्य प्रातर्होमं हुत्वा समासिंचंतु मरुतः समिद्रः सं वृह- ५ स्पतिः । समायमाग्निः सिंचत्वायुषा च बलेन चायुष्मंतं वर्चस्वंतं करोतु मा इत्युपस्थाय आयंते योनिर्क्षित्विय इति त्रिरग्निमाजिप्रेत्ततो दोरकौपीनिकाषायवस्त्रदंडादिकं गृहीत्वा जलाशयं गत्वा स्नात्वा ‘अस्मदाश्रमात्परमहंसाश्रमं प्रविशामि’ इति संकल्प्य नाभिमात्रोदके प्राङ्गमुखस्तिष्ठन्- सावित्रीं व्याहृतौ प्रवेशयामि इति संकल्प्य सावित्रीप्रवेशनं कुर्यात् । “ ॐ भूः सावित्रीं प्रवेश- यामि तत्सवितुर्वरेण्यं । ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि भर्गो देवस्य धीमहि । ॐ सुवः सावित्रीं १० प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि तत्सवितुरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ सुवः सावित्री० मि तत्सवितु- र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ” इति व्याहृतौ सावित्रीं प्रवेशयेत् । ततः व्याहृतीः प्रणवे प्रवेशयामि इति संकल्प्य “ ॐ भूः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ १५ सुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भूर्भुवःसुवः प्रणवे प्रवेशयामि ” इति व्याहृतीः प्रणवे समारोपयेत् । ततः १५ अहं वृक्षस्य रेरिवा० इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनं । ‘यश्छंदसामृषभो विश्वरूपः०’ ‘श्रुतं मे गोपाय’ इति जपित्वा पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थितोऽहमित्युक्त्वा ऊर्ध्वव्राहुः सूर्याभि- मुखस्तिष्ठन् । ‘ ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः संन्यस्तं मया । ॐ सुवः संन्यस्तं मया । २० ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया ” इति मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेण त्रिवारं प्रैषमंत्रमुच्चार्य ‘ अभयं सर्व- भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ’ इति प्राच्यां दिश्युदकांजलिं प्रक्षिप्य शिखां छित्वा यज्ञोपवीतं निकृत्य २० उदकांजलिना गृहीत्वा ‘ ॐ भूः स्वाहा ’ इत्यप्सु हुत्वा प्रैषमंत्रेण त्रिवारमभिमंत्रितमुदकं प्राइय तीरं गत्वा वासः कटिमूत्रादिकं भूमौ विसृज्य जातरूपधरः सप्तपदं प्राचीमुदीचीं वा दिशं ब्रजेत् । आचार्योऽन्यो वा भो भगवन् तिष्ठ तिष्ठ लोकानुग्रहार्थं दंडादि गृहण इति निवार्य कौपीनं काषायवस्त्रं च दद्यात् । प्रणवेन स्वीकृत्य परिधायाचम्य मस्तकप्रमाणं परशुशंख- मुद्रान्विताग्नं सुरभिपद्मजमुद्रान्वितं मध्यं नागमुद्रान्वितं मूलमुक्तलक्षणयुक्तमेकं वैष्णवं दंडं २५ “इंद्रस्य वंजोऽसि वार्वद्वः० रय” इति मंत्रेण तं प्रार्थयन् ‘ सखा मां गोपाय ’ इति दक्षिणहस्तेन गृह्णीयात् । ‘ ॐ मिति ’ कमङ्डलुं च गृह्णीयात् इति ।

“ एवं संन्यासकल्पस्य नानात्वमृषिभिः स्मृतम् । तत्र व्यवस्था द्रष्टव्या संप्रदायानुसारतः ” ॥
अथ संन्यासोपदेशक्रम उक्तविधिना संन्यासं विद्यायात्मज्ञानाय गुरुसमीपं गच्छेत् ॥
तथा च मुंडके श्रूयते “ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिग्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ” इति । ३०
ततो विनीतो गुरुमुपगम्य दक्षिणं जानुं भूमिं नीत्वा पादय्वर्णं च कृत्वा

“ यो ब्रह्माणं विद्याति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

“ तत्त्वं हि देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ” ॥

इति मंत्रेण गुरुमीश्वरबुद्धयोपस्थायाधीमहि भगवो ब्रह्मेति ब्रूयात् । तस्मै साधनचतुष्य- संपद्मायाधिकारिणे गुरुब्रह्मोपदिशेत् । तथा च श्रूयते—“ तस्मै स विद्वानुप- ३५

संपन्नाय सम्यक्प्रशांतचित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यां । तदेतत्सत्यमिति । ततो गुरुरात्मानमनुसंधाय जलपूर्णशंखं पुष्पादिभिरभ्यर्थ्य द्वादशप्रणवैरभिमंडय प्रणवेन शिष्यशिरोऽभिषिञ्चेत् । ततः शं नो मित्र इति शांतिं पठित्वा शिष्यशिरसि हस्तं दत्वा पुरुषसूक्तं जपेत् ।

५ तथा च बह्वचपरिशिष्टे— “अथास्य शिरसि पुरुषभूक्तेन पाणिमुपदधाति मम हृदये हृदयं ते ददामि मम चित्तमनुचितं तेऽस्तु मम वाचमेकवते जुषस्व बृहस्पतिस्त्वा नियुनकु महामिति हृदयेदेश” इति । ततः प्रणवमुपादिश्य तदर्थं बोधयेत् ॥ महावाक्योपदेशपूर्वकं धर्मं बोधयित्वा नाम दद्यात् । यतिनामानि—

“तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं यत्पदं प्रतिपादयेत् । तत्त्वाम यतये कुर्याद्वाक्यनाम तदिष्यते ॥

१० “यतीनां स्व्यातयशसामाचार्यः पूर्वभाविनाम् । नाम कुर्यान्न शिष्यस्य बुद्धिपूर्वं कदाचन” ॥
इति संप्रदायविदः ॥

बह्वचपरिशिष्टेऽपि “अथास्मै नाम दद्याद्वैष्णवं नामाथवा यद्रोचत इति संप्रदायविद्वद्वचनम्

“योगपद्मं च दातव्यं वेदांताभ्यासतः परम् । ततो नाम प्रकर्तव्यं गुरुणा सर्वसंमतम् ।

“तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः । सरस्वती भारती च पुरी नाम यतेर्देश ॥

१५ “श्रीपादसंज्ञया वाक्यं नाम तस्य यथातथम्” इति ।

अथातुरसंन्यासक्रमः ।

“यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्तदा । आतुराणां च संन्यासं न विधिर्वै च किया ॥

“पैषमात्रं समुच्चार्यं संन्यासं तत्र पूरयेत्” इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः स्वशक्त्यनुसारेण मनसा वाचा वा पैषोच्चारणादि कुर्वत आतुरस्य कृच्छ्रनांदीश्राद्वादि निखिलांगलोपेऽपि संन्यास-२० पूर्तिः । विलंबातुरस्य तु पैषमात्रमिति मात्रचोदनसंभवादंगक्लापव्यावर्तकत्वेनाप्युपपत्तो शक्त्यां-उगक्लापव्यावर्तकत्वानुपपत्तेनांदीश्राद्वादिविरजाहोमाद्यशक्तस्य इष्टदेवतायै पूर्णाङ्गुहिराग्नि-समारोपणगायत्रीप्रवेशनपैषोच्चारणाभयदानानीत्याहुः । अत्र याज्ञवल्क्यः—

“अशक्ताविष्टदेवतायै पूर्णाङ्गुहिं हुत्वा असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये शाहमयाणि

पात्राणि प्रज्वाल्य मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य ‘संमासिंचंतु मरुत्’ इत्याग्निमुपस्थाय ‘या ते अग्न्य’ २५ इत्यनेन हस्तं प्रताप्यात्मन्यग्निसमारोप्य सर्वप्रायश्चित्पूर्वकं सत पंच वा केशान्विसृज्य वाप-

यित्वा यथाविधि स्नात्वाऽचम्य पात्रेण तोयमादायाप उपसृज्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिमभिगच्छ स्वाहा इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोतीति इति द्वितीयाहुतिः । ततो हुतशेषं ‘आशुः शिशान’ इत्यनुवाकेनाभिमंडय पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकैषणा मया त्यक्ता स्वाहा इति प्रथमं पित्रेत् ।

३० ‘ओं भूर्भुवः सुवः ब्रह्मा ओं भूर्भुवः सुवरो मया संन्यस्तं स्वाहा’ इति द्वितीयं पित्रेत् । ‘अभयं सर्व-भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा’ इति तृतीयं पित्रेत् । ततोऽन्यतोयमं जलिपूर्णमानीय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत् । ‘ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेश-यामि ॐ भूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि’ इति सावित्रीप्रवेशनं कृत्वा अथोर्धव्याहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा “ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया

ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं” मया इति प्रैषमुच्चारयेत् । तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाऽचम्य यज्ञोपवीतमुत्थृत्योदकांजलिना गृहीत्वा ‘ॐ भूः स्वाहा’ इत्यप्सु हुत्वा दिगंबरो भूत्वा पुत्रैषणातो मुक्तो वित्तैषणातो मुक्तोऽहम् लोकैषणातो मुक्तोहं इति ब्रुवन्मंत्रतो दंडादाय गच्छेत् । अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् मृते पुरुषसूक्तेन विष्णुवुध्याभिषिद्य यतिसंस्कारमेव कुर्यात् । इति आतुरस्य प्रेषमात्रेण संन्यासपूर्तिश्रवणात्तुत्तरकालमेव मृतस्योपदेशविकलस्यापि खननमेव ५ संस्कारः । जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च निकृत्य दंडकाषायवस्त्रादीनि चादाय सद्गुरुमन्त्रिष्य तस्मादुपदेशं गृहीत्वा यतिधर्माननुतिष्ठेत् ॥

अथ संन्यासभेदाः । तत्र संवर्त्तः—

“ चतुर्विधा भिक्षवस्तु कुटीचकबहूदका । हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ”

दक्षः—

१०

“ वृत्तिभेदेन भिन्नाश्च नैव लिंगेन ते द्विजाः । लिंगं तु वैष्णवं तेषां त्रिदंडं सपवित्रकम् ” ॥ एतत्रिदंडधारणं कुटीचकविषयम् । व्यासः—

“ विरक्तिश्च द्विधा प्रोक्ता तीव्रा तीव्रतरेति च । सत्यामेव तु तीव्रायां न्यसेद्बोगी कुटीचके ॥

“ शक्तो बहूदके तीव्रतरायां हंसैश्चिते । मुमुक्षुः परमे हंसे साक्षाद्विज्ञानसाधने ॥

“ कुटीचकः परिविज्यः ज्येष्ठवेशमनि नित्यशः । भिक्षां वंशुभ्य आदाय भुंजीरन् शक्तिसंक्षये ” ॥ १५

श्रुतिः—“ कुटीचको ब्रह्मचारी कुटुंबं विसृजेत् ” इति । बोधायनः

“ कुटीचकस्तु संन्पर्य स्त्रीयवेशमनि नित्यशः । भिक्षामादाय भुंजीति स्ववंन्धूनां गृहेऽथ वा ॥

“ शिखायज्ञोपवीती स्यात्त्रिदंडी सकमंडलुः । सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्त्येच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा ” इति । हारीतः—

“ त्रिदंडं वैष्णवं सौम्यं सततं समपर्वम् । वेष्टितं कृष्णगोवालरजजुवच्चतुरंगुलम् ॥ २०

“ ग्रंथिकाराइमभिर्युक्तं सुशुभं शिवयलक्षणम् । गृह्णीयात्सततं विद्वन्यात्रं चैव कनंडलुम् ॥

“ आसनं दारवं प्रोक्तं स्वहस्तचतुरंगुलम् । कौपीनाच्छाइनं वासः कन्यां शीतनिवारिणीम् ॥

“ जलपात्रं पवित्रं च खनित्रं च कृपाणिकाम् । पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नन्यस्य संग्रहम् ॥

“ शिखायज्ञोपवीती स्याद्वेताराधनं चरेत् । तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्दस्करं नमेत् ॥

“ आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् । गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥ २५

“ स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् । जपध्यानेतिहासेश्च दिनशेषं नपेद् ब्रुधः ॥

“ कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेदेवगृहादिषु । हृतदुंडरीकनिलयं ध्यायेदात्मानमवययम् ॥

“ यतिधर्मरतः शान्तः सर्वभूतसमो वशी । प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥

“ त्रिदंडधृग्यो हि पृथक्सदाचरेच्छनेः शनेस्त्यक्तव्यहिमुखाक्षः ।

संमुच्चय संसारसमस्तवंधनं स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ” ॥ इति ।—

३०

व्यासोपि—

“ स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात् सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ।

“ यज्ञोपवीती सततं कुशगणिः समाहितः । धोतकाषायवसनश्मश्रुत्वननूरुहः ॥

“ आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं चरेत् । पुत्रेषु वाऽथ निवसेद्वाचारी यतिमुनिः ॥

१ खग-तीव्रसंज्ञके ।

“वे द्वेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम् । स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं संध्ययोजर्पन् ॥

“ध्यायीत सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम् । एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामक्रोधं परिग्रहम् ॥

“एकवासा द्विवासा वा शिखायज्ञोपवीतवान् । कमंडलुधरो विद्वान्याति तत्परमं पदम्” ॥ इति ।
मेधातिथिः—“यावन्न स्युस्त्रयो दंडास्तावदेकेन पर्यटेत्” । हारीतः—

५ “नष्टे जलपवित्रे वा त्रिदंडे वा प्रमादतः । एकं तु वैणवं दंडं पालाशं बैल्वमेव वा ॥

“गृहीत्वाऽपि चरेत्तावद्यावल्लभ्येत् त्रिदंडकं” इति । यत्तु

“शिखिनस्तु श्रुतः केचित्केचिन्मुद्दाश्व भिक्षुकाः । चतुर्धा भिक्षवो विप्राः सर्वे चैव त्रिदंडिनः” ॥
इत्यत्रिवचनं तद्वाग्दंडाद्यभिप्रायम् । तथा च मनुः (१२१०)—

“वाग्दंडश्च मनोदंडो कर्मदंडस्तथैव च । यस्यैते नियता बुद्धौ स त्रिदंडीति चोच्यते ” ॥

१० दक्षः—

“वाग्दंडो मौनमेव स्यात्कर्मदंडस्त्वनीहता । मानसस्य तु दंडस्य स्वरूपं प्राणसंयमः ॥

“त्रिदंडिव्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः । यो हि ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडव्यर्भको हि सः” ॥

व्यासः—

“वैणवा ये स्मृता दंडा लिंगमात्रप्रवोधकाः । लिंगाभिव्यक्तये धार्या न पुनर्धर्महेतवे ॥

१५ “जितेद्विद्यैर्जितकोदैर्धार्यास्ते तत्त्वदर्शिभिः । त्रिदंडस्य परित्यागे एकदंडस्य धारणम्” ॥ इति ।
कुटीचकवहूदकयोर्हसपरमहंससंन्यासं विदधाति श्रुतिः । त्रिदंडं कमंडलुं शिखयं पात्रं
जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विष्टेत्” इति ।
बोधायनः—“मुंडः ऋषायवासा वाइमनकर्मदंडैर्भूतानामद्रोही यज्ञोपवीतं त्रिदंडं कमंडलुं
पात्रं परित्यज्य विमुज्य सर्वकर्माणि सर्वसहः सर्वसंगनिवृत्त” इति । स्मृतिरपि—

२० “त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं वाऽथ कपालिकम् । जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुः परित्यजेत्” ॥ इति ।
बहूदकधर्मनाह पितामहः—

“बहूदकः स विज्ञेयः सर्वसंगविवर्जितः । वंभुत्र्गेन भिक्षेत स्वभूमौ नैव संविशेत् ॥

“निश्वलः स्थाणुभृतश्च सदा मोक्षपरायणः । न कुडचां नोदके संगं कुर्यात् वस्त्रे च चेतसा ॥

“नागरे नासने नावेनास्तरे न त्रिदंडके ॥” आधवीये पराशरे च—

२५ “बहूदकश्च संन्यस्य वंधुपुत्रादिवर्जितः । सप्तागारश्वरेद्दैक्षमेकान्नं च परित्यजेत् ॥

“गोवालरञ्जुसंवंधं त्रिदंडं शिक्यमुद्धृतम् । जलपात्रं पवित्रं च खनित्रं च कृपाणिकम् ॥

“शिखां यज्ञोपवीतं च देवताराधानं चरेत्” ॥ इति ।

अथ हंसस्त्रीनाह पितामहः—

“हंसस्त्रीयो विज्ञेयो भिक्षुमंक्षिपरायणः । नित्यं त्रिष्वणस्नायी त्वाद्र्वासा भवेत्सदा ॥

३० “चांद्रायणेन वर्तते यतिथमनुशासनात् । वृक्षमूले वसेन्नित्यं गुहायां वा सरित्ते ॥

“हंसः कमंडलुं शिखयं भिक्षापात्रं तथैव च । कंथां कौपीनमाच्छाद्यमंसवस्त्रं बहिःपटम् ॥

“एकं तु वैणवं दंडं धारयेन्नित्यमाद्रात् । देवतानामभेदेन कुर्यात् ध्यानं समर्चयेत्” ॥

बोधायनः—

“हंसः कमंडलुं शिखयं दंडपात्राणि विभ्रतः । ग्रामतीर्थकरात्रश्च नगरे पंचरात्रकाः ॥

“ त्रिष्ट्रान्नोपवासाश्च पक्षमासोपवासिनः । कुच्छसांतपनावैश्च यमैः कुशवुर्धराः ॥ ” ॥
विष्णुः—

“ यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् । तावान्प्रतिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥ ॥
व्यासः—

“ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारणीम् । अक्षमालां च गृह्णीयाद्वैणवं दंडमवणम् ॥ ५
स्मृतिरत्ने—

“ कौपीनयुगुलं वासः कंथां शीतनिवारणीम् । पादुके च प्रगृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥

“ आसनोपानहच्छत्रं भाजनाजिनमोदधम् । यतिश्च प्रविगृह्णीयाद्वैणवस्त्रकमंडलून् ॥ ॥

अथ परमहंसधर्मा: । अत्रिः—

“ कौपीनयुगुलं कंथा दंड एक परिग्रहः । यतेः परमहंसस्य नाथिकं तु विधीयते ॥ १०

“ यदि वा कुरुते रागादविकस्य परिग्रहम् । रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्दोनिषु जायते ॥

“ विशीर्णान्यमलान्येव चेलानि ग्रथितानि च । कृत्वा कंथां बहिर्वासो धारयेद्वातुरंजितम् ॥

“ काषायं ब्राह्मणस्योक्तं नान्यवर्णस्य कस्यचित् । मोक्षाश्रमे सदा प्रोक्तं धातुरकं तु योगिनाम् ॥

“ परः परमहंसस्तु तुर्याख्यः श्रुतिशासनात् । शांतो दांतः सत्वसमः प्रणवाभ्यासतत्परः ॥

“ श्रवणादिरतः शुद्धो निदिध्यासनतत्परः । ब्रह्मभावेन संपूज्य ब्रह्मांडमस्तिलं स्थितः ॥ १५

“ आत्मवृत्तश्चात्मरतिः समलोष्टाइमकांचनः । तत्त्वंपदार्थवोधाच्च विष्णुरूपः स्वयं सदा ॥

“ निवसेत्परमो हंसो यत्र कापि कथंचन ॥ ”

व्यासः—

“ परमहंसस्त्रिदंडं च रज्जुं गोवालनिर्मितम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥

“ यथायं मेखलादीनि गृहस्थाश्रमवांछया । पत्नी योक्त्रं यथेष्वचं ते सोमांते च यथा गृहान् ॥ २०

“ तद्वद्यज्ञोपवीतस्य त्यागमिच्छन्ति योगिनः ” ॥

माधवीये—

“ यदा तु विदितं तत्स्यात् परं ब्रह्म सनातनम् । तदैकदंडं संगृह्य उपवीतं शिखां त्यजेत् ” ॥

यत्तेकदीर्ढी त्रिदीर्ढी वेति बोधायनादिभिर्दिविकल्पः स्मर्यते । यदपि ‘ मुङ्डः शिखी वेति ’

गौतमादिभिः(३।२।१) “ शिखाविकल्पः स्मर्यते तत्सर्वं व्यवस्थितविषयं द्रष्टव्यम् । कुटीचक्कहू- २५

दक्योस्त्रिदंडधारणं शिखाधारणं च । इतरयोस्तु एकदंडधारणं मुङ्डनं चेति उपवीतविकल्पोऽपि

व्यवस्थितविषय एव । त्रयाणामुपवीतधारणं परमहंसस्य नेति । विष्णुः—

“ कौपीनाच्छादनार्थं तु वासोऽर्थस्य परिग्रहः । कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं तथैव च ” ॥

पराशरः— “ तत्र परमहंसा एकदंडधरा मुङ्डाः अममा अपरिग्रहा अपयज्ञोपवीतिनो ज्ञानाग्निरवा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ब्रह्मनिष्ठा आत्मरता आत्मवृत्ता आत्मानं सर्वं पश्यन्त ” इति । ३:
पिपलादशाखायाम्—

“ सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेद्बुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥

“ सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ॥

“ येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तवदर्शीवान् ॥

“बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममास्थितः । ब्रह्मभावमिदं सूत्रं क्रियांगं ताद्वै स्मृतम् ॥

“शिखाज्ञानमयी यस्य ह्युपवीतं तु तन्मयम् । ब्राह्मणं सकलं तस्य चेति ब्रह्मविदो विदुः” ॥

आरण्युपनिषदि— “अरणि प्राजापत्यः प्रजापतेर्लोकं जगाम तं गत्वोवाच । केन

भगवान्कर्मण्यशेषतो विसृजानीत । तं होवाच प्रजापतिस्तव पुत्रान् भ्रातृन्बन्धवादीनिश्चाँ यज्ञो-

१ पवीतं यागं सूत्रं स्वाध्यायं च भूर्लोक भुवर्लोक सुवर्लोक महर्लोक जनलोकतपोलोकसत्यलोकं

च अतलपातालवितलसुतलरसातलतलातलमहातलब्रह्मांडं च विसृजेत् दंडमाच्छादनकौपीनं

परिग्रहेच्छेषं विसृजेत्” इति । विसर्गस्य चाशायाः दंडादिग्रहे च ग्रहणमात्रं कायिकं तत्र

चाशाया विसर्गस्तुल्य एवेत्यभियुक्ताः । काठके—“यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेत्” इति ।

परमहंसोपनिषदि— “असौ स्वपुत्रमित्रकलबन्धवादीन् शिखायज्ञोपवीतं च स्वाध्यायं

१० च सर्वकर्माणि च संन्यस्यायं ब्रह्मांडं च हित्वा कौपीनं दंडमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय

लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत्” । इति ।

“ज्ञानदंडो धृतो येन एकदंडी स उच्यते । काष्ठदंडो धृतो येन सर्वांशी ज्ञानवर्जितः ॥

“स याति नरकान्धोरान्महारौरवसंज्ञितान् ॥

“एकदंडं समाश्रित्य जीवति ब्रह्मो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतंति ते” ॥

१५ मनुः—

“नियतो विचरेद्वर्म यत्र तत्राश्रये वसन् । समः सर्वषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥

“फलं कतकवृक्षस्य यथैवांबुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति” ॥

यथा कतकफलनामग्रहणादेव न वारि प्रसीदति तथाऽत्मज्ञानमंतरेण दंडादिलिंगग्रहणादेव

न प्रसीदतीत्यर्थः । स एव (४२००)

२० “अलिंगी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिंगीनां हरत्येनः तिर्यग्योन्यां च जायते” ॥ इति ।

कात्यायनः—“एकदंडधरा मुङ्डाः” इति । जमदग्निः—

“दंडात्मनोस्तु संयोगः सर्वैव विधीयते । न दंडेन विना गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥

“जलांबरादिषु क्षिप्ते न किंचिद्वोषभागभवेत् ॥

“शिष्यादिभिर्विनीतोऽपि नीत एव स आत्मना । हस्तपादादिवच्छिष्य इति शिष्टानुशासनम्” ॥ इति ।

२५ दण्डादिलक्षणम् । दंडलक्षणं भविष्यत्पुराणे दर्शितम्—

“दंडं तु वैणवं दंडं सत्वचं समर्पकम् । पुण्यस्थानसमुत्पन्नं नानाकल्पाषशोभितम् ॥

“अदग्धमहतं कीटैः पर्वग्रंथिविराजितम् । स्त्रयंभूतं तु मेदिन्यां शास्वावर्जमृजुं शुभम् ॥

“नासादधनं शिरोधधनं भ्रुवोर्वा विभूयावतिः” ॥

देवलः—“आददीत प्रवृत्तेभ्यः साधुभ्यो धर्मसाधनम् । नाददीत निवृत्तेभ्यः प्रमादेनापि किंचन ॥

३० “रथ्यायां बहु वस्त्राणि भिक्षा सर्वत्र लभ्यते । भूमिशश्याऽस्ति विस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः” ॥

यतिधर्मसमुच्चये—

“क्षौमं शाणमयं वाऽपि वासः कांक्षेत कौशिकम् । अजिनं वाऽपि धर्मजः साधुभ्यस्तानपिडियन् ॥

“सचेलः स्यादचेलो वा कंथाप्रावरणोऽपि वा । एकं वस्त्रेण वा विद्वान्वतं भिक्षुश्वरेयथा ॥

“नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत् । स्तूयमानो न हृष्येत निंदितो न शपेत्परम्” ॥

३५ वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

“अध्यात्मपुस्तकं विप्रैर्दत्तं गृहीत भिक्षुकः । न तावद्व्यमादाय लेखयेद्वेषदर्शनात्” ॥
अथ यत्याहिकधर्माः । बोधायनः—

“उषःकाले समुत्थाय शौचं कृत्वा यथाविधि । दन्तान्विशेषध्य चाचम्य पर्वदर्जं यथाविधि ॥

“स्नातवा चाचम्य विधिवत्तिष्ठन्नासीन एव वा । उदये विधिवत्संधामुगस्त्र प्रणवं जपन् ॥

“अनभिरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षको संचयको मुनिर्भावसमन्वितः” ॥ ५

अथेमानि ब्रतानि भवन्ति ।

“अहिंसा सत्यमस्तेयं मैथुनस्य च वर्जनमः । त्याग इत्यैव पंचैवोपत्रतानि भवन्ति ॥

“अक्रोधो गुरुशुश्रूषा अप्रमादः शौचमाहारशुद्धिश्च” इति । पराशारः—

“कामं क्रोधं तथा दर्पं लोभमोहादृश्य ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिवाणिणर्ममो भवेत्” ॥

द्यासः—

“रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाइमकांचनः । प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिस्पृहः ।

“मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेंद्रियः । दंभाहंकारानिर्मुक्तो निंदापैशुन्यवर्जितः ॥

“आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिमौक्षमवाप्नुयात् । अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम् ॥

“स्नातवाऽचम्य विधानेन शुद्धिर्देवालयादिषु । प्राग्रात्रेऽपररात्रेच मध्यरात्रे तथैव च ॥

“संध्यास्वल्लिपिशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् ॥ १५

“कृत्वा हृत्पद्मनिलये विष्णवाख्यं विश्वसंभवम् । आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्रमैपस्थितम् ।

“सर्वस्याधारमव्यक्तमानंदं ऊर्धेतिरव्ययम् । प्रधानपुरुषातीतमाकाशमजरं शिवम् ॥

“तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः । ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बंधनात्” ॥

मनुः (२।१००)

“वशे कृत्वेंद्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा । सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिणवन्योगतस्तनुम्” ॥ २०

अर्थान्श्वरणादीन् ।

“इंद्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् । संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति॥(२।९३)

“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्तमेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (९४)

“यच्चैनान्प्राप्नुयात्सर्वान्यच्चैनान्केवलांस्त्यजेत्।प्रापगात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५

“न तथैतानि शक्यंते संनियंतुमसेवया । विषयेषु प्रदृष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ (९६) २५

“श्रुत्वा स्पष्टा च दृष्टा च भुक्त्वा ग्रात्वा च यो नरः।न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेंद्रियः॥(९८)

“यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुते च सर्वदा । स वै सर्वमवाग्नेति वेदांतोपगतं फलम् ॥(२।१६०)

“नारुंतुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः। यथा चोद्विजते वाचा नालोकयं तामुदीरयेत्”॥(१६१)

अरुंतुदः परमर्मप्रकाशनः ।

“संमानाद्व्याणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेद्वमानस्य सर्वज्ञः ॥ (१६२) ३०

“सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुद्धयते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमंता विनश्यति॥(१६३)

“अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन । न चेम देहमाश्रित्य वैरं कुर्वति केनचित् ॥ (६।४७)

“कुरुध्यंतं न प्रतिकुरुध्येदाकृष्टः कुशलं वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णं च न वाचमनृतां वदेत्”॥ (४८)

धर्मोऽर्थः कामः धर्मकामौ अर्थकामौ धर्मार्थौ धर्मार्थकामश्चेति सप्तद्वाराणि । तद्वकीर्णा

तत्संबंधां मोक्षाश्रितामेव वाचं वदेत् । न त्रिवर्गाश्रितामित्यर्थः । मनुरेव (६।४९)— ३५

“अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह” ॥

निरामिषः रसवद्गोज्यरहितः । सुखार्थी मोक्षार्थी

“इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ (६३०)-

“उपेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्ध्रवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ (६१)

“विप्रयोगं प्रियैश्चैव संप्रयोगं तथा प्रियैः । जरसा च त्रिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडितम् ॥ (६२)

“देहादुत्कमणं चास्मात्पुनर्गर्भं च संभवम् । योनिकोटिसहस्रेषु स्रुतिश्चास्यांतरात्मनः” ॥ (६३)

देहेषु चैवोपसृतिः । संसृतिः अंतरात्मनो जीवस्य ।

“अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ (६४)

“सूक्ष्मतां चान्वेक्षेत योगेन परमात्मनः । देहेषु चैवोपपत्तिमुन्तमेष्वधेषु च ॥ (६५)

“अस्थिस्थूणास्नायुयुतं मांसशोणितलेपितम् । चर्मावनुद्धं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ (७६)

“जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं भूतवासमिमं त्यजेत् ॥ (७७)

भूतावासं शरीरग्रहं तस्मिन्नहंतां न कुर्यात् । यथा गृहे तिष्ठन्त्यृही गृहंमन्यो न भवति एवं देहे तिष्ठन्देही देहंमन्यो न स्यादित्यभिप्रायः । उक्तमेवार्थं दृष्टांताभ्यां प्रपञ्चयति ।

“नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा । तथात्यजन्मिमं देहं कृच्छ्रग्रामाद्विमुच्यते ॥ (७८)

“प्रियेषु खेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् । विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनातनम् ॥ (७९)

“अनेन विधिना सर्वान् त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः । सर्वदांदैर्विप्रमुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ (८१)

“सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ (७४)

“एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायकः । सिद्धिंकस्य पश्यन्ति न जहाति न हीयते ॥ (६४२)

एकस्य सिद्धिं पश्यन्नसहायस्य सिद्धिर्भवतीति जानन् सिद्धिं न जहाति । स एव— (६४५)

“कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता । सम्भवता चेति सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्” ॥ कपालं

भिक्षार्थमिलाकुपात्रं वृक्षमूले निवास इति यावत् । कुचेलं शीर्णवस्त्रधारित्वं मुक्तस्य संन्यासिनः ॥

याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५८)

“सर्वभूतहितः शांतिखिदंडी सकम्भलुः । एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं गृहमाविशेत्” ॥

एकारामः परिव्राजकांतरेणासहायः संन्यासिनीभिस्त्रिभिश्च ‘स्त्रीणां चैकः’ इति बोधायनेन स्त्रीणा-

मपि प्रवज्यास्मरणादिति विज्ञानेश्वरः । दक्षः—

“नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामोऽपि मिथुनं तथा । एतत्वयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्यवते यतिः ॥

“एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वावेव मिथुनं स्मृतम् । त्रयो ग्रामः समाख्यातं ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥

“राजवार्तादि तेषां च भिक्षावार्ता परस्परम् । स्नेहपैशून्यमात्सर्यसंनिकष्टाच संशयः” ॥ इति ।

“एकाकी निस्पृहस्तिष्ठेन केनापि सहावसेत् । द्व्यान्नारायणेत्येव प्रतिवाक्यं सदा यतिः” ॥

मेधातिथिः—

“भिक्षाटनं जपो ध्यानं स्नानं शोचं सुराच्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि यतीनां नृपदंडवत् ॥

“ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांतशीलता । भिक्षोः कर्माणि चत्वारि पंचमं नोपलभ्यते” ॥

व्यासः—

“कन्थाकौपीनवासा यो दंडधृग्ध्यानतत्परः । एकाकी रमते नित्यं तं देवा ब्रह्मणं विदुः”॥
भगवद्गीतायाम् (१३।१०-११)

“विविक्तदेशसेवित्वपरतिर्जनसंसदि । अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानर्थदर्शनम् ॥

“एतत् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

“असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ (१३।४३) ५

“बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽत्मानं नियम्य च । शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ (५१)

“विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ (५२)

“अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते”॥ (५३)

संवर्त्तः—

“एकाकी चिंतयेद्भ्रह्म मनोवाक्कायकर्मभिः । मृत्युं च नाभिनंदेत जीवितं वा कदाचन ॥

“कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ” ॥

मनुः (६।४४)—

“नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवनम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्वैशं भूतको यथा ” ॥

निर्वैशं भूतिः ।

१५

“दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ” ॥

संवर्त्तः—

“अजिह्वः पंडकः पंगुरंधो बधिर एव च । मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भरेत्तर्न संज्ञयः ॥

“इदमिष्टमिदं नेति योऽश्वन्नपि न सज्जति । इदं सत्यमिदं भिथ्या तमजिह्वं प्रचक्षते ॥

“अद्यजातां तथा नारीं तथा षोडशावार्षिकीम् । शतवर्षीं च यो दृष्ट्वा निर्विकारः स पंडकः ॥ २०

“भिक्षार्थमठनं यस्य विष्मूत्रकरणाय च । योजनान्नं परं गच्छेत् सर्वथा पंगुरेव च ॥

“तिष्ठतो ब्रजतो वाऽपि मनश्वक्षुश्च न त्यजेत् । चतुर्युगात्परं सम्यक् परिव्राद् सोऽध उच्यते ॥

“श्रुत्वा यो न शृणोतीह बधिरः स प्रकीर्तिः ॥

“सांनिध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः । सुतवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुक्त उच्यते ” ॥

दक्षः—

२५

“बुधो ह्याभरणं भारं मलमालेपनं तथा । मानयन्तं च निदन्तं समेव तु मन्यते ॥

“परमश्रेयसोपेतः परमात्मपरायणः । स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां मुच्यते दशषट्कवित् ॥

“त्रिदंडं कुंडिकाकन्थां भैक्षभाजनमासनम् । कौपीनाच्छादनं वासः षडेतानि परिग्रहेत् ॥

“स्थावरं जंगमं बीजं तैजसं विषमायुधम् । षडेतानि न गृह्णीयाद्यतिर्मूत्रपुरीषवत् ॥

“रसायनक्रियावादं ज्योतिषं क्रयविक्रयम् । विविधानि च शिल्पानि वर्जयेत्परदारवत् ॥

“भिक्षाशनं जपस्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् । कर्त्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदंडवत् ॥

“नटादिप्रेक्षणं दूतं प्रमदां सुहृदं तथा । भक्ष्यं भोज्यमुद्दक्यां च षणं पश्येत्कदाचन ॥

“स्कंधावारे खले सार्थे पुरे ग्रामे असद्गृहे । न वसेत्तु यतिः षट्सु स्थानेष्वेतेषु कहिर्चित् ॥

“रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु । षडेतानि यतिर्नित्यं मनसाऽपि न चिंतयेत् ॥

३०

“आसनं पात्रलोपश्च संचयः शिष्यसंग्रहः । दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बेधकराणि षट्”॥

आसनादीनां लक्षणमाह । स एव—

“एकाहातपरतो ग्रामे पंचाहातपरतः पुरे । वर्षभ्योऽन्यत्र संस्थानमासनं तदुदाहृतम् ॥

“उक्तानां यतिपात्राणामेकस्यापि न संग्रहः । भिक्षोर्भेक्षभुजश्चापि पात्रलोपः स उच्यते ॥

५ “गृहीतस्य त्रिदंडादेव्वितीयस्य परिग्रहः । कालांतरोपभोगार्थः संचयः परिकीर्तिः ॥

“शुश्रूषा लाभपूजार्थं यशोर्थं वा परिग्रहः । शिष्याणां न तु कारुण्यात् स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः ॥

“विद्यादीनां प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते । विद्याभ्यासेऽप्रमादो यः स दिवा स्वाप उच्यते ॥

“अध्यात्मिकों कथामुक्ता भैक्षचर्या पुरस्कृतिः । अनुग्रहः परप्रश्नो वृथाजल्पः स उच्यते ॥

“नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन । एतैः सर्वैः सुनिष्ठन्नो यतिर्भवति नेतरः” ।

१० नाध्येतव्यमित्यादि कर्मकांडविषयम् ॥ ‘उपनिषदमावर्त्तयेत्’ इति श्रुतेः ।

बृहस्पतिः—

“न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः । न चाध्यायनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्”॥

आत्रिः—

“अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्या परिग्रहः । भावशुद्धिरेभक्तिः संतोषः शौचमार्जवम् ॥

१५ “अस्तिक्यं ब्रह्मसंस्पर्शं स्वाध्यायः समदर्शनम् । अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्दिवे ॥

“अस्नेहो गुरुशुश्रूषा अद्वा क्षांतिर्दूषः शमः । उपेक्षा धैर्यमाधुर्ये तितिक्षा क्रुणा तथा ॥

“हीस्तथा ज्ञानविज्ञाने योगो लघ्वाशनं धृतिः ॥

“स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो हरिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः कर्मफलस्य च ॥

“एष स्वधर्मो विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम् ॥

२० “निर्दद्वो नित्यसत्वस्थः सर्वत्र समदर्शनः । तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः ॥

“प्रपञ्चमस्तिलं यस्तु ज्ञानाङ्गो जुहुयाच्यतिः । आत्मन्यग्रीन्समारोप्य सोऽग्निहोत्री न चेतरः ॥

“आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्यैव परमात्रम् । ततः संवत्सरस्यांते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥

“अनुज्ञाप्य गुरुं चैव चरेद्वि पृथिवीमिमाम् । संरक्षणार्थं जंतूनां रात्रावहनि संध्ययोः ॥

“शरीरत्याज्ययं चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत्” ॥

२५ कण्वः—

“एकरात्रं वसेद्वामे नगरे पंचरात्रकम् । वर्षभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्”॥

चातुर्मास्यविधिः— भेद्यातिथिः—

“संरक्षणार्थं जंतूनां वसुधातलचारिणाम् । आधाटादीश्च चतुरो मासानां कार्तिकायतिः ॥

“धर्मदिव्ये जलसंपन्ने ग्रामांते निवसेच्छुचिः” ॥

३० व्यासः—“अविमुक्तेऽप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते । न देहो भविता तत्र द्वृष्टं शास्त्रं पुरातनम्”॥

शंखः—“ऊर्ध्वं वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां नैकस्थानवासी” इति । अशक्तौ पुनर्मासचतुष्टयमपि स्थातव्यम् । “न चिरमेकत्र वसेदन्यत्र वर्षाकालाच्छावणाद्यश्वत्वारो मासा वार्षिकाः” ॥ इति स्मरणात् इति विज्ञानेश्वरः

विष्णुः—“ग्रामांते निर्जने देशे नित्यकालनिकेतनः । पर्यटेकीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥

“वृद्धानामातुगणां च भिक्षुणां संगवार्जिनाम् । ग्रामे वाऽथ पुरे वाऽपि वासो नैकत्र दुष्यति”॥
आश्वलायनः—

“एकरात्रं वसेद्वामे नगरे पञ्चरात्रकम् । नदीतीर्थेषु पुण्येषु संवसेद्वावहं यतिः” ॥
यमः—

“एकवासा अवासा वा एकद्विरलोलुप्तः । आदूषयन्सतां मार्गं ध्यानसक्तो महीं चरेत् ॥
“जलेजीवा स्थलेजीवा आकाशेजीवमालिनि । जीवमालाकुले लोके वर्षा त्वेकत्र संवसेत्” ॥
अत्रिः—

“शुचौ देशे तथा भिक्षुः स्वधर्ममनुपालयन् । पर्यटेत् सदा योगी वीक्षयन्वसुधातलम् ॥
“न रात्रौ न च मध्यान्हे संध्ययोर्नेव पर्यटेत् । न शून्ये न च ङुर्गे वा प्राणबाधाकरे न च ॥
“यत्र प्रभुर्जगन्नाथस्तत्र योगी वसेत्सदा । भिक्षार्थं प्रविशेद्वामं वासार्थं वा दिनत्रयम् ॥ १०

“एकरात्रं वसेद्वामे पत्तने तु दिनत्रयम् । पुरे दिनद्वयं भिक्षुर्नगरे पञ्चरात्रकम् ॥

“वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत स्थाने पुण्ये जलावृते । आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्भिक्षुश्चरेन्महीम् ॥

“अंधवत्कुब्जवच्चैव बधिरोन्मत्तमूकवत् ॥

“नामगोत्रादि चरणं देशं वासं श्रुतं कुलम् । वयोवृत्तं बलं शीलं ख्यापयन्व वसेद्यति” ॥

अरुणी श्रुतिः—“वर्षासु ध्रुवशीलोऽष्टसु मासेषु एकाकी यतिश्चरेद्वावेवाचरेत्” इति ॥ १५
गौतमः (३।१०-१२; २०)—

“अनिचयो भिक्षुरुर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु” इति “नद्वितीयामपतो रात्रिं ग्रामे वसेत्” इति ।
वर्षासु वर्षतोध्रुवशीलः स्यान्न देशांतरं गच्छेत् पर्नो तदर्जयित्वा क्रत्वंतरेषु यत्र ग्रामे एकरात्रि-
मुषितं न तत्र द्वितीयां रात्रिं वसेत्प्रतिदिनं गच्छेदित्यर्थः । स एव— (३।१७-२४)

“कौपिनाच्छादनार्थं वासो बिभूयात् । प्रहिणमेके निर्णिज्य नाविप्रयुक्तमौषधिः नस्पतीनामङ्ग- २०
मुपाददीत वर्जयेत् वीजवधं समो भूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभी” इति । प्रहिणं जीर्णतया अन्यै-
स्त्यकम् निर्णिज्य प्रक्षाल्य बिभूयात् । कुतश्चित् न कौपीनाच्छादनार्थं प्रतिगृह्येति एके मन्यंते ।

औषधिवनस्पतीनामंगकलपत्राद्यप्रवृत्तं ततः अप्रच्युतं न गृहीयात् । स्वयं शीर्णं तु गृहीया-
द्वीजानि व्रीह्यादीनि तेषां वयं मुसलादिना अववातं वर्जयेत् कुर्यात् कारयेच्च हिंसायामनुयहे
च भूतेषु समः यो हिनस्ति योऽनुगृह्णाति तत्र समो निर्विकारः अनारंभी किंचिदप्यारंभं २५

कुर्यात् ऐहलौकिकं पारलौकिकम् चेत्यर्थः । आपस्तंबोऽपि (२।२।१०-१७)—“अनग्नि-
रनिकेतस्याशर्मा अशरणो मुनिः स्वाध्याय एवोत्सृजमानोवाचं ग्रामे प्राणवृत्तिं शतिलभ्यानीहो-

नामुत्तश्चरेत्तस्य मुक्तमाच्छादनं विहितं सर्वतः परिमोक्षमंके सत्यान्वृते सुखदुःखे वेदानिमं
लोकममुं च परित्यज्यात्मनात्मानमन्विष्टेद्वुद्देशेमप्रापणम् तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धम् बुद्धे

चेत्क्षेमप्रापणमिहैव न दुःखमुपलभेत् एतेन परं व्याख्यातम्” इति । अनग्निः अग्निकार्यारहितः ३०
इत्यर्थः । अनिकेतः स्म भूतवासस्थानरहितः । शर्मजन्यसुखं तदस्य नास्तीत्यशर्मा । किंचिदपि
शरणत्वेन न प्रपन्नः न वा कस्यचिच्छरणभूत इत्यशरणः । स्वाध्यायः प्रणवोपनिषज्जपः
तत्रैव वाचं विसृजेदन्यत्र मौनवतः । स्याद्वावता प्राणा ध्रियन्ते सा प्राणवृत्तिः । अनीहो ना
मुत्रः ऐहिकामुषिककर्मरहितः मुक्त अयोग्यतया परेरपि त्यक्तकामाच्छादनं कौपीना-

संत्यानृते इति ।^१ सत्यं वक्तव्यमिति यो नियमः तं परित्यज्य तथा तत्र वक्तव्यमनृतं तद्विसत्यात् विशिष्यते इत्यादिके विषये अनृतं वक्तव्यमिति यो नियमः तं च परित्यज्य इमं लोकं ऐहलौकिकं कर्म असुं च पारलौकिकं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् । ज्ञानबलाबलं बलो-नानादृत्य विधिनिषेधानां स्वैरचारणामेषां किञ्चाण तत्र हि बुद्धेक्षेमप्रापणम् ” इति आत्मनि
५ बुद्धे अवगते सति तदेव ज्ञानं सर्वमशुभं प्रक्षाल्य क्षेमं प्रापयति तदेतत् निराकरोति तच्छास्त्रै-विंप्रतिषिद्धं “ कुध्यन्त न प्रतिकुध्येऽकुष्ठः कुशलं वदेत् ” इत्यादिभिर्यतेरंव कर्तव्यकर्मप्रति-पादनपर्मन्वादिवचनैर्विरुद्धम् । बुद्धे क्षेमप्रापणम् इत्येतच्च प्रत्यक्षविरुद्धमित्याह । बुद्धे चेदिति इहैव शरीरे दुःखं नोपालभेत ज्ञानी तच्चैतदस्ति नहि ज्ञानिनां मूर्धाभिषिक्तं मन्योक्षुद्दुः-खमेव सोहुं प्रभवति । तस्माच्छ्रवणमनननिदिध्यानासनैः साक्षात्कृतात्मास्वरूपः स्वाश्रमं प्रकृत्य
० विहितानि कर्माणि कुर्वन् प्रतिषिद्धेषु कटाक्षमप्यनिक्षिपन्यतिर्मुच्येत इति हरदृक्तेन व्याख्यातम् ।
याज्ञवल्क्यः (प्रा. ६५-६६) —

“नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः । अतो यदात्मनोऽपथ्यं परेषां न तदाचरेत् ॥

“सत्यमस्तेयमक्रोधो हीः शौचं धीर्घतिर्दमः । संयतेऽद्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ॥

“अवेद्या गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा । आधयो व्याधयः क्रेशा जरा रूपविपर्ययः ॥ (६३)

१५ “भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः। ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः॥ (६४)

“संनिरुद्धेऽद्रियग्रामं रागेद्वप्तौ प्रहाय च । भव्यं हित्वा च भूतानाममृती भवती द्विजः”॥(६१)इति ।

आरुण्युपनिषद्-“ ब्रह्मचर्यमहिंसा चापरिग्रहं च सत्यं च यत्नेन हि रक्षेत् ” इति ।

कामकोधलोभमोहदंभद्वप्सुयाममताहंकारानृतादीनपि त्यजेदिति च । जाबालिः—

“न भाषेत स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां न च स्मरेत् । कथां च वर्जयेत्तासां न पश्य लिखितामपि” ॥

२० विष्णुपुराणे (३१२५-२८)

“ पुत्रद्रव्यकलबेषु त्यक्तस्नेहो नराधिप । चतुर्थमाश्रमं स्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥

“ त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते । मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जंतुषु ॥

“जरायुजांडजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः। युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसंगं च वर्जयेत् ॥

“एकरात्रस्थितिग्रीमे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । तथा तिष्ठेयथा प्रीतिद्वेषो वा नास्य जायते ॥

३५ “ कामं कोदं तथा दर्पं लोभमोहाद्यश्च ये । तांस्तु द्वोषान्पारित्यज्य परिवाणिर्ममो भवेत् ॥

“मांसासुक्पयविण्मत्रस्नायमज्जास्थिसंहतौ। देहे चेत्प्रीतिमान्मढो नरके भविता हि सः”॥

दयासः—

“रागांधौ हि जनः सर्वोन पश्यति हिताहितम् । रागं तस्मान्बु कर्वीत यदिच्छेदात्मनो हितम् ॥

“अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कृथं न ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसद्य परिपंथिनीम् ।

“क्षमातर्थं तपस्तीर्थं तीर्थसिंद्रियनिग्रहः । सर्वभृतदयातीर्थं ध्यानं तीर्थसनज्जम् ।

“एतानि पञ्च तीर्थानि सप्तषष्ठानि सर्वदा । हेहे तिष्ठन्ति सर्वत्र तेष मावं समाच्छेद ।

भगवान्नीति (६३४-३६)

“ ମନ୍ତ୍ରାଳୟରେ କାହାରୁ ପାର୍ଶ୍ଵରୁ ଦେଖିଲାମା ? ଯାଏବେଳେ କିମ୍ବାମାଂ କିମ୍ବାମାଂ କାହାରୁ ? ”

“स्वैः सौम्येषाम् एव अस्ति इति विद्यते ।

१० शनरुपरमद्विबुद्ध्या द्वृतगृहातया

च्यासः—

“अयचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्यात्परेच्छया ॥

“स्वप्रेऽपि योगयुक्तः स्याज्जाग्रतीव विशेषतः । ईदृक्वेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥

“येनकेनचिदाच्छब्दो येनकेनचिदाशितः । यत्रकचनशार्यी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः” ॥

- ५ याज्ञवत्क्यः (आचारे ८)— “अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्” इति ।
भागवते—

“स लिंगानाश्रमांस्त्यकत्वा चरेदविधिगोचरः । बुधो बालकवत्कीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ॥

“वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्या नैगमश्वरेत् । यद्वच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥

“तथासनस्तथाशार्यां यथा प्राप्तं भजेन्मुनिः । शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥

- १० “अन्यांश्च नियमान्नात्वा यथाहं लीलयेश्वरः” ॥ वासिष्ठे—

“धर्मधर्मौ सुखं दुःखं तथा मरणजन्मनी । धिया येनेति संत्यक्तं महात्यागी स उच्यते ॥

“सर्वेच्छाः सकलां शंकाः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः । धिया येनं परित्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥

“यावती दृश्यकलना सकलेयं विलोक्यते । सा येन सुषु पंत्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥

“देहेऽहमिति या बुद्धिः सा संसारनिबंधिनी । न कदाचिदियं बुद्धिरादेयाऽत्र मुमुक्षुणा ॥

- १५ “पदार्थमात्रतानिष्ठा सा संसारनिबंधिनी । न किंचिन्मात्रचिन्मत्रहृषोऽस्मि गगनादणुः” ॥

“इति या शाश्वती बुद्धिः सा संसारविमोचिनी” ॥ भनुः—

“शास्त्रसञ्जनसंर्पकैः प्रज्ञामादौ प्रवर्द्धयेत् । प्रथमा भूमिकैवोक्ता योगस्य न च योगिनः ॥

“विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया संगनामिका । विलासिनी चतुर्थी स्याद्वासना विलयात्मिका ॥

“विशुद्धचिन्मयानंदरूपा भवति पंचमी । अर्धसुप्रबुद्धाभो जीवन्मुक्तोऽत्र तिष्ठति ॥

- २० “असंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका । आनंदैकघनाकारा सुषुप्तिसदृशी स्थितिः ॥

“तुर्यावस्थोपशांता च मुक्तिरेव हि केवलम् । समता स्वस्थता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत् ॥

“तुर्यांतीता तु याऽत्रस्था परा निर्वाणरूपिणी । सप्तमी सा परिप्रोक्ता विषयत्यागजीविता ॥

“अंतःप्रत्याहृतिवशाच्चैत्यं चेति विभावितम् । मुक्त एव न संदेहो महासमतया तया ॥

“यद्भोगसुखदुःखांशैरपरामृष्टपूर्णधीः । आत्मारामो नरस्तिष्ठेत्तन्मुक्तत्वमिहोद्दितम् ॥

- २५ “भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्सृज्य समुत्थितः । शशांकशीतलः पूर्णो भाति भासेव भास्करः” ॥

“क्रियमाणं कृतं कर्म कुलश्रीदेहशल्मःैः । ज्ञानानिलसमुद्भूता प्रोद्धीय क्रापि गच्छति ॥

“सर्वैव हि कला जंतोरनभ्यासेन नश्यति । इयं ज्ञानकला त्वतः सकृज्जाता विवर्धते ॥

“बृद्धिमेति बलादेव सुक्षेत्रव्युपशालिवत् । यावद्विषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः ॥

“अविवेकेन संपन्ना साऽप्याशाऽत्र न तु स्यतः । विवेकवशतो याता क्षयमाशा यदा तदा ॥

- ३० “आत्मा जीवत्वमुत्सृज्य ब्रह्मतामेत्य नाम यः । चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्णमृत्योरचेतसः” ॥

“यो भवेत्परमानंदः केनासावुपमीयते ॥

“प्रशांतशास्त्रार्थविचारचापलो निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकः” ॥

“निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवः समः सुखं तिष्ठति शाश्वतात्मकः” ॥

“वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयन्त्रेण बोधितः । निर्गच्छति जगज्जालात्पंजरादिव केसरी ॥

- ३५ “वाचामतीतविषयो विषयाशामयोजिष्ठताः । कामभ्युपगतः शोभां शरदीव नभस्थलाम् ॥

“ गंभीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाहृषे । परानंदरसात् स्तव्यो रमते स्वात्मनात्मनि ॥

“ सर्वकर्मफलत्यागी नित्यतृप्तो निराश्रयः । न पुण्येन न पापेन नेतरेण विलिप्यते ॥

“ स्फटिकं प्रतिबिंबेन यथा नायाति रंजनम् । तज्ज्ञः कर्मफलेनांतस्तथा नायाति रंजनम् ॥

“ विहरन् जनतावृद्दे देहकर्ता न पूजनैः । सेदाल्हादौ न जानाति प्रतिबिंबगतैरिव” ॥ इति ।

अथ ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम्—

५

“ तत्वमस्यादिवाक्यार्थं यज्जीवपरमात्मनोः । तदात्मविषयज्ञानं तदिदं मुक्तिसाधनम्” ॥

ज्ञानान्मोक्ष इत्यत्र तैत्तिर्यक्षश्रुतिः (आरण्यके ब्रह्मवल्याम्) । “ ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्युक्ता । ब्रह्मणा विपश्चितेति ” । कठवल्लचाम्—

“ अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महांतं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

“ नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः । नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥ १०

“ एके बहूनां यो विद्धाति कामन् तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीराः ॥

“ तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम्” ।

मुडकोपनिषदि—

“ तर्मैवैरुं जानथात्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ । अमृतस्यैषसेतुरिति” ॥

“ भिद्यते हृदयग्रंथिश्चिछ्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्द्वै पराकरे ॥ १५

“ यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रे संगच्छते नामरूपे विहाय ।

“ तया विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

“ स यो ह वै तत् परं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति” इति ।

अमृतविंदूपनिषदि—

“ तदेव निष्फलं ब्रह्म निर्विकारं निरंजनम् । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्” २०

कैवल्यश्रुतौ—

“ उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम् ॥

“ ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनि समस्तसाक्षी तमसः परस्तात् ॥

“ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन्त्वा परमं याति नान्येन हेतुना ” ॥

सुब्राह्मण्डलोपनिषदि—

२५

“ शांतो दांत उपरतास्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यति स सर्वस्यात्मा भवति” ॥

श्रुत्यंतरेऽपि—

“ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥

“ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथाऽरसं नित्यमगंधवच्च यत् ॥

“ अनाद्यनंतं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्यमुखात्प्रमुच्यते । ज्ञानाग्निः शुभाशुभे दहति” इति च । ३०

मनुरापि (६।७४)—

“ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥

“ बीजान्यग्न्युपदाधानि न रोहन्ति यथा पुनः । ज्ञानदग्धैस्तथा क्लैशैर्नात्मा संबध्यते तथा” ॥

भगवान्तीत्रामात् । ८।३।० ।

“यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा”॥
अथ शौचविधिः । बहृचपरिशिष्टे—

“ अंतर्धाय वृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा । वाचं नियम्य यत्नेन निष्ठीवोच्छासवर्जितः ॥

“ कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः ॥

५ “ उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुद्धमुखः । रात्रौ तु दक्षिणे कुर्यादुभे संध्येऽथ वा दिवा ॥

“ शतहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् । शतद्वयं पुरीषे तु तीर्थे चैव चतुर्गुणम् ” ॥

यमः—“ उभे मूत्रपुरीषे तु पूर्वं गृहीत मृत्तिकाम् । पश्चाद्गृह्णाति यो विप्रः सचैलो जलमाविशेत् ॥

“ तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतोऽद्वृतवारिणाम् ” ॥

पैठीनसिः—“ अनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलस्नानम् ” इति ।

१० शातातपः—“ शुचिदेशात्तु संग्राह्या मृत्तिकाऽश्मादिवर्जिता ” ॥ इति

“ अपकृष्य च विष्मूत्रं काष्ठलोष्टतृणादिना । उदस्तवासा उत्तिष्ठेत् दृढविधृतमेहनः ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आचारे-९)—

“ गृहीतशिश्वोत्थाय मृद्धिरभ्युद्धृतैर्जलैः । गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्रितः ” ॥

जलपात्राभावे व्यासः—

१५ “ अरत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृतैः । पश्चात्तु शौचयेत्तीरमन्यथा त्वशुचिर्भवेत् ” ॥

रत्निः अरत्निः । शातातपः—

“ एका लिंगे करे तिसः सव्येद्वेहस्तयोर्द्वयोः । मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्ले मूत्रवदिष्यते ॥

“ पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः । पुरीषशौचनिर्दिष्टा देयास्तिसः पद्दद्ये ॥

“ दातव्यमुद्देश्यं तावन्वृदभावो यथा भवेत् । एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥

२० “ वानप्रस्थस्य विगुणं यतीनां च चतुर्गुणं । मूत्रशौचं पुरस्कृत्य बृहच्छौचं समाचरेत् ॥

“ पश्चाच्च पादशौचं तु शौचविद्धिरुदाहतम् । न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सिता ” ॥

‘ अधिकं नेव दुष्यतीति ’ न्यायान्न्यूनं नकर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥

दक्षः—“ यदिवा विहितं शौचं तदर्थं निशि कीर्तितम् । तदर्थमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ” ॥

देवलः—

२५ “ धर्म्य वै दक्षिणं हस्तमधःशौचेन योजयेत् । तथैव वामहस्तेन नामेरुद्धर्वं न शोधयेत् ” ॥ इति ।

“ करिशौचं ततः कुर्यान्मूत्रादिस्पर्शशंकया । धृत्वा च धौतं कौपीनं गंदूषान्दादशाचरेत् ॥

“ आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणायामान्षडाचरेत् ” ॥

अथ दृन्तधावनम् । वृद्धशातातपः—

“ मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्वै दंतधावनम् ” ॥

३० विष्णुः—

“ कंटकीक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमवणम् । कानिष्ठिकाग्रवत् स्थूलं कूर्चाणं समर्पवकम् ॥

“ सत्वचं दंतकाष्ठं स्यात्तद्येण प्रधावयेत् । प्राङ्मुखश्वोपविष्टस्तु भक्षयेद्वाग्यतो नरः ॥

“ प्रक्षाल्य च शुचौ देशे दंतधावनमुत्सृजेत् ॥

“ अलाभे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धिदिने तथा । अपां द्वादशांगुलैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति ” ॥

“ प्रातर्मध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यतीनां त्रिष्वणस्नानमेकं तु ब्रह्मचारिणः ” ॥
स्फुर्दि—

“ अयमेव परो धर्मस्त्वदमेव परं तपः । इदमेव परं तीर्थं विष्णुपादांबु यः पिबेत् ॥

“ स चैवावभृथस्नातः स च गंगाजलापूतः । विष्णुपादोदकं कृत्वा शंखे यः स्नाति मानवः ॥

“ यतिपादोदकं राजन्हन्ति पापं पुराकृतम् । सप्तजन्मार्जितं सम्यक् श्रद्धया शिरसा धृतम् ॥ ५

“ गुरुपदिष्टमार्गेण स्नानं कुर्याद्यथाविधि ” ॥

अत्र संप्रदायविदः दंडं दक्षिणकरे गृहीत्वा वामांसे वस्त्रं कृत्वा गुरोर्दक्षिणभागे स्थित्वा गुरुमभिवंद्य जलाशयं गत्वा शुचिदेशे कमंडलुमुपसंस्थाप्य विष्णुं जले स्मरेत्

“ ततो दंडस्य मूलेन तथाऽग्रेण स्पृशेज्जलम् । कुर्यान्जलस्य च दिशां देवानां वंदनं क्रमात् ॥

“ ततो गुरुणां ज्येष्ठानां यतीनां वंदनं तथा । ततः संस्थापयेद्वंद्वमूर्ध्वाग्निं जलमध्यतः ॥ १०

“ अथवा शुचिवस्त्रादौ स्थापयेत्प्रागुद्गुमुखम् । ततो मृदं समादाय प्रक्षालय विभजेत् त्रिधा ॥

“ तत एकेन भागेन पादशौचं समाचरेत् । आचम्यान्येन भागेन कटिशौचं समाचरेत् ॥

“ जलांतस्तिसृभिर्मृद्धिः कटिं प्रक्षालयेत्ततः । कौपीनं तिसृभिर्मृद्धिः पुटं प्रत्येकमेव तु ॥

“ आचम्य विधिना पश्चात्प्राणायामत्रयं चरेत् । ततस्तु क्षालयेत्सम्यक् मृजजलाभ्यां कमंडलम् ॥

“ वामहस्तस्य पृष्ठे तु संस्थाप्य स्नानमृत्तिकाम् । दंडं कंमडलुं चैव स्पृष्टाऽऽचामेव्यथाविधि ॥ १५

“ दक्षिणोरौ स्नानमृदं संस्थाप्य विभजेत्त्रिधा । चुलुके जलमादाय तद्वामेन पिधाय च ॥

“ प्रणवेन द्विषट्डवारमभिमंत्य च तेन ताम् । संप्रोक्ष्य प्रणवेनैव द्विषट्नाभिमंत्रयेत् ॥

“ ततः प्रथमभागात्तु गृहीत्वा स्वल्पिका मृदम् । करावालिप्य सूर्याय प्रदर्श्य क्षालयेत्करौ ॥

“ पुनः किंचित्समादाय हस्तयोरुपलिप्य च । सूर्याय च प्रदर्श्योर्ध्वं मुखं कक्षं विलेपयेत् ॥

“ जलेनाधोमुखं कक्षे समालिप्य जलं स्पृशेत् । एवं वारत्रयं कुर्यात् कक्षयोरुपलेपनम् ॥ २०

“ द्वितीयां किंचिदादाय हस्तयोरुपलिप्य च । सूर्याय तु दर्शयित्वा लिपेत्कालमुज्जौ हृदि ॥

“ जलं स्पृशेत्ततश्चैव किंचिदादाय मृत्तिकाम् । हृदमारभ्य चा नाभेरालिप्य सलिलं स्पृशेत् ॥

“ पुनश्चैवं समादाय पृष्ठमारभ्य लेपयेत् । आ पादात्तु जलं स्पृष्टा दक्षिणेन करेण तु ॥

“ तृतीयं भागमादाय वामेनोरुं विशोधयेत् । ‘यस्य प्रसादात्’ इत्यादिमंत्रयेण त्रिर्गुरुं नमेत् ॥

“ प्रवाहाभिमुखो नद्यामन्यत्र रविसंमुखः । त्रिनिमज्ज मृदं स्कंधे संस्थाप्य प्रागुद्गुमुखः ॥ २५

“ तथैव द्विस्त्रिराचम्य प्राणान् प्रोक्ष्याभिमंत्य च । मृत्तिकां पूर्वदत्तां च स्कंधादादाय हस्तयोः ॥

“ उपलिप्य ललाटं च बाहुं हृदयमेव च । एवं वारत्रयः कृत्वा गृहीत्वा शेषमृत्तिकाम् ॥

“ प्रणवेनाप आलोड्य कुर्यात्पद्मारमज्जनम् । द्विराचम्य त्रिराचम्य प्राणानष्टोत्तरं शतम् ॥

“ जपित्वा प्रणवं ब्रह्म चिंतयत् स्नानमाचरेत् । नाम्नां तु केशवादीनामेकैकं नाम संस्मरन् ॥

“ मंडक्त्वा द्वादशवारं तु शिरोवदनबाहुषु । हृदयेषु निषिंचेत्तु तिसः शंखाख्यमृद्रया ॥ ३०

“ गुरुपादोदकं सिंचेच्छिर आदौ तु पूर्ववत् । ततस्तु त्रिः पिबेदेवं विष्णोः पादोदकेन च ॥

“ ततः प्रक्षालय कौपीनं निपीड्य परिधाय च । ऊरु प्रक्षालय मृत्तोर्यैर्हस्तौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥

“ एकपादं स्थले कृत्वा द्विराचम्य यथाविधि । प्राणायामत्रयं कृत्वा द्विषट्डवाराभिमंत्रितैः ॥

“ जलैः संप्रोक्ष्य वस्त्रादिनांगवस्त्रेण मार्जयेत् । कौपीनसहितं दोरमादौ बध्नीत वाग्यतः ॥

“ कौपीनमंगवस्त्रं च जलैरासिच्य निक्षिपेत् । कौपीने मृज्जले क्षिप्त्वा पादौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥

“ तत आचम्य विधिवत्प्राणायामान्षडाचरेत् । अज्ञानकृतहिंसादिप्रत्यवायनिवृत्तये ॥

“ पुण्ड्रं धूत्वा ततः प्राणानायम्य न्यासपूर्वकम् । प्रणवार्थानुसंधानं पंचीकरणपूर्वकम् ॥

“ प्रणवं तु जपेदृष्टशतमष्टोत्तरं तु वा । सहस्रं वा लिखेदप्सु पद्ममष्टदलं तथा ॥

“ संचित्य सगुणं विष्णुं तत्र पंचोपचारतः । संपूज्य तर्पयेत्तत्र नीरेणाष्टोत्तरं शतम् ॥

“ ततो दक्षिणहस्तस्थं तोयं द्वादशवारतः । अभिमंड्य शिरः प्रोक्ष्य तथाऽन्यदभिमंत्रितम् ॥

“ जलं पिबेदथाचम्य दोरं प्रक्षालयेन्मृदा । कर्णयोस्तच्च संस्थाप्य कौपीनं क्षालयेन्मृदा ॥

“ आचम्य दंडमूले तु प्रणवेनाथ तर्पयेत् । द्विषट्वारं तथाऽप्ये तु तर्पयित्वा समुत्थितः ॥

१० “ मूलाग्राम्यां तु दंडस्य जलं स्पृष्टा गुरुं नमेत् । कृत्वाऽभिषेकं देवस्य ततो यायान्मठं प्रति ॥

“ गुर्वादिवन्दनं कृत्वा दंडं नभसि धारयेत् । प्रक्षाल्य पादावाचम्य देवपूजां प्रकल्पयेत् ॥

“ गुरुपदिष्टमार्गेण न्यासध्यानादिपूर्वकम् ” ॥

“ स्वयं पतिततुलसीपत्रादैः स्वयमाहृतैः । पूजयेन्मोक्षदं विष्णुं ज्ञानदं च महेश्वरम् ” ॥

विष्णुपूजाक्रमः । तथा च शौनकः—

“ ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् । प्रणम्य दंडवद्भूमौ नमस्कारेण चार्चयेत् ” ॥

कात्यायनः—“ त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ” ॥

व्यासः—“ अन्यानीतैश्च कुसुमैरर्चयेज्जगदीश्वरम् ॥

“ पकं च तुलसीपत्रं पुष्पं पर्युषितं च यत् । आनीय तत्प्रयत्नेन पूजयेज्जगदीश्वरम् ॥

“ भावपुष्पैर्यजेद्योगी ब्राह्मैर्वा श्रद्धया शिवम् । विष्णोः पादोदकं जुष्टं नैवेद्यस्य च भक्षणम् ॥

२० “ निर्माल्यधारणं चैव महापातकनाशनम् ॥

“ यः पूजयेद्वरिं चक्रे सालग्रामसमुद्भवे । राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥

“ विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना भातिम् । मुक्तिं याति नरोऽवश्यं सालग्रामशिलार्चनात् ॥

“ यजेदामरणं लिंगं विरक्तः परमेश्वरम् । अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणम् ॥

“ काषादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिंगेषु योगिनाम् । जपमालां गृहीत्वा तु प्रणवार्थमनुस्मरन् ॥

२५ “ जपेद्वादशसाहस्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः । सहस्रं श्रवणार्थी तु योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥

“ निर्विकल्पसमाधिस्थो न जपेत्किंचिदद्वयात् ” ॥

वोधायनः—“ वृक्षमूलिको भवेत्संन्यासी ” इति । वृक्षो वेदः । तस्य मूलं प्रणवः ।

प्रणवात्मको वेदः प्रणवं ध्यायनब्रह्मभूयाय कल्पते ” इति । व्यासः—

“ वेदौ वृक्षस्तथा मूलं प्रणवो यस्य सोऽस्ति सः । वृक्षमूलो यतिः प्रोक्तस्त्यक्तवेदोऽपरिग्रहः ॥

३० “ अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम् । आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं च यत् ॥

“ यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः । यावज्जीवं जपेद्युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ” ॥

मनुः (१२१९२)—“ आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ” ।

अत्र वेदाभ्यासः प्रणवाभ्यासः श्रूयते—

“ आत्मानमरणं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मननाभ्यासात्पाशं दहति पंडितः ॥

ओमितिब्रह्म ओमितीदःसर्वे । एतदक्षरं परं ब्रह्म अस्य पादाश्वत्वारो वेदाः । चतुष्पादिदमक्षरं परं ब्रह्म ।

“ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति ।

“ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ” ।

“ ओमित्येतदालंबनं श्रेष्ठमेतदालंबनं परम् । एतदालंबनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५

“ यस्तु द्वादशसाहस्रं नित्यं प्रणवमध्यसेत् । तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥

“ श्रवणान्मननाच्चैव निदिध्यासनतस्तथा । आराध्यं सर्वथा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥

“ ब्रह्मचर्यममानित्वमहिंसा सत्यमार्जवम् । वेदांतश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कर्माणि नित्यशः ॥

“ त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम् । श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्वाग्नि पतितो भवेत् ” ॥

संवर्तः—

१०

“ योगाभ्यासपरो नित्यमात्मविद्यापरायणः । स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु ॥

“ द्रष्टव्यस्त्वथ मंतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः । श्रवणादिक्रिया तावत्कर्तव्येह प्रयत्नतः ॥

“ यावद्यथोक्तविज्ञानमाविर्भवति भास्वरम् ” इति । पुराणे—

“ दिने दिने तु वेदांतश्रवणाद्विक्षिप्तिसंयुतात् । गुरुशुश्रूषया लब्धात्कृद्वाशीति फलं लभेत् ॥

“ वेदांतश्रवणादेव नश्यत्येवोपपातकम् । तथा पातकसंघाश्च नित्यं वेदांतसेवनात् ” ॥ इति । १५

व्याख्याः— “ काम एव मनुष्याणां विरोधो ब्रह्मबोधने ॥

“ तस्मात्कामं त्यजन् धीरो ज्ञानमाप्नोति मोक्षदम् । ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्यापस्य कर्मणः ” ॥ इति ।

अथ भिक्षाचर्या । तत्र मनुः (६।५५-५७)—

“ एककालं चरेद्भैश्चं न प्रसञ्जयेत् विस्तरे । भैश्चप्रसक्तो भिक्षुर्हिं विषयेऽतीव सज्जति ॥

“ विधूमे सञ्चमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने । वृते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्वरेत् ॥ २०

“ अलाभे न विषादी स्यात् लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिक्रमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ” ॥

उदरपूरणावधिः मात्रा । तत्र संगो मात्रासंगः ततो निवृत्त इत्यर्थः । स एव (६।५८-६०)—

“ अभिपूजितलाभांश्च जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ” ॥

मुक्तः असक्तः । अभिपूजितलाभाः आत्मने परैरतिव्युमानपूर्वकं यद्विषयते तदभिपूजितं तस्य लाभः ग्रास्तः । तदभोज्यम् । तस्मिन्मुक्ते क्वचिद्द्विनिर्गतग्रहणे वैमनस्यं स्यात् । अथवा अभि- २५ पूजिताः धनादिना प्रतीताः । तैर्दत्तमपि न भोक्तव्यम्—

“ अत्पान्नाभ्यवहारेण रहस्थानासनेन च । ह्रीयमाणानि विषयैर्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥

“ इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृततत्वाय कल्पते ॥

“ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत् कर्हिचित् ” ॥ (५०)

उत्पातो भूकंपादिः । निमित्तं अधरस्पन्दादिः । नक्षत्रविद्या ज्योतिःशास्त्रम् । अंगविद्या ३० चिकित्सा । अनुशासनं शिष्यपरिग्रहः । वादस्तर्कः । स एव (६।५१)

“ न तापस्यैर्ब्रह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः । आकीर्णं भिक्षुकैर्वाऽन्यैरगारमुपसंबजेत् ” ॥ इति ।

याह्नवत्क्यः (प्रा. ५९)—

“अप्रमत्तश्वरेद्दैक्षं सायान्हेऽनभिलक्षितः । रहितैर्भिक्षुकैर्गमे यात्रामात्रमलोलुपः” ॥

अनभिलक्षितः ज्योतिःशास्त्रादिज्ञानेनाचिन्हितः । व्यासः—

“प्राणयात्रानिमित्तं च व्यंगारे भुक्तवर्जिते । काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद्गृहात् ॥

“भैक्षण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी वै कचित् ।

५ “यस्तु मोहेन वाऽलस्यादेकान्नादी भवेयतिः । न तस्य निष्कृतिः काचित् धर्मशास्त्रेषु कुत्रचित् ।

“एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं प्रतिग्रहम् ॥

“सप्तागरं चरेद्दैक्षमलाभे तु पुनश्वरेत् । गोदोहमात्रं तिष्ठेत् कालं भिक्षुरघोषुभ्यः” ॥

हारीतः—

“सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवप्य तु । स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत्” ॥

१० बोधायनः—(ध. सू. २।१०।४२,४४,५०) “ब्राह्मणाशां शालीनयायावराणामपवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्सेत । गोदोहमात्राकंक्षेदद्दिः संस्पृश्यौषधवत्प्राशीयात् ।

“अयाचितमसंकल्पमुपपन्नं यट्ठया । आहारमात्रं भुंजीत केवलं प्राणयात्रिकम्”॥(५२) इति । अथाप्युदाहरंति ।

“अष्टौ ग्रासा मुनेर्भैक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशतं गृहस्थास्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः” ॥

१५ “मैक्षं वा सर्ववर्णभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु । अपि वा सर्ववर्णभ्यो न चैकान्नं द्विजातिषु” ॥ इति ।

स एव (५४)

“ऊर्ध्वं नामेरधोनाभेः परिधायैकमंवरम् । द्वितीयमुत्तरं वासः पात्री दंडे च वाग्यतः” ॥

“सव्येनादाय पात्रं तु त्रिदंडं दक्षिणे करे । योऽसौ विष्णवाख्य आदित्यः पुरुषोत्तरवस्थितः” ॥

“सोयं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् । ततो ग्रामं वजेन्मंदं युगामात्रावलोककः” ॥

२० “ध्यायन्हरिं च तच्चित्त इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥

“विष्णुस्तिर्यगधोर्ध्वं मे वैकुंठो विदिशं दिशम् । पातु मां सर्वतो रामो धन्वी चक्री च केशवः” ॥

“प्राणयात्रिकमन्नं तु भिक्षेत विगतस्पृहः । गोदोहमात्रं तिष्ठेच्च वाग्यतोऽधोमुखस्तथा” ॥

स्मृतिरत्ने—

“स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे कृतजप्यः समाहितः । भिक्षार्थं प्रविशेद्ग्रामे यतिम्लैऽच्छकुलान्यपि ॥

२५ “एकान्नं तु न भुंजीत बृहस्पतिसमोऽपि सत् । मेध्यं भैक्षं चरेन्नित्यं सायान्हे वाग्यतः शुचिः” ॥

माधुकरभेदाः । उशनाः—

“माधूकरमसंकल्पं प्राकूप्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकोपपन्नं च भैक्षं पंचविधं स्मृतम् ॥

“मनः संकल्परहितान्गृहान्त्रिः सत् पंच वा । मधुवदाहरणं यत्तु माधूकरमिति स्मृतम् ॥

“शयनोत्यापनात्प्राग्यत् प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः । तत्प्राकूप्रणीतमित्याह भगवानुशना मुनिः ॥

३० “भिक्षाटनसमुद्धोगात्प्राकेनापि निमंत्रितम् । अयाचितं तु तद्दैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत् ॥

“उपस्थाने च यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि । तात्कालिकमिति ख्यातं तद्दत्तव्यं मुमुक्षुणा ॥

“सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति । उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः” ॥

“भिक्षाः पञ्चविधा ह्येताः सोमपानसमाः स्मृताः” । पितामहः—

“अयाचितमसंकल्पमुपपन्नं यट्ठच्छया । जोषयीत सदाभिज्यं ग्रासमागतमस्पृहः” ॥

३५ क्रतुः—

“ संप्रार्थितमुपस्थानादसंकल्पमयाचितम् । तत्सैकान्मापद्याद्दैक्षान्माधूकराद्वरम् ॥
“ अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । निमंत्रितोऽथवाऽश्रीयात्स्वगुणं न प्रकाशयेत् ” ॥

पराशारः—

“ यतीनामातुराणां तु वृद्धानां दीर्घरोगिणाम् । एकान्ने नैव दोषोस्ति एकस्यैव दिनेदिने ॥
“ सुजीर्णोऽति कृशो रोगी दशांतो विकलेद्रियः । पुत्रमित्रगुरुभ्रातृपत्नीभ्यो भैक्षमाहरेत् ॥ ५
“ नापोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्मणा । न वायुस्पर्शदोषेण नान्नदोषेण मस्करी ” ॥
बसिष्ठः—“ सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्दैक्ष्यम् ” इति ॥ **संवर्तः—**
“ अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा । अद्दिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्रीयाच्च वाग्यतः ” ॥
इति । यत्पुनर्बसिष्ठवचनम् (१०२४)—“ ब्राह्मणकुले यद्युभेत तद्दुंजीत सायंप्रातर्मासवर्जितम् ”
इति तदशक्तविषयम् । ‘ एककालं चरेद्दैक्ष्यम् ’ इतिमन्वादिस्मरणात् ॥ १०

यमः—

“ यश्वरेत्सर्ववर्णेषु भैक्ष्यमध्यवहारकः । न स किंचिदुपाश्रीयात् यावद्दैक्ष्यमिति स्थितिः ” ॥
काठकब्राह्मणे—“ चतुर्वर्णेषु भैक्ष्यचर्यं चरेत् पाणिपात्रेणाशनं कुर्यादौषधवत्प्राश्रीयात्प्राणधार-
णार्थं यथा मेदोवृद्धिर्न जायते ” इति ॥ **मैत्रावरुणीश्चुतिः—**“ भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेदा सायं प्रद-
क्षिणेनाविकित्सन्सार्ववर्णर्थं भैक्षाचरणमभिशस्तपतिवर्जितम् ” इति । **आरुणीश्चुतिः—**“ यतयो १५
भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशांति पाणिपात्रमुदरपात्रं वा ओं हि ॐ हि ॐ हि एतदुपनिषदं विन्यसे-
द्विद्वान्य एवं वेद औषधवदशनमाचरेत् ” इति ॥ **पराशारः—**

“ ग्रामैकरात्रवासिनो नगरतीर्थाविसयेयुः पंचरात्रवासिनं उदरादिपात्रिण अभिशस्तपतित-
वर्जं चातुर्वर्णर्थं भैक्ष्यं चरंतः आत्मत्वेनावतिष्ठत ” इति ॥ सर्ववर्णेषु भैक्षचरणमापद्विषयम् ।
यदाह बोधायनः—

“ ब्राह्मणक्षात्रियविशां मेध्यानामन्नमाहरेत् । असंभवे तु पूर्वस्या आददीतोत्तरोत्तरम् ॥

“ सर्वेषामप्यभावे तु भक्तद्वयमनश्नता । भैक्षं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्ष्याः प्राणा विजानता ” ॥
बसिष्ठोऽपि (१०२४) “ ब्राह्मणकुले यद्युभेत तत् भुंजीत ” इति । **मैत्रावरुणीश्चुतिः—**
“ त्रिषु वर्णेष्वेकागारं भैक्ष्यमश्रीयान्माधूकरी वो ” इति कलौ सर्ववर्णभैक्षाचरणनिषेधः ।
आपदि सर्ववर्णेषु भैक्ष्यचरणमपि कलौ निषिद्धम् ॥ २५

“ यतेस्तु सर्ववर्णेषु न भिक्षाचरणं कलौ ” इति स्मरणात् ॥ **गौतमः—**
“ हविः प्राश्य यथाऽचम्य निराहारो भवेदगृही । प्राश्याचम्य तथा भिक्षुनिराहारो गृहे गृहे ॥
“ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ” ॥ **मुङ्डकोपनिषदि—**“ पाणिपात्रमुदरपात्र वा
गेहे गेहे विशेत् कवलमात्रेण नापरं गृह्णीयात्पदे पदे भुंजन् गच्छेत्कुलान्कुलेषु सर्वाशी ” इति ।
उदरपात्रस्वरूपं दर्शितं यतिधर्मसमुच्चये ॥ ३०

“ आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ” इति ॥ **शौनकः—**
“ पाणिपात्रं चरन्योगी नासकुद्दैक्षमाचरेत् । तिष्ठन् भुंजन् चरन्भुंजन्मध्ये नाचमनं तथा ” ॥
गोमुखप्रतिकरपात्रवृत्येत्थं समाक्रान्तमनुपानहौ । सर्वदोपानहौ भिक्षुन् त्यजेरशक्तौ पात्रांतरेण
भिक्षाचरणमाह विष्णुः—

“ संस्कृत्य प्रणवेनाथ भिक्षापात्रं यथाविधि । भास्कराभिमुखो भूत्वा संस्मरन्मनसा हरिम् ॥

“ सव्येनादाय पात्रं तु दण्डं वै दक्षिणेन तु ” ॥ कण्वः—

“ नमस्कृत्य तथाऽदित्यं समाक्रामन्नुपानहौ । सर्वदौपानहौ भिक्षुर्तं त्यजेत्तु कदाचन ॥

“ उदपात्रं च भिक्षा च दूष्येवृत उपानहौ ” ॥

५ बोधायनः—“भिक्षापात्राविशुद्ध्यर्थमुपमुच्याप्युपानहौ । ततो ग्रामं वजेन्मदं युगमात्रावलोककः” ॥

अत्रिः—“ अनित्यं वै वृजेद्देहं नित्यं गेहं विवर्जयेत् । अनावृते विशेषारि गेहे नैवावृते वजेत् ॥

“ न वीक्षेद्वाररंधेण भिक्षां लिप्सेत्काचिद्यतिः । न कुर्याद्वै क्वचिद् घोषं न द्वारं ताडयेत्कचित् ॥

“ नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले वजेद्वृहान् । अनिद्यातिकमे योगी प्राणायामशतं जपेत् ॥

“ अदृष्टापतितं साधुं यतिर्थः परिवर्जयेत् । स तस्य शुक्रतं इत्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ॥

१० “ तथैव च गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको गतः । हुतं इत्तं तपोधीतं सर्वमादाय गच्छति ॥

शौनकः—

“पीडियित्वा य आत्मानं भिक्षां चेत्संप्रयच्छति । सा भिक्षा हिंसिता ज्ञेया नादद्यात्तादशीं यतिः” ॥

अत्रिः—

१५ “ हितं मितं सदाऽश्रीयायत्सुखेनैव जीर्यति । धातुः प्रकृप्यते येन तदन्नं वर्जयेद्यतिः ॥

“ उदक्या चोदितं चान्नं द्विजानां शूद्रचोदितम् । प्राणयंगे वायसे कूपं तदन्नं वर्जयेद्यतिः ॥

“ पित्र्यर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात् । वर्जयेत्तादशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा ” ॥

बोधायनः—

“ भिक्षां न दद्युः पंचाहं सप्ताहं वा कदाचन । यस्मिन्नृहे जना मौख्यात्त्यजेचांडालवेशमवत् ॥

२० “ एकत्र लोभादो भिक्षुः पात्रपूरणमिच्छति । दाता स्वर्गमिवान्नोति भोक्ता भुंजीत किल्मिषम् ॥

“ या तु पर्युषिता भिक्षा नैवेद्ये कल्पिता तु या । तामभोज्यां विजानीयाहाता तु नरकं वजेत् ॥

“ आयसेन तु पात्राणा यदन्नमुपदीयते । भोक्ता विष्णासर्म भुक्ते दाता तु नरकं वजेत् ॥

“ स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयं शीर्णेषु वा पुनः । भुंजीत न वटाश्वत्थकरंजानां च पर्णके ॥

“ कुंभितिन्दुकयोर्वाऽपि कोविदारक्योस्तथा । आपद्यपि न कांस्ये तु मलाशी कांस्यभोजनः ॥

२५ “ सौवर्णं राजते ताप्तमये वा त्रपुसीसयोः ” ॥

भिक्षापात्राण्याह मनुः (द्व.५४-५३)—

“ अलाबुं दारुपात्रं वा मृणमयं वैष्णवं तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वार्थं भुवोऽब्रवीत् ॥

“ अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निवणानि च । तेषामद्दिः स्मृतं शौचं च मसानामिवाध्वरे ” ॥

थाहवल्क्यः (प्रा. ६०)—

३० “ यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च । सलिलं शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चापि घर्षणम् ” ॥

शुद्धिः तत्र भोजने कूते मृजलगोवालघर्षणैः शुद्धिरित्यर्थः । यदाह देवलः—“ तद्देशं गृहीत्वा एकांते तेन पात्रेण वा अन्येन वा तूष्णीं मात्रया भुंजीत ” ॥ इति

कलौ भिक्षापात्रभोजनं निषेधति पितामहः—

“द्वापारादियुगेष्वेव पात्रभोजी भवेद्यतिः । कलौ नैव तु भुंजीत स्वपत्रे योगवित्तम्:” इति ।
कण्वः—“ ताम्रपर्णं च पाषाणम् ” इति । आत्रिः—

“ क्षमं पात्रं च पाषाणं ताम्रपर्णं पुटं तथा । उक्तानि यतिपात्राणि ब्रह्मणा विश्वयोनिना”॥

व्यासः—

“ प्रक्षाल्य पात्रे भुंजीयादद्विः प्रक्षालयेत्तु तत् । अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुंजीत नित्यशः ॥ ५

“ भुक्त्वा तु संत्यजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः । प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि ॥

“ आदित्यं दर्शयित्वाऽन्नं भुंजीत प्राङ्गुमुखोत्तरः । भुक्त्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः ॥

“ आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् ” ॥

बोधायनः (२।१०।४६-५०)—“ तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो व्यान आहवनीय उदानापानौ सभ्यावसर्थ्यौ पंच वा एते अग्रय आत्मस्थाः आत्मन्येव जुहोति स एव १० आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते भूतेभ्यो दयापूर्वं संविभज्य शेषमद्विः संस्पृश्यौषधवत्प्राशीयात् ” ॥

आश्वलायनः—

“ उपावृत्स्ततो भैक्ष्यं गत्वा तीर्थमकर्दमम् । प्रक्षाल्यातहिंते देशे भिक्षापात्रं विधाय तु ॥

“ मृत्तोयेन पृथक् पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्तथा । आचम्याथ त्रिराचम्य प्राणास्तु पुनराचरेत् ॥ १५

“ आपोशनं विधिं कृत्वा पंचप्राणाहुतीश्वरेत् ” ॥ महाभारते—

“ उक्तान्यकालपक्वानि काषायकटुकानि च । नास्वादयेत भुज्ञानो रसांश्च मधुरांस्तथा” ॥

आश्वलायनः—“ लक्षां लशुनं हिंगुं ताबूलं पुष्पभंजनम् । मधुमांसमपूपादि तैलं चापि विवर्जयेत् ” ॥

यमः—“ प्रोक्षितं प्रणवेनैव हुतमध्यात्मकादिषु । शरीरं प्राणवतपश्येदन्नं तु प्राणलेपवत् ॥

“ गंगातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्वाति योगवित् । तत्र क्रतुशतैरिष्टा फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २०

“ सांतपनं सहस्रं तु चांद्रायणशतानि च । अश्वमेधाष्टकं चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम् ” ॥

छांदोग्यश्रुतिः—

“ आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । स्मृतिलंभे सर्वत्रग्रंथीनां विप्रमोक्षः” इति ॥

विष्णुः—

“ भैक्षं यवागुं तक्रं वा पयो यावरुमेव वा । फलं मूलं विपक्कं वा कणपिण्याकसक्तपः ॥ २५

“ इत्येते वै शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः ” ॥

यमः—

“ आहारस्य चतुर्भागमर्धं वाऽप्याहरेद्यतिः । युवा चैवारुजः शक्तः प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ॥

“ अन्नसंगाद्वलं दर्पो विषयासक्तिरेव च । कामक्रोधस्तथा लोभः पतनं नरके तथा ॥

“ अष्टौ ग्रासा मुनेः प्रोक्ताः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य यथेष्टुं ब्रह्मचारिणः” ॥ ३०

तत्र ग्रासप्रमाणं व्याघ्र आह—

“ चतुरंगुलमुत्सेधं चतुरंगुलमायतम् । एतद्वासप्रमाणं तु व्याघ्रेण परिभाषितम् ” ॥

जाग्रालिः—

“निमंत्रितस्तु संन्यासी यदि भैक्षं समाचरेत् । लोभात्तत्र प्रवर्तेत् पतते च न संशयः॥

“ यत्किंचिद्वीयमानं तु गृहिणीकरसंस्थितम् । भिक्षां भिक्षुर्न गृहीयात् कङ्कयोनिषु जायते ” ॥

भिक्षां प्रशंसति यमः—

“ अब्बिन्दुर्यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्चुते । न्यायतो यस्तु भिक्षाशी पूर्वोक्ता तु विशिष्यते ॥

५ “ तसकांचनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेद्वादशवर्षाणि न तद्वैक्षसमं भवेत् ॥

“ शाकभक्षश्च यो भक्षेत् योऽन्यो यावकभक्षकः । सर्वे भिक्षाभुजस्तस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥

“ न भैक्षं परपाकान्नं न च भैक्षं प्रतिग्रहः । सोमपानसमं भैक्ष्यं तस्माद्वैक्षेण वर्तयेत् ” ॥

शातातपः—

“ भिक्षा माधूकरी नाम सर्वपापप्रणाशिनी । भिक्षाहारो निराहारो भिक्षा नैव प्रतिग्रहः ॥

१० “ श्रोत्रियान्नं च भैक्ष्यं च हुतशेषं च यद्विः । आ नखाच्छोधयेत्पापं तुषाग्निरिव कांचनम् ॥

“ गंगायाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा । भिक्षान्नं पंचगच्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥

“ भक्तात्परे चोपवास उपवासादयाचितम् । अयाच्चितात्परं भैक्षं तस्माद्वैक्षेण वर्तयेत् ” ॥

मेधातिथिः—

“ वहन्नं पच्यते यत्र मन्यंते यतिमानवाः । अनुद्विग्नाः प्रयच्छंति तं ग्रामं यत्नतो वजेत् ” ॥

१५ **क्रतुः—**

“ पंचसप्तगृहाणां तु भिक्षामिच्छेत्क्रियावताम् । गोदोहमात्रमाकांक्षेन्निष्कांतो न पुनर्वर्जेत् ॥

“ विना दंडोदपात्रं तु न गच्छेद्यतिसत्तमः । भिक्षाकाले दंडमेव नोदपात्रं कदाचन ” ॥

दत्तात्रेयः—

“ भैक्षादन्यं न याचेत न चैवोपविशेषकचित् । उद्यतां नावमन्येत न चैनां श्रावयेत्पुनः ॥

२० “ आत्मसंमितमाहारमाहरेऽत्मवान्यतिः । अत्यंतक्षुधितस्यापि समाधिर्नैव जायते ॥

“ मिताशनो भवेन्नित्यं भिक्षुर्मोक्षपरायणः । कामदर्पाद्यो दोषान भवन्ति मिताशनः ” ॥

विष्णुः—

“ यदि भैक्षं समादाय पर्युषेद्योगवित्तमः । स पर्युषितदोषेण भिक्षुर्भवति वै क्रिमिः ॥

“ सुवृत्तस्य गृहे भिक्षेन्न दुष्टेष्वेव नित्यशः । अभावे वहुगेहानां तेषु भिक्षेदलोलुपः ॥

२५ “ अन्यपात्रे हविर्भुक्ते हव्यकव्येष्वनुज्ञया । राजते ताप्रसौवर्णं तत्रायं नास्ति वै विधिः ॥

“ सौवर्णेषु च पात्रेषु ताप्ररौप्यमयेषु च । भुजन्निभिक्षुर्न हृष्येत दृष्यते तत्परिग्रहात् ॥

“ भुंजीत पर्णपुटके पात्रं वा वाग्यतो मुनिः । भुक्त्वा पात्रं यतिनिर्त्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥

“ न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव । अथाचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत भास्करम् ॥

“ जपध्यानविशेषेषु दिनशेषं नयेद्रुधः । कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेदेवगृहादिषु ” ॥

३० **दक्षः—** “ इतिहासपुराणाभ्यां षष्ठसप्तमकौ नयेत् ” ॥

अंगिराः—

“ पुराणश्रवणाद्वक्तिर्मूर्खस्यापि प्रवर्तते । भक्त्या विनिश्चिता मुक्तिस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत् ” ॥

“ तद्भ्यासात्परं ब्रह्मभावमापयते मुनिः ” ॥

बृहस्पतिः—

“ बंधान्मोक्षविभागज्ञो बंधश्वेन्मोक्षणेच्छया । उपायान्वेषणे युक्तः को न मुच्येत बंधनात् ॥
 “ यथा चित्तं समासकं जंतोर्बिषयगोचरे । यदि नारायणोऽप्येवं को न मुच्येत बंधनात् ॥
 “ तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये । आयासाय परं कर्म विद्यान्या शिल्पैपुणम् ॥
 “ लोहितार्कमुपासीत संध्यामा तारकोदयात् । हृत्पद्मकोटरावासं चिन्मात्रं ज्योतिषं हरिम् ॥ ५
 “ ध्यायेन्नारायणं ह्यादौ त्रीन्कृत्वा प्राणसंयमान् । तावत् ध्यायेत्पुनर्यावन्निद्रावशमुपागतः ॥
 “ सुप्तोत्थितः पुनर्ध्यायेत् तिष्ठन् ध्यायेज्जपन् बुधः । प्रागरत्रेऽपररात्रे च मध्यरात्रे समाहितः ।
 “ संध्यास्वन्हिविशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् । कृत्वा हृत्पद्मनिलये विष्णवाख्यं विश्वसंभवम् ॥
 “ आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसि स्थितम् । सर्वस्याधारमव्यक्तमानंदं ज्योतिरव्ययम् ॥
 “ पुराणं पुरुषं शंभुं ध्यायेन्मुच्येत बंधनात् । मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ॥ १०
 “ आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः पुनः । तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥
 “ ज्ञानं समभ्यसेद्वद्वद् येन मुच्येत बन्धनात् ” ।

अथ चातुर्मास्यविधिः । तत्र श्रूयते—“वर्षासु ध्रुवशीलः” इति ॥

अत्रिः—

“ चतुरोऽयं वसेन्मासान्वार्षिकान् द्वावथापि वा । वृद्धाननुकमेणैव नमस्कृत्य विधानतः ॥ १५
 “ अनेन विधिना भिक्षुराषाढ्यां सुसमाहितः । स्थानाभावं व्रजेत्तावद्यावद्वति पंचर्मी ॥
 “ प्रायश्चित्ते नियुज्येत पंचमोर्ध्वं व्रजेद्यदि । कक्षोपस्थित्यावर्जमृतुसंधिषु वापयेत् ॥
 “ चातुर्मास्यस्य मध्ये तु वर्जयेद्वपनं यतिः । आषाढ्यां पूर्णमास्यां तु कारयेद्वपनं यतिः ॥
 “ तेषु मासेषु केशादीन् क्रतुसंधो न वापयेत् । नदीं च न तरेत्तेषु क्रोशाद्वर्ध्वं न च व्रजेत् ॥
 “ वापयेद्यदि केशादीनुत्तरेद्यदि वा नदीम् । प्राणायामान् त्रिंशत्कृत्वा जपेत्त्रिकशतत्रयम् ॥ २०
 “ वर्षभेदे यतिः कुर्यायदि कश्चिद्नापदि । प्राजापत्येन कुच्छेण मुच्यते नात्र संशयः ॥ ”

अत्र संप्रदायविद्वद्वचनम्—

“ गुरुन्नत्वा शिरस्यंतःक्षालनं तदनंतरम् । आचम्य वाग्यतो यत्नात् सवासा क्षौरमाचरेत् ॥
 “ अंतर्धाय वृणं किंचित् तत्र निक्षेपयेद्यतिः । क्षुरं संदंशनं चेव तथा नखनिकृतनम् ॥
 “ अभिमंड्य द्विषड्वारं प्रणवैः प्रोक्षयेज्जलम् । क्षुरमादाय तरेण इमश्वकेशान्निकृत्य च ॥ २५
 “ नासा स्थितांस्तथा लोमान् यत्नेन प्रयतो यतिः । कारयेत् करपादस्थ नखानां च निकृतनम् ॥
 “ द्विषड्वारं निमज्ज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च । प्रतिस्थानं द्विषड्वारं करावारभ्य पादयोः ॥
 “ मृदं दद्यान्मुखे चैव प्रतिवारं जलं तथा । ततो जलं प्रविश्याथ शिर आलिप्य सन्मृदा ॥
 “ द्विषड्वारं निमज्ज्याथ प्रतिवारं मृदं तथा । पुनरुत्पत्त्वा तत्तीरं गत्वा गंडूषमाचरेत् ॥ ३
 “ पंचैकादशवारांश्च सम्यगाचम्य यत्नतः । प्राणायामांस्तथा कुर्यात्पंचैकादशसंख्यया ॥
 “ क्षौरस्नानं यतीनां तु व्यासाद्यैश्च प्रकीर्तिम् ” ॥ इति
 अत्रिः—“ वपनानंतरं स्नात्वा पूजयेत्पुरुषोत्तम् ” इति ।

यतिधर्मसमूच्चये—

“देवं कृष्णं मुनिं व्यासं भाष्यकारं गुरोगुरुम् । गुरुं देवं गणाध्यक्षौ दुर्गा देवीं सरस्वतीम्” ॥

गणो गणेशः । अध्यक्षः क्षेत्रपालः । तत्र मध्ये कृष्णसनत्कुमारसनकसनंदनसनत्सुजातान् । तद्विषयितो व्याससुभंतुजैभिनिवैशंपायनपैलान् । वामतो भाष्यकारपद्मापादविश्वरूपतोटकहस्तामलकाचार्याश्च पूजयेत् । भगवतः पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुनन्यांश्चार्यान्पूजयेत् । यथादिशं लोकपालान्भगवत्पार्श्वयोर्ब्रह्मशंकरौ च प्रणवादिनमोन्तैस्तत्तत्त्वामभिः पूजयेत् । ततो गोपीचंदनमृत्तिकादिंतकाष्ठदोरकादि दद्यात् । मासचतुष्टयपर्यात्सं मृत्तिकादिंतकाष्ठादि संगृहीयात् ।

*अत्रिः—

“असतिप्रतिबन्धे तु मासान्वै वार्षिकानिह । निवत्स्यामीति सङ्कल्प्य मनसा बुद्धिपूर्वकम् ॥

“प्रायेण प्रावृष्टि प्राणिसङ्कुलं वर्त्म हृश्यते । आषाढ्यादिचतुर्मासं कार्तिकान्तं तु संवसेत् ॥

१० “माधवश्चतुरो मासान् सर्वभूतहिताय वै । स्वापं यास्यति शेषाङ्के लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ॥

“सुप्तश्चैवोत्थितो यावन्न भवेत्स सनातनः । अहं तावन्निवत्स्यामि सर्वभूतहिताय वै” ॥ इति ।

शातातपः—

“निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र भवेद्यतिः । तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा” ॥ इति ।

अत्रिः—

१५ “पिता भ्राता स्वसा माता स्नुषा ज्याया सुतस्तथा । ज्ञातिबन्धुसुहृद्गर्गो द्वाहितातसुतादयः ॥

“यस्मिन् देशे वसन्तयेते न तत्र दिवसं वसेत् । मुहूर्तमपि नासीत देशे सोपद्रवे यतिः ॥

“उपद्रवे तु मनसि समाधिर्नोपजायते । चातुर्मास्ये च कार्तिक्यां क्षोरं कुर्यात्त चान्तरा ॥

“देशकालविरोधे तु भाद्रपद्यामपि क्वचित् ।

“चनुःक्रोशान्तरग यत्र नदी भवति कुत्रचित् । पक्षान्ते तत्र गन्तव्यमापस्तंखवचो यथा ॥

२० “सर्वदा वन्दनं कुर्याद्वृगोज्येष्यतेस्तथा । आ पञ्चमी नमस्कुर्यादतिक्रान्ते च पर्वणि ॥

“त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्वक्षौरप्रमाणयोः । प्रणतं न यतिर्ब्रूयादाशिषं व्यासशासनात् ॥

“नारायणोति च ब्रूयात्प्रणताय विवृद्धये” ॥ इति

व्या अप्यागताचारादिकं संप्रदायसूलं यथासंप्रदायं वेदितव्यम् ।

हारीतः—

२५ “सर्वेषामाश्रमाणां तु संन्यासी ह्युन्माऽश्रमी । स एवात्र नमस्यः स्याद्वक्त्या सन्मार्गवर्तिभिः ॥

“ब्रह्मिष्ठः परमो हंसः साक्षात्त्वारायणः स्मृतः । यतिं यः पूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥

“अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यतिर्यत्र नमस्कृतः । स्मृतं नारायणो हन्ति प्राणिनां पापपञ्चरम् ॥

“अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नमो नारायणात्मना । नमस्यो भक्तिभावेन विष्णुरूपी यतिर्यतः ॥

“स्वधर्मस्थान् यतन्वद्वान् देवांश्च प्रणमेयतिः । नान्यमाश्रमिणं किञ्चित्प्रशस्तमपि तन्मेत् ॥

३० “अपि शास्त्रसमायुक्तं सदाचारसमान्वितम् । साधुवृत्तं गृहस्थाद्यं न नमस्येत् क्वचिद्यतिः” ॥ इति ।

प्राणायामविधिः । मनुः (६।७२)

“प्राणायामैर्देहोषान् धारणाभिश्च किलिष्वम् । प्रत्याहारेण संसारात् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्” ॥

इति ॥ वसिष्ठः—

“ प्रणवेनैव कुर्याच्च प्राणायामान्यतिर्मुहुः । रेचकं नाममार्गेण पूरकं दक्षिणे तथा ॥

“ कुंभकं तु तयोर्हीनं मध्यमं हृदि तिष्ठति । चतुर्विंशतिमावृत्तिं षट्ट्रिंशतद्वादशाथ वा ॥

“ प्रणवस्य स्मरेत्स स्यात् प्राणायमोऽतिनिर्मलः ” ॥ इति ।

वैवस्वतः—

“द्वादशावर्तिं यत्तु प्रणवस्य मनोहृदि । प्राणायमो यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोमिति”॥इति । ५

कूर्मपुराणे—

“ प्राणस्तु देहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् । मात्रात् द्वादशको मन्दश्वतुर्विंशतिमात्रकः ॥

“ मध्यमः प्राणसंरोधः षट्ट्रिंशन्मात्रको मतः । सर्गभाष्टः सजपमग्भर्मजपं बुधाः ॥

“ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायमोऽथ कुंभकः । रेचकोऽजस्तनिश्वासात्पूरकस्तन्निरोधकः ॥

“ साम्येन संस्थितिर्या सा कुंभकः परिगीयते ” इति ॥ १०

शौनकपरिशिष्टे—सूत्रम् “ यावत्यो रेचकमात्रास्तावत् द्विगुणान् पूरके विद्यात्कुंभके चातुर्गुण्यमष्टमात्रो रेचकः षोडशमात्रः पूरको द्वात्रिंशन्मात्रः कुंभक इति शिशुप्राणायामः । द्वादशमात्रको रेचकः चतुर्विंशतिमात्रः पूरक अष्टाचत्वारिंशन्मात्रः कुंभक इति मध्यमः । षोडशमात्रो रेचको द्वात्रिंशन्मात्रः पूरकोऽष्टषष्ठिमात्रः कुंभक इति प्राणायामः । अकारकालो मात्राप्रायश्चित्तचैतत्सर्वेषु दुष्कृतेष्विति ” । श्लोकः— १५

“ रेचकं दक्षिणे न्यस्येत्पूरकं वामनासिके । अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्चैवं प्राणायामं समाचरेत् ” ॥

अथ यतेर्निषिद्धानि ।

“ प्राणायामैकनिष्ठस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम् ” । इति ॥

तत्र व्यासः—

“ द्वावेतौ समवीर्यौ तौ सुरा तांबूलमेव च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तांबूलं वर्जयेद्यतिः ॥ २०

“ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वाऽपि माद्यति । तस्माद्वृष्टमदां नारीं द्वूरतः परिवर्जयेत् ॥

“ शिल्पं व्याख्यानियोगश्च कामो रागः परिग्रहः । अहङ्कारो ममत्वं च चिकित्साकर्म साहसम् ॥

“ एकान्नं मदमात्सर्ये गन्धपुष्पविभूषणम् । तांबूलाभ्यञ्जने क्रीडा भोगे कांक्षा रसायनम् ॥

“ सन्धिश्व विग्रहो यानं मञ्चकं शुक्लवस्त्रकम् । शुल्कोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसः ॥

“ एतानि वर्जयेन्नित्यं यतिर्मूत्रपुरीषवत् । न स्नानमाचरेद्दिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥ २५

“ पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति साम्बरः ।

“ अन्नदानपरो भिक्षुः भिक्षादानपरो गृही । उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात्पूर्तीनिरकशायिनौ ॥

“ यस्तु प्रवजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् । षष्ठिर्वर्षसहस्राणि विष्णायां जायते कृमिः ॥

“ न किञ्चिद्दैशजादन्यदपानादन्तधावनम् । विना भोजनकाले न जातुचिद्दक्षयेद्यतिः ” ॥ इति ।

अङ्गिराः—

“संन्यासं चैव यः कूल्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः । न तस्य निष्कृतिः कार्या स्वधर्मात् प्रच्युतस्य च ॥

“ आरुढो नैष्ठिकं कर्म पुनरावर्तयेद्यतिः । आरुढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

“चण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः । तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैः सह वासयेत् ” ॥ इति ।

“नैषिकानां वनस्थानां यर्तानामवकीर्णनाम् । शुद्धानामपि लोकेऽस्मिन् प्रत्यासत्तिर्विद्यते”॥इति
दक्षः—

“ परिव्रज्यां गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति । इवपादेनाङ्गयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ” ॥ इति ॥

यमः—

५ “यस्तु प्रवजिताज्जातः प्रवज्यावसितश्च यः । तावुभौ ब्रह्मचण्डालौ प्राह वैवस्वतो यमः ” ॥ इति ।

संवर्तः—

“संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित् प्रत्यापत्तिं व्रजेद्यतिः । स कुर्यात् कुच्छ्रमश्रान्तः षण्मासात् प्रत्यनन्तरम् ” ॥
इति ।

ब्रह्मचरिश्च—

१० “ पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षोद्दर्यं भवेत् । धीपूर्वरेत उत्सर्गो द्रव्यसङ्ग्रह एव च ” ॥ इति
“ अत्रानुक्त आचमनादिसाधारणो धर्मः तत्तदवसरे वक्ष्यते ।

व्यासः—

“ मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं शुचिः सुसङ्गलिपत्वुद्दियुक्तः ।

“ अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं स ब्रह्मभावं व्रजते द्विजातिः ॥ इति ।

॥ इति यतिधर्माः ॥

इति श्रीवैद्यनाथदीक्षितविरचिते स्मृतिमुक्ताफले

वर्णाश्रमधर्मनिष्ठपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

समाप्तोऽयं वर्णाश्रमधर्मकाण्डः ॥

=====